पुनर्मिलन

[नारी जीवन का मर्मस्पर्शी सामाजिक उपन्यास]

लेखक

मामा वरेरकर

दिल्ली

प्रथम संस्करण—१९६०

मूल्य—रु० ४.५० न० पं०

अनुवादक : श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे
प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मन्दिर, १६८१ दरियागंज, दिल्ली—६
मुद्रक : हरिहर प्रेस, दिल्ली—६

पुनर्मिलन

मधु ने 'विधवा कुमारी' में लिखा था—'यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा तो अपनी आत्मकथा का अगला भाग लिखूँगी'

उसी का यह उत्तरार्ध अन्तिम भाग है।

पुनः मातृभूमि

हिन्दुस्थान का किनारा जैसे-जैसे नजदीक आने लगा, वैसे-वैसे मेरे मन-सागर में आनन्द की तरंगे उमड़ने लगीं।

उस दिन हमारा जहाज सायंकाल को सूर्यास्त के पश्चात बन्दरगाह पहुँचा था, इसलिए जहाज के ऊपरी तल्ले पर जो मुसाफिर थे, वे उतर कर चह पर न जा सके। दूसरे दिन सुबह तक बम्बई के समुद्र में सिर्फ जहाज में बैठे रहने का मौका आवे, इस पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। आज पाँच वरसों से मैं हिन्दुस्थान से बाहर थी। यह विछोह मुझे खल रहा था, सामने बम्बई के बन्दरगाह का चह दिख रहा था, परन्तु मैं हिन्दुस्थान की भूमि पर चरण नहीं रख सकती थी। यह एक अजीब संयोग है, ऐसा मुझे लगने लगा। सारी रात मैं बन्दरगाह के दीपकों की ओर देखती हुई कटघरे से टिकी खड़ी थी। मन करता था, उड़ कर चह पर पहुँच जाऊँ।

मुझे अपने आप पर ही आश्चर्य हुआ। जिस समय मैं बम्बई से रवाना हुई थी, उस समय मेरे मन में एक ऐसी वृत्ति उत्पन्न हो गई थी कि विलायत से भारत कभी लौटूं ही नहीं। विलायत जाने पर मुझे वहाँ विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए। उन अनुभवों के कारण वह वृत्ति एक प्रकार से बल पकड़ रही थी। परन्तु मायके जाने के लिए आतुर हुई किसी वधू की जो अवस्था होती है उसी स्थिति का दिन-प्रति-दिन मुझे भी विलायत में अनुभव होने लगा। जैसे-जैसे हिन्दुस्थान का वियोग

अधिकाधिक महसूस होने लगा, वैसे-वैसे हिन्दुस्थान लौटने के लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा।

विलायत में अपनी इच्छा के अनुसार बहुत सा काम मैं पूरा कर चुकी थी। इस आत्म-संतोष के कारण, जिस समय मैं अपनी मातृ-भूमि को लौटने लगी, उस समय अलबत्ता हिन्दुस्थान की भूमि पर कदम रखने की मेरी उत्कंठा बेकाबू हो उठी। चौदह दिन का वह सफर मुझे इतना उबा देने वाला लगा कि उसकी कल्पना ही न करना अधिक अच्छा !

बहुत देर तक कटघरे से टिकी हुई, बम्बई के बन्दरगाह के दीपकों को मैंने कितने ही बार निहारा था। उन दीपकों के टिमटिमाते हुए प्रकाश में से हिन्दुस्थान का टिमटिमाता हुआ संदेश मुझे दिखायी दे रहा था। लगता था, जैसे मेरी मातृभूमि आँखें मिचकाती हुई मुझसे कह रही है—"आ ! आ !! अब और कितने दिन बाहर रहेगी ?" अंधकार से आवृत्त अपनी मातृभूमि का वह भू-प्रदेश देखकर, मन में विभिन्न प्रकार की लाक्षणिक भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं। अपनी मनोवृत्ति के अनुसार मैं उन भावनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार के मानसिक स्वरूप भी दे रही थी।

कल जहाज के घट पर पहुँचते ही सबसे पहले मुझे कौन-कौन मिलेंगे, यही प्रश्न सर्वप्रथम मेरे मन में उठता। मैंने पत्र लिख कर सिर्फ चन्दू को खबर दी थी कि मैं किस जहाज से किस दिन बम्बई पहुँचूंगी। क्या चन्दू ने ताई और काका से भी मेरे आगमन के बारे में कह दिया होगा, अथवा स्वयं ही सबसे पहले मुझ से मिलने का अवसर प्राप्त करने की स्वार्थी भावना उसके मन में जाग उठी होगी ?

मैं मन का पृथक्करण करके देखने लगी। सच बताऊँ, मुझे लग रहा था कि मातृभूमि पर कदम रखते ही चन्दू को छोड़कर और कोई भी परिचित मनुष्य मुझे न मिले। परन्तु साथ ही अपने प्रत्येक आत्मीय से मिलने के लिए भी मेरा मन उतनी ही तीव्रता से उत्कंठित हो रहा था।

एक वार लगता, कि सभी लोगों से एकदम एक साथ ही मिलूँ। ऐसा भी मन में आता कि परिचित और अपरिचित सभी मिलें, तो मेरे आनन्द की सीमा न रहेगी। इस प्रकार मेरे मन में परस्पर विरोधी विचार उठ रहे थे और इन्हीं विचारों के संघर्ष के बीच रात कब गुजर गयी, इसका मुझे पता तक न चला।

झुटपुटा होते ही मैं उठी। दतौन करके हाथ-मुँह धोया और पुनः आकर कटघरे से टिक कर खड़ी हो गयी। जहाज के अन्य मुसाफिर अपना सामान आदि वाँधने में व्यस्त थे। मैं अपना सामान समेट कर पहिले ही वाँध चुकी थी और उसके बाद ही अपने केविन से वाहर निकली थी। किनारे पर उतरने के लिए मैं इतनी आतुर हो उठी थी! पर जहाज के काम मेरी इच्छानुसार थोड़े ही होने वाले थे। वहाँ का हर काम अनुशासन-वद्ध था। हर काम के लिए निश्चित समय था।

मेरे प्राण आँखों में सिमट आये थे। जहाज जैसे-जैसे चह के नजदीक सरक रहा था, वैसे-वैसे मैं आँखें फाड़-फाड़ कर देख रही थी। चह पर एकत्रित जन-समूह यद्यपि मुझे साफ दिख रहा था, पर उसमें किसी एक खास व्यक्ति को अचूक पहचान लेना असंभव था। फिर पाँच साल से मैं हिन्दुस्थान से वाहर थी। किस व्यक्ति के चेहरे में इस अवधि के वीच क्य परिवर्तन हुआ, इसका अनुमान लगाना .रल नहीं था।

जहाज चह पर आया। मैं वन्दरगाह पर उतरी। इसी समय एक वड़ी-वड़ी मूँछों वाला व्यक्ति मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैं उसे पहचान न सकी।

पर वह चन्दू ही था। उसने मुझे पहचान लिया था। उसके साथ एक तरुणी थी। उसे भी मैं नहीं पहचान सकी। जिस समय चन्दू ने अपना परिचय दिया उसी समय उसने लीला का भी मुझसे परिचय कराया। मैंने जव लीला को देखा था, उस समय वह एक छोटी-सी लड़की थी। अव वह काफी वड़ी हो गयी थी। युवती दिख रही थी। मैं भी उसे किस तरह पहचान सकती थी। क्योंकि वचपन में, पाँच वर्ष

की अवधि में लड़के की अपेक्षा लड़की में जो फर्क हो जाता है, उसके कारण साधारण दृष्टि से वह एकदम पहचानी नहीं जा सकती।

मुझे सभी अजीब-सा लगने लगा। चंदू को भी मैं न पहचान पाई? इतनी बड़ी मूंछों वाला व्यक्ति चन्दू होगा, यह विचार स्वप्न में भी मेरे मन में न आया था। हिन्दुस्थान का किनारा छोड़ते समय जिस नज़र से मैंने उसे देखा था, उस नजर में वह जितना और जैसा दिख था, उसका वही स्वरूप मेरे मन-चक्षु के सामने घूम रहा था। जब उसकी याद आती, उस समय उसी स्वरूप में वह मेरे सामने मूर्त हो उठता था।

जब मैंने उसे नहीं पहचाना, तब वह कहकहा लगा कर हँस पड़ा और बोला, "मेरी ये मूँछें जहाँ-तहाँ धोखा दे देती हैं। बचपन के मेरे कितने ही दोस्त आज मुझे पहचान नहीं पाते और इसका कारण ये मूँछें ही हैं। जिस तरह तुम्हारे मन में यह कभी न आया कि मेरी मूंछें इतनी बड़ी होंगी, उसी तरह पाँच वर्ष पहले मैंने भी यह नहीं सोचा था। मेरी मूंछों को देखकर यदि तुम्हें डर लगता हो, तो मैं कल ही उन्हें कटवा कर अलग कर सकता हूँ। काका की तरफ से इस काम में कोई रुकावट न होगी और फिर जिनके लिए मूँछें रखीं जाएँ ऐसा मेरा कोई आत्मीय भी अब नहीं रहा।

मैंने कहा—"यह चर्चा अभी क्यों? घर चलो। मैं तुम्हें कल जी भर कर देख लूंगी और बिना मूंछों के तुम अच्छे दिखोगे या मूंछों सहित भव्य दिखोगे, इसका मिलान करके तुम्हें उचित सलाह दूँगी।"

थोड़ी देर रुक कर मैंने कहा, "क्या काका और ताई नहीं आए?"

वह बोला, "बम्बई दोनों आए हैं। पर वे घर में हैं। यहाँ आने के लिए ताई बड़ी उतावली हो रही थी। पर काका ने उसे यहाँ आने से रोक दिया। वे बोले, "तुम जाओगी और मथू को देखते ही सब लोगों के सामने ही उसे भुजाओं में कस कर रो पड़ोगी। इससे तो यही अच्छा है कि तुम दोनों की मुलाकात घर में ही हो।"

हम दोनों बातें कर रहे थे। उस समय लीला लगातार मेरी ओर

निहार रही थी। मैंने धीरे से उसकी पीठ पर थपकी दी और कहा, "अब तो काफी बड़ी हो गई लीला? स्कूल जाती हो या गृहस्थी में पड़ गयी?"

जरा अकड़ से ही वह बोली, "वैसे मैं कोई बिल्कुल बुद्धू नहीं हूँ! हाँ, पर आप यह अवश्य सोचती होंगी कि मेरी पढ़ाई बंद हो गई होगी। क्योंकि आपने हमारे घर की हालत देखी थी। यदि किसी से कहूँ कि नाना साहब मुझे अभी पढ़ा रहे हैं, तो कोई इस पर विश्वास ही नहीं करेगा। परन्तु नाना साहब ने मुझे पढ़ने की अनुमति दे दी है। इसी वर्ष मैं मैट्रिक पास हो जाऊँगी और कालेज में पढ़ने लगूँगी और मधू दीदी, आप को यह भी बता दूँ कि मैं अभी गृहस्थी के चक्कर में भी नहीं पड़ी हूँ।"

लीला की ये गर्व-भरी बातें सुन कर, मैं आश्चर्य-चकित हो गयी। नाना साहब के कड़े अनुशासन में यह लड़की भीगी बिल्ली क्यों नहीं हुई। इसी पर मुझे ताज्जुब हुआ और सब से बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि वह अभी तक अविवाहित कैसे रह गयी? परन्तु इन सब बातों की पूछताछ करने का वह समय न था। धीरे-धीरे मुझे सब मालूम ही हो जाएगा, फिर इतनी उत्सुक क्यों होऊँ, यह विचार करके मैं उससे और अधिक प्रश्न पूछने की झंझट में न पड़ी।

इस विचार के कारण कि बहुत से लोग मेरे स्वागत के लिए बंदरगाह पर आयेंगे, मुझे जो संकोच हो रहा था, सिर्फ इन दो के ही आने से दूर हो गया। एक तरह से मुझे संतोष हुआ, परन्तु सब लोगों को देखने की उतनी ही तीव्र उत्कंठा मेरे प्राणों को व्याकुल कर रही थी। ताई से मिलने के लिये तो मेरे प्राण आँखों में आ गए थे। पाँच साल के भीतर चन्दू इतना बड़ा दिखने लगा, लीला एक युवती लगने लगी, तो फिर ताई कहीं बूढ़ी न दिखने लगी हों, यह विचार मेरे मन को झकझोरने लगा। मुझे लग रहा था, कि मैं अपनी ताई को जितनी बड़ी छोड़ कर गयी थी, उतनी ही बड़ी देखूँ, वह ठीक उसी तरह दिखायी दे, उसमें भीतर या बाहर कोई फर्क न हुआ हो। परन्तु काल के प्रहार से

होने वाले फर्क को रोक रखना, मेरी रुचि पर थोड़े ही अवलंबित रह सकता था।

गाड़ी में बैठ कर, हम घर पहुँचे। चन्दू का घर यद्यपि एक बड़ी 'चाल' में था, फिर भी वह चाल अन्य चालों की तरह छोटे-छोटे कमरों वाला कबूतरखाना न था। चंदू जहाँ रहता था, वे कमरे काफी बड़े थे। उन दिनों तीन-चार कमरों वाले ऐसे घर को "फ्लैट" कहते थे।

दरवाज़े पर ताई खड़ी हुई मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। जीना चढ़-कर मेरे ऊपर पहुँचते ही वह मेरी ओर दौड़ पड़ी और उसने मुझे कस-कर अपनी बाँहों में भर लिया। पूरी तरह मैं उसके चेहरे को देख ही न सकी। वह लगातार सिसक रही थी और बाँहों का बंधन मुक्त न कर, धीरे-धीरे मेरी पीठ सहला रही थी। मुझसे भी सिसकियाँ न रोकी गयीं।

मुझे अपने आप पर ही आश्चर्य हुआ। इतने बरसों के बाद मुला-कात होने पर भी एक दूसरे के चेहरे की ओर पूरी तरह न देखकर, एक दूसरे से लिपटी हुई हम रो क्यों रही थीं? उसे दुख तो निश्चय ही नहीं कहा जा सकता।

पाँच साल का विछोह किसी भी कुटुम्ब में बिल्कुल असंभव बात नहीं है। पाँच साल तक अपने नैहर न आने वाली लड़कियों की संख्या कोई कम नहीं। उसी तरह यदि मैं भी यह सोचूँ कि पाँच साल के लिए मैं अपने नैहर ही गयी थी, तो बीच में हजारों मील लम्बे समुद्र का व्यवधान सामने उपस्थित था। पाँच साल तक नैहर न आने वाली लड़की से यदि उसके आत्मीय मिलना चाहें, तो उस लड़की की ससुराल जाकर उससे मिल सकते हैं। पर मेरे बारे में यह संभव न था। इस अवधि में मुझसे कोई न मिल सका—

इसीलिए यह भेंट इतनी आनन्ददायी हुई और यही कारण था कि इस मिलन के क्षण में हमारे हृदय खुल कर सिसकने लगे।

उसी स्थिति में मेरा हाथ पकड़े, ताई मुझे घर के भीतर ले गयी।

काका एक इजी चेयर पर आराम से बैठे हुए थे। उन्होंने अपने चेहरे पर ऐसे कोई भाव प्रकट न होने दिये जिससे पता चलता कि उनके मन में कोई हलचल हो रही है। उनकी अपनी पुरानी स्थितप्रज्ञ वृत्ति ज्यों-की-त्यों कायम थी।

अब कहीं मैंने ताई की ओर देखा—खूब जी भर कर देखा। उसमें किसी भी प्रकार का कोई फर्क न हुआ था। यह देखकर मुझे अत्यानन्द हुआ। चंदू बदल गया, लीला बदल गयी, काका पर भी वृद्धावस्था की छाया दिखने लगी। पर ताई जैसी पहिले थी वैसी ही अब भी थी। मुझे समाधान हुआ।

मेरी पोशाक में यद्यपि विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी विलायत की जलवायु के अनुरूप मुझे अपनी पोशाक में थोड़े-बहुत परिवर्तन करने पड़े थे। बूट और स्टाकिंग्ज़ पहिने बिना चारा ही नहीं था। गरम कपड़ों को काम में लाना पड़ता था, परन्तु उस जमाने में यहाँ से विलायत जाने वाली कई हिन्दू-स्त्रियों की तरह मैं सिर पर से आँचल नहीं ओढ़ती थी।

मैं बूट और स्टाकिंग्ज़ उतारने लगी, तो काका बोले, "कम-से-कम इस हद तक तो तुम मेम बन गयी! मैं सोच रहा था कि तुम साड़ी के बदले फ्रॉक पहिन करके ही आओगी। पर बीच-बीच में यहाँ से साड़ियाँ मँगाती रहती थीं, इसलिए मुझे आशा थी कि शायद तुम फ्रॉक न पहनती होगी।" थोड़ी देर तक मेरे चेहरे की ओर देख कर, वे बोले—"और तुम्हारा यह कुंकुम तो ज्यों-का-त्यों बना है, इसे वहाँ लगाना छोड़ दिया था या यहाँ आना था इसलिए फिर लगाना शुरू कर दिया ?"

बूट के बंद खोलते हुए मैंने कहा—"जलवायु के अनुसार जितना परिवर्तन अनिवार्य था, उतना छोड़कर, मैंने और कोई परिवर्तन अपनी पोशाक में नहीं किया। मुझे अपना स्वत्व रखना था। पाँच साल विलायत में रहने के बाद भी मैंने अपने आचार-विचार में रंच-मात्र भी फ़र्क नहीं होने दिया।"

मेरी बात सुन कर, काका बीच-बीच में हँस पड़े। यह देखकर, ताई बोली—"आप कुछ भी सोचते हों, पर मुझे पूर्ण विश्वास था कि मथू जैसी गयी थी उसी रूप में लौट कर आएगी। उसमें कोई फर्क नहीं होगा। और मैंने जब यह देखा तब आनन्द से मेरा हृदय भर गया।"

"काहे का आनन्द हुआ ?" काका बोले, "आखिर बूट और स्टॉकिंग्ज पहिन कर तो आई है ? यह क्या कम परिवर्तन है ? हमारे यहाँ के लोगों से यह भी कहाँ बरदाश्त होगा ?"

मैंने हँसते हुए कहा, "मुझे आये देर नहीं हुई और आप दोनों लड़ने लगे। मेरे लिये आप दोनों में लड़ाई हो, यह जैसे निश्चित ही हो गया है। अब मुझे बाथरूम में जाकर मुँह हाथ भी धोने देंगे या नहीं ? या कि विलायत जाने से धर्म-भ्रष्ट हो जाने के कारण मुझे इस घर में घुसने की मनाही है ?"

"यह मैं क्या बताऊँ ?" काका बोले, "मैं इस घर का मालिक नहीं। घर के मालिक हैं ये वकील साहब। वे जैसी आज्ञा दें उस तरह रहो।"

मैंने चंदू की ओर मुड़ कर कहा, "क्या आज्ञा है वकील साहब ?

"क्या यह कोई प्रश्न है, मथू !" चंदू बोला, "अरे हाँ, पर मथू कहने से कहीं तुम नाराज तो न होगी, क्योंकि तुम विलायत से लौटकर आयी हो। केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी जैसे बड़े-बड़े विश्व-विद्यालयों की डिग्रियाँ तुम्हें मिली हैं। इसलिए सच पूछा जाय तो तुमसे 'अबे-तुबे' करने का हमें कोई अधिकार नहीं। विद्वता की दृष्टि से यदि देखा जाए, तो तुम्हारे सामने हम 'कोटश्चकीटायते' हैं। पर अभी यह बताओ, पहिले हाँथ-मुंह धोओगी या चाय पियोगी ?"

"अच्छा किया कि विषय बदल दिया !" मैंने कहा, "विद्वता की बात अभी छोड़ दें। पुराने आचार-विचार कुछ भी रहें पर कम-से-कम स्वच्छता और सफाई भी तो रखनी चाहिए न ? जहाज के सफर के बाद कुछ भी हो, फिर भी मन को ताजगी नहीं मालूम होती। चौदह

दिन मैंने जहाज पर विताये, वहाँ रोज नहाती थी, फिर भी मन तरो-ताजा न रहता था। वहाँ की हवा का ही एक अजीव-सा असर हुआ करता है। यहाँ आते ही मन में एक तरह की फुर्ती-सी आ गयी और मन में पहिली बात आती है कि जाकर हाथ-पैर स्वच्छ धो लें। विलायत में हाथ धोने का वड़ा महत्व है। परन्तु हिंदुस्थान में सिर्फ हाथ धोने से काम नहीं चलता। हाथ-पाँव धोना यहाँ एक वड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। यहाँ तक कि मुँह धोने की वात भी वाद में आती है, पर हाथ-पाँव पहिले धोना चाहिए।" यह कहते हुए मैंने वूट और स्टॉकिंग्ज़ उतार कर अलग रख दिये।

लीला अभी तक मौन थी। परन्तु मेरी यह वात सुन कर उसे वोलने की स्फूर्ति हुई। वह वोली, "आप पाँच साल विलायत में रहीं चाची, पर हाथ-पाँव धोना नहीं भूलीं। यह बात है हम हिन्दू लोगों की! कितने ही साल विलायत में रहें, पर जन्मजात संस्कार नहीं छूटते।"

उसकी वात सुन कर मैं दंग रह गयी। क्षणभर के लिए उसकी ओर देखते हुए मैंने पूछा, "क्या तुम यह सोचती हो कि विलायत जाने पर मनुष्य स्वच्छता भी भूल जाता है? हाथ-पाँव धोना कोई आचार नहीं है। वह तो विल्कुल सीधा-सादा स्वच्छता का प्रश्न है। विलायत में लोग वूट और स्टॉकिंग्ज़ पहिनते हैं, इसलिए वहाँ पैर गंदे नहीं होते। वहाँ कड़ाके की ठंड पड़ती है। इसलिए वूट और स्टॉकिंग्ज़ के उतारने की भी जरूरत महसूस नहीं होती। पर यहाँ आते ही यहाँ की हवा का असर होने लगता है। अभी ही देख लो न? धूप भी ऊपर नहीं चढ़ी है, फिर भी पसीना आने लगा। स्वच्छता की याद यदि ऐसे समय नहीं आएगी, तो फिर कव आएगी?"

लीला चुप हो गयी। ताई वोली, "वहुत थकी आयी हो। इसलिए पहिले चाय पी लेने में क्या हर्ज है?"

मैंने कहा, "सच पूछा जाय, तो मैं भी चाय की प्यासी हो गयी हूँ। लगता है, जल्दी-से-जल्दी पीने को थोड़ी चाय मिल जाए। पर क्या करूँ

बिना हाथ-पाँव धोये मुझसे चाय पी ही नहीं जाएगी। हमारा जहाज बड़ा साफ था इस में शक नहीं। फिर भी यहाँ-वहाँ मेरे हाथ लग गये हैं और उन हाथों को अच्छी तरह साफ किये बिना चाय पीने का विचार ही बड़ा दुःसह होता है।"

ताई काका की ओर मुड़कर बोलीं, "सुना आपने? ऐसी बात है! हिन्दू स्त्री, चाहे वह कितने ही बरस विलायत में क्यों न रहे अपने संस्कारों को नहीं छोड़ सकती। ये संस्कार जब तक कायम हैं, तब तक कोई कितनी ही डींगें मारे, सब झूठ हैं।"

चंदू बोला, "मैंने पहले ही यह भविष्य कथन कर दिया था कि मथू के आते ही आप लोगों की बहस शुरू हो जायगी। परन्तु इसके लिए आप लोग इतनी जल्दी क्यों मचा रहे हैं? वह कौन अब फिर विलायत जा रही है। बहस करने के लिए आगे आपको भरपूर वक्त है।"

मैं उठ कर खड़ी हुई। उसी समय मुझे बाथरूम का रास्ता दिखाने के लिए चन्दू आगे बढ़ा। बीच के कमरे को पार कर हम भीतर गये। उसके आगे एक छोटा सा रास्ता था। उस रास्ते से बाथरूम की ओर जाते हुए सामने के कमरे से एक अपरिचित स्त्री—जिसे मैंने पहले कभी न देखा था—बाहर आयी और मुझे देखते ही चट-से भीतर घुस गयी।

मेरा कलेजा धक्-से हो गया। यह कौन होगा भला? क्या चन्दू की शादी हो चुकी? यह उसकी कहीं पत्नी तो न हो? किसी ने उसके नाम का कोई जिक्र क्यों नहीं किया? या वह कोई पाहुनी आई है?

मेरे मन में ये विचार आ रहे थे, तभी ताई आगे बढ़ कर बोली, "अजी, यूं शर्माती क्यों हो, बहू! मथू को आये कितनी देर हो गयी, पर तुम अभी तक उनसे मिलने भी नहीं आयी? सुना मथू, यह है हमारे चन्दू की पत्नी।"

मैं बाथरूम के भीतर कदम रख रही थी तभी ये शब्द मेरे कानों से टकराये और···

मेरी आँखों के सामने एक दम अँधेरा छा गया।

सरूबाई

चट-से आगे बढ़ कर ताई मुझे न सँभाल लेती, तो मैं एकदम जमीन पर गिर पड़ती। ताई बोली, "क्या हुआ ? क्या गश आ गया ?"

"शायद हवा बदलने का असर होगा !" मैंने हकलाते हुए कहा। मैं क्या कह रही थी, इसका मुझे पता था, परन्तु उस नयी युवती के प्रत्यक्ष सामने होते हुए मुझे यह कहने की हिम्मत न हुई कि उसके बारे में मुझे कोई शक हुआ।

चाय के बाद स्नान करके हम खाना भी खा चुके। विलायत की बातें लगातार हो रही थीं। वहाँ की अनेक मजेदार बातें मैं सुना रही थी। उन्हें सुन कर उन सब का मनोरंजन हो रहा था—पर यह सब होते हुए भी मेरा मन एक ही बात पर केन्द्रित हो गया था।

चन्दू की पत्नी का ससुराल का नाम सरस्वती रखा गया था। चंदू का नाम भालचन्द्र था और भालचन्द्र गणेश जी का नाम होने के कारण तत्कालीन प्रथा के अनुसार भालचन्द्र की पत्नी का नाम सरस्वती रखा गया था। सच पूछा जाय तो गणेश जी और सरस्वती का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु गणेश की पत्नी का नाम सरस्वती रखने में यह मान लिया जाता है कि सरस्वती गणेश जी की पत्नी हैं। पुराण सम्बन्धी हमारे ज्ञान में जो अनेक घुटाले हैं, उन्हीं में एक यह भी है।

उसका नाम यद्यपि सरस्वती रखा गया था, फिर भी काका उसे "सरू" ही कहते और ताई 'सरूबाई' कहती। काका हर किसी को उसके छोटे नाम से ही पुकारा करते। उनकी यह एक आदत ही थी। कोंकण के सार्वत्रिक प्रचार के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके छोटे नाम से पुकारना उस व्यक्ति के प्रति पुकारने वाले के प्रेम और घनिष्ठता

का परिचायक माना जाता है। यही कारण था कि वे सरस्वती को भी 'सरू' कह कर ही सम्बोधित करते। परन्तु सरू को जब वे पुकारते, तो उनकी उस आवाज में उनके स्वर की स्वाभाविक कोमलता दिखायी न देती। इससे मैंने यह अनुमान लगाया कि सरूबाई के प्रति उनका मत कोई विशेष आत्मीयता का नहीं था। पति-पत्नी यदि काका के सामने बातें करते, तो उन्हें कोई रुकावट न थी। परन्तु इस जमाने में बुजुर्गों के सामने पति-पत्नी का एक दूसरे से बातें करना असभ्यता माना जाता था। इस कारण मैंने उस दिन चन्दू और उसकी पत्नी को एक दूसरे से बातें करते कभी नहीं देखा। पर केवल इसी कारण से यह अंदाज लगा लेना कि पति और पत्नी में पटती नहीं है, एक भूल हो जाती।

चन्दू और उसकी पत्नी दोनों की कहाँ तक पटती है इस विषय में यदि मैं ताई से पूछती, तो वह मुझे न बताती, ऐसी बात न थी। परन्तु वह बात मुझसे पूछी ही नहीं जाती थी। इस विषय में मुझे संकोच ही होता था। मैंने स्वयं चन्दू की पत्नी से कोई बात न की और वह भी मुझ से बातें करने के लिए कोई बड़ी उत्सुक हो, यह भी दिखायी न दिया।

लीला थी। उससे पूना के समाचार पूछने में मेरा बहुत-सा समय बीत गया। नाना साहब अभी तक केसरी आफिस में ही थे। उनका शरीर यद्यपि बहुत कुछ बदल गया था, पर उनके स्वभाव में कोई बदलाहट नहीं हुई थी। वह बिल्कुल पहिले जैसा ही था। लीला की माँ अपने पति के कड़े शासन में उसी तरह भीगी बिल्ली जैसी आज भी रह रही थी। ये बातें मुझे लीला से मालूम हुईं।

फर्क अगर हुआ था तो लीला में। बचपन में वह कोई बेवकूफ न थी, पर थी थोड़ी डरपोक ही। परन्तु अब वह बड़ी मुँहफट हो गयी थी। जब वह बातें करने लगती, तो लगातार करती रहती। दूसरे किसी को बात करने का मौका ही न देती। उस दिन उसने अपनी शाला, घर और सहेलियों के बारे में जो बातें शुरू की, तो घंटों करती

रही । उन्हें सुनते रहने के कारण मुझे ताई से बातें करने के लिए उस दिन अवकाश ही न मिला।

इसके अलावा काका भी बीच-बीच में मुझसे विलायत की बातें पूछ रहे थे और उन्हें उत्तर देने में मैं बड़ा कष्ट अनुभव कर रही थी। विलायत में रहते हुए अपने आहार और रहन-सहन में, विवश होकर मुझे ऐसी बातें करनी पड़ती थी जो हिन्दुस्थान में रहने वालों की दृष्टि में त्याज्य मानी जाती हैं। उनका हाल कहते हुए मुझे स्वयं बुरा लग रहा था।

पर उन्हें सुनकर काका को कोई बुरा नहीं लगता था, यह मैं स्पष्ट देख रही थी। वे बोले, "ऐसा तो होगा ही। खान-पान के नियमों का पालन करके भी विलायत में रहा जा सकता है, यह मैं जानता हूँ। परन्तु यह बात सिर्फ धनी लोग ही कर सकते हैं। वहाँ अगर थोड़े खर्च में रहना है, तो आहार के नियमों का पालन करने से काम नहीं चल सकता, ऐसा बहुत लोगों ने मुझ से कहा है। निरामिष भोजन विलायत में बड़ा मँहगा पड़ता है। इसलिए तुम जिस परिस्थिति में गयी थी, उस परिस्थिति के अनुरूप तुम्हें अपने आहार में यदि कुछ परिवर्तन करना पड़ा हो, तो उसके लिए मुझे बुरा न लगेगा। अब इसके बाद कोई प्रायश्चित का प्रश्न उठाये—नहीं मैं ही तुम से पूछता हूँ—क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि आहार में तुम्हें जो परिवर्तन करना पड़ा, उसके लिए प्रायश्चित लेने की आवश्यकता है ?

उत्तर देने के लिए मुझे क्षण-भर सोचना पड़ा। विचार करने पर भी मैं निश्चयपूर्वक कुछ भी न कह सकती थी। इसलिए मैंने कहा, "अभी तक मैंने इस विषय पर सोचा ही नहीं है। यदि मुझे यह बात जँच गयी कि प्रायश्चित लेना आवश्यक है, तो मैं प्रायश्चित भी ले लूँगी। परन्तु इस सम्बन्ध में मुझे विशेष रूप से पूछ-ताछ कर लेनी चाहिए। तब तक आप लोग यदि मुझे अपनी पंक्ति में भोजन के लिए बिठाना न चाहते हों, तो बड़ी खुशी से मेरे लिए दूर परोस दिया करें।

मेरी यह बात सुनकर, ताई एकदम ठहाका मार कर हँस पड़ी। बोली, "आप ही क्यों प्रायश्चित के लिए इतना हठ पकड़े बैठे हैं ? इसी बम्बई और पूना में मैंने सर्वत्र देखा है कि कोई भी मनुष्य कहीं भी जाकर कुछ भी अभक्ष्य खा लेता है। पर यह बात गुप्त रूप से होती है। उसे फैलने का मौका नहीं मिलता। कोई कहेगा कि तुम विलायत गयी थी। वहाँ तुमने अभक्ष्य भक्षण करके अपने धर्म के विरुद्ध काम किया है। इसलिए तुम्हें अब प्रायश्चित लेना ही होगा। परन्तु जिन लोगों ने हिन्दुस्थान में ही रहते हुए अभक्ष्य भक्षण करके अपने धर्म पर आघात किया है, उन पर कोई प्रायश्चित की सख्ती क्यों नहीं करता ? जब तक इन लोगों से प्रायश्चित नहीं कराया जाता, तब तक तुम्हें भी प्रायश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं।"

"देखा मथू—" काका बोले, "ये तो हम पुरुषों से भी अधिक सुधारक बनने लगी हैं। आगरकर[1] की पुस्तकों को पढ़ने का ही यह प्रभाव है। तुम्हारे जाने पर इनका मन बड़ा उद्विग्न हो गया था, इस-लिए मैंने कुछ पुस्तकें लाकर इन्हें पढ़ने को दी थीं। उनमें कुछ आगर-कर की थीं, कुछ लोक हितवादी की थीं और सब में बुरी याने श्री भागवत की थीं। उन पुस्तकों को पढ़ने से इनका दिमाग आज-कल कुछ बिगड़ गया है। समाज-सुधार सम्बन्धी बातें करने में ये किसी अच्छे से अच्छे सुधारक को भी लज्जित कर सकती हैं। मैं सोचता था कि ये सिर्फ बोल कर ही रुक जाएँगी, पर ये साफ-साफ तुमसे कह रही हैं कि तुम्हें प्रायश्चित की कोई जरूरत नहीं। यह सुनकर तो मैं स्तंभित ही हो गया हूँ।"

इस विषय में चन्दू का क्या मत है, यह जानने के लिए मैं उत्कंठित थी, पर वह कचहरी गया था। उसके लौटने पर, रात को, किसी न किसी बहाने यह विषय पुनः निकाल कर उस चर्चा करने का मैंने निश्चय

१—महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज-सुधारक

किया । इसी समय लीला बोली, "आपने यदि प्रायश्चित न लिया, तो आप हमारे घर नहीं आ सकेंगी, यह निश्चित है । इस विषय में हमारे घर काफी चर्चा हो चुकी है । नाना साहब का तो यह ख्याल है कि आप वहाँ से ईसाई होकर ही लौटेंगी । विलायत जाने पर हिन्दू धर्म में कोई रह ही नहीं सकता, ऐसी उनकी पक्की धारणा है । जहाज से उतरते हुए जब मैंने आपको देखा, उस समय मैं भी आश्चर्यचकित हो गयी । मैं सोच रही थी कि आप शायद मेम जैसी पोशाक पहिन कर आएँगी । सोचा, अपनी मैडम चाची को खूब जी भरकर देखूंगी । पर मैं निराश हो गयी । बूट और स्टॉकिंग्ज़ के बारे में मुझे कोई खास दिलचस्पी नहीं मालूम हुई । यहाँ भी आज कल कोई-कोई औरतें बूट और स्टॉकिंग्ज़ पहिनने लगी हैं । फिर कड़ाके की ठंड वाले उस देश में यदि आपने बूट स्टॉकिंग्ज़ पहिने, तो कोई आश्चर्य नहीं । परन्तु पोशाक के बारे में मैं अलबत्ता निराश हो गयी । यही कहो न, कि मुझे बुरा ही लगा । यदि आप मेम की पोशाक पहिन कर आतीं तो मुझे बड़ी खुशी होती । अब जब कहीं आपका नाम छपेगा, तो उसके आगे बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लगाई जाएँगी । पर जब कोई आपको देखने आएगा, तो कम-से-कम आपकी पोशाक तो ऐसी होनी चाहिए थी कि देखते ही मालूम हो जाए कि यह विलायत से डिग्रियाँ लेकर लौटी हुई महिला है । इसीलिए मैं कहती हूँ कि यदि आप मेम जैसी पोशाक में आतीं, तो मुझे अधिक खुशी हुई होती ।"

लीला के इस लम्बे भाषण पर सचमुच मुझे बड़ी हँसी आई । उसके विचार बड़े विलक्षण थे, इसमें संदेह नहीं । हिन्दुस्थान के वे पुरुष जो विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त कर लेते हैं, आजकल अँग्रेजी ढंग की पोशाक पहिनने में बड़ी दक्षता दिखाते हैं । हिन्दुस्तानी पोशाक में रहने वाला डिग्रीधारी पुरुष विरला ही होगा । अचानक दौलत मिल जाने से उसका प्रदर्शन करने के लिए जिस तरह कोई स्त्री अपने आप को गहनों से मढ़ लेती है, उसी तरह डिग्री मिलते ही पुरुष उस जमाने

में, अपनी पोशाक एकदम अँग्रेजी ढंग की कर लिया करते थे। डिग्री-धारियों की संख्या उन दिनों अधिक न थी। इसलिए उनकी यह इच्छा रहा करती कि हमारी पोशाक देखकर ही लोगों को मालूम हो जाए कि हम डिग्रीधारी हैं और हमें उनसे अपने मुँह से यह न कहना पड़े कि हमें डिग्री मिली है। उस तत्कालीन प्रचार के अनुरोध से लीला जो सोच रही थी, वह असंभाव्य नहीं था।

मैं विलायत की बातें सुना रही थी। ताई लीला और काका मेरे सामने बैठे हुए उन बातों को सुन रहे थे। पर सरूबाई मेरे सामने आकर नहीं बैठी। यही नहीं, बल्कि विलायत की मेरी बातें सुनने में उसने जान बूझ कर अनास्था दिखायी, ऐसा मुझे दिखाई दिया। हम जब बातें कर रहे थे, उस समय वह रसोई के द्वार के पास बैठी दाल-चावल चुन रही थी।

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। कहते हैं कि औरतों में जरूरत से ज्यादा जिज्ञासा होती है। बेकार की झंझटें करने की आदत औरतों में होती है, ऐसा पुरुषों का उन पर आरोप है। विलायत की बातें कौन नहीं सुनना चाहेगा? ऐसी बातें बार-बार सुनने को नहीं मिलतीं। शायद ही कभी एकाध मौका ऐसा आता है। इसके बावजूद सरूबाई दूर बैठी थी, इसी का मुझे आश्चर्य हुआ। एक बार मेरे मन में यह भी आया था कि उसे पुकारूँ। परन्तु हम दोनों का परिचय करा दिये जाने के बाद भी वह मुझसे हमेशा दूर-दूर रहने की ही कोशिश करती और हम दोनों में घनिष्ठता हो, ऐसा कोई लक्षण न दिखाती, इसलिए उसे पुकारने में मुझे संकोच हुआ।

मेरे मन में एक और संशय आया। कहीं चन्दू ने उससे पहिले की बातें तो न कह दी हों?

पर मेरा मन यह न मानता कि चन्दू ने ऐसा कहा होगा।

हम बातें कर रहे थे। इसी बीच वह आयी और उसने ताई से कहा—"मैं जरा बाहर जाकर अभी आती हूँ।" इतना कहकर वह

चली गयी। तब मैंने ताई से पूछा, "चन्दू की पत्नी का स्वभाव कैसा है?"

मेरा प्रश्न सुनकर ताई थोड़ी देर तक चुप रही और फिर काका की ओर मुड़कर बोली—"अब इसका जवाब आप ही दीजिए। मैं तो हमेशा यहाँ आती नहीं। जब से चन्दू ने यहाँ गृहस्थी जमाई है तब से मैं यहाँ अभी आई हूँ और इससे पहिले एक-दो दिन के लिए एक बार और आई थी। मैं गाँव में थी, उस समय विवाह के बाद वह वहाँ आकर कुछ दिन मेरे पास रही थी। उस समय मुझे उसका जो अनुभव हुआ उस पर से बताना याने···" कहकर वह चुप हो गयी।

काका बोले, 'बीच ही में क्यों रुक गयीं? जो कहना चाहती हो, साफ-साफ कह दो। सुनो मथू, ये कुछ नहीं बतायेंगी – मैं बताता हूँ। चन्दू का विवाह हो जाने के बाद मैंने अपनी गलती महसूस की। लड़की देखने मैं ही गया था। मैंने लड़की देखकर विवाह तय कर दिया हो, यह बात नहीं है। फिर भी मेरे लड़की देखने के बाद मैंने ही चन्दू को उसे देखने के लिए भेजा। उसने शायद यह सोचा होगा कि लड़की मुझे पसंद है। वैसे पढ़ी-लिखी है, मराठी की पाँचवीं कक्षा तक पढ़ी है, अँग्रेजी स्कूल में अलबत्ता पढ़ने नहीं गयी, पर इतनी भी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आज मिलती कहाँ हैं? पूना की है। भले परिवार की है। बाप सरकारी अफसर है। ये सब अपनी बातें देखकर, मैंने चन्दू को एक तरह से विवाह करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह जाकर लड़की को स्वयं देख आया। जब लड़की के बाप ने बात चलाई, तो मैंने चन्दू से पूछा और उस समय उसने भी स्वीकृति दे दी। पसंद करने की जिम्मेवारी चन्दू पर डालकर, एक तरह से यद्यपि मैं अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो गया था, फिर भी मैंने अपनी असली जिम्मेदारी पूरी की, ऐसा आज मुझे नहीं लगता। इस विषय में मुझ से गलती हुई है, अपराध हुआ है, पाप हुआ है—यही नहीं, बल्कि मेरी इस मूक सम्मति के कारण ही चन्दू ने सोचा कि यह सम्बन्ध मुझे पसंद है। सच पूछा जाय तो आज की उसकी गृहस्थी सुख की गृहस्थी नहीं है। मेरा ख्याल है कि चन्दू की प्रैक्टिस

धड़ल्ले से चल रही है। यह मैंने इसलिए कहा कि उससे मैं उसकी आय का हिसाब कभी नहीं पूछता। मुझे चन्दू पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए उससे इस प्रकार का कोई हिसाब लेने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। उसकी वकालत अच्छी चल रही है, इसीलिए मैं बार-बार यहाँ आता रहता हूँ। पर जब भी मैं यहाँ आता हूँ, मेरा पाप मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। पहिले मेरी यह धारणा थी कि शायद संकोच के कारण वे दोनों मेरे सामने एक दूसरे से बातें नहीं करते। पर जैसे जैसे मैं बारीकी से निरीक्षण करने लगा, वैसे-वैसे मुझे पता लगने लगा कि मेरी धारणा गलत है। उन दोनों के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर है। समानता है तो केवल बात में। दोनों चतुर हैं। दोनों के पास दिमाग है। दोनों समझदार हैं। दोनों में कोई भी दूसरे से साफ-साफ यह नहीं बताता कि किसकी शिकायत है? एक दृष्टि से यह अच्छी बात है, फिर भी इसके कारण उन दोनों के बीच की खाई अधिक गहरी हो रही है। एक बार मैंने थाह लेने की कोशिश की। पर दोनों में से किसी ने भी मुझे कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। बम्बई की चाल में रहने वाले दो कमरों के दो मनुष्य भी अधिक घनिष्ठता से रहते हैं, परन्तु इन दोनों के बीच हमेशा एक दूसरे के बारे में चुनमुन चलती ही रहती है। यह देखकर, मेरे मन में आता है कि इस पाप का धनी मैं ही हूँ और यह महसूस होते ही मेरा हृदय टूक-टूक होने लगता है।"

इतना कह कर काका चुप हो गए। ताई तो गर्दन झुकाये ही थी। मैं भी क्या बोलती? जब से आई थी, मेरी जबान बराबर चल रही थी, पर इस विषय के ऊहा पोह के कारण वह एकदम बन्द हो गयी।

बहुत देर तक कोई कुछ न बोला। लीला के बक्की स्वभाव को यह शान्ति शायद रुची नहीं। वही बोली—"कैसी अच्छी बातें हो रही थीं? आपने यह कहाँ की बात निकाल दी, चाची! अब क्या हो सकता है? विवाह होना था, सो हो चुका है। दोनों की आपस में नहीं पटती, यह भी निश्चित है। तो अब इसके लिये उपाय क्या है? आप

क्यों परेशान होती हैं ? इसी तरह के दम्पत्ति हमें हर जगह मिलते हैं। इसलिए मेरे मन में आता है कि विवाह ही न करूँ। परन्तु चाची, कहीं आप यह न समझ लेना कि इसमें सत्य का अंश है। मुझे विवाह करना है। परन्तु जब ऐसे पति-पत्नि देखती हूँ तब दिल में आता है कि विवाह आखिर किया ही किस लिए जाए ? सच पूछा जाय, तो मुझे आपसे बड़ी ईर्ष्या होती है, चाची ! आप जैसी ही मैं भी यदि बाल-विधवा होती "

"चुप रह ! कलमुँही कहीं की।" ताई चिल्लाकर बोल उठी, "कुछ समझती भी है निगोड़ी कि कहाँ कैसी बात करनी चाहिए ?"

लीला बोली—"मेरी समझ में कुछ आवे चाहे न आवे, पर 'बाल-विधवा होती तो' कहने से कुछ नहीं बिगड़ता। मैं अब इतनी बड़ी हो गयी हूँ कि अब आगे चलकर मैं विधवा भी हो गयी, तो मुझे कोई बाल-विधवा न कहेगा। मुझे बड़ी विधवाओं में गिनेंगे। इसलिए सिर्फ बहस के लिये यदि मैंने विधवा शब्द का उपयोग किया, तो इसका आप को दुःख क्यों होता है—क्यों बुरा लगता है ? मैं सच कहती हूँ, यदि मैं विधवा हो जाती तो यह रोज की मेरे पीछे लगी विवाह की बात तो कम-से-कम नहीं सुननी पड़ती। चाची के विवाह की क्या कोई कभी चर्चा करता है ? कितनी सुखी हैं वे ? इतनी बढ़ गयी हैं, पर बढ़ी हुई लड़की कहकर कोई उन पर उँगली नहीं उठाता। क्यों ? आप कहेंगी कि उनका विवाह हो चुका। पर वह कैसा विवाह ? तेरहवें दिन की तेरही की याद और विवाह की याद—उनकी दृष्टि में ये दोनों एक सी ही हैं। इसीलिए मैं कहती हूँ कि चन्दू की ऐसी गृहस्थी की अपेक्षा बाल-वैधव्य हजार गुना अच्छा !"

लीला की यह बात सुनकर, किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सायंकाल को हम घूमने गये। पहले हम ट्राम से रवाना हुए। ट्राम से जहाँ तक जाया जा सकता था वहाँ तक हम गये। इसके बाद विक्टोरिया से मालाबार हिल गये। बम्बई के माथे पर खड़े होकर समुद्र के किनारे की शोभा जी-भर कर देखी। मातृभूमि के दर्शन से मन की भूख

घड़ल्ले से चल रही है। यह मैंने इसलिए कहा कि उससे मैं उसकी आय का हिसाब कभी नहीं पूछता। मुझे चन्दू पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए उससे इस प्रकार का कोई हिसाब लेने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। उसकी वकालत अच्छी चल रही है, इसीलिए मैं बार-बार यहाँ आता रहता हूँ। पर जब भी मैं यहाँ आता हूँ, मेरा पाप मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। पहिले मेरी यह धारणा थी कि शायद संकोच के कारण वे दोनों मेरे सामने एक दूसरे से बातें नहीं करते। पर जैसे जैसे मैं बारीकी से निरीक्षण करने लगा, वैसे-वैसे मुझे पता लगने लगा कि मेरी धारणा गलत है। उन दोनों के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर है। समानता है तो केवल बात में। दोनों चतुर हैं। दोनों के पास दिमाग है। दोनों समझदार हैं। दोनों में कोई भी दूसरे से साफ-साफ यह नहीं बताता कि किसकी शिकायत है? एक दृष्टि से यह अच्छी बात है, फिर भी इसके कारण उन दोनों के बीच की खाई अधिक गहरी हो रही है। एक बार मैंने थाह लेने की कोशिश की। पर दोनों में से किसी ने भी मुझे कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। बम्बई की चाल में रहने वाले दो कमरों के दो मनुष्य भी अधिक घनिष्ठता से रहते हैं, परन्तु इन दोनों के बीच हमेशा एक दूसरे के बारे में चुनमुन चलती ही रहती है। यह देखकर, मेरे मन में आता है कि इस पाप का धनी मैं ही हूँ और यह महसूस होते ही मेरा हृदय टूक-टूक होने लगता है।"

इतना कह कर काका चुप हो गए। ताई तो गर्दन झुकाये ही थी। मैं भी क्या बोलती? जब से आई थी, मेरी जबान बराबर चल रही थी, पर इस विषय के ऊहा पोह के कारण वह एकदम बन्द हो गयी।

बहुत देर तक कोई कुछ न बोला। लीला के बक्की स्वभाव को यह शान्ति शायद रुची नहीं। वही बोली—"कैसी अच्छी बातें हो रही थीं? आपने यह कहाँ की बात निकाल दी, चाची! अब क्या हो सकता है? विवाह होना था, सो हो चुका है। दोनों की आपस में नहीं पटती, यह भी निश्चित है। तो अब इसके लिये उपाय क्या है? आप

क्यों परेशान होती हैं ? इसी तरह के दम्पत्ति हमें हर जगह मिलते हैं। इसलिए मेरे मन में आता है कि विवाह ही न करूँ। परन्तु चाची, कहीं आप यह न समझ लेना कि इसमें सत्य का अंश है। मुझे विवाह करना है। परन्तु जब ऐसे पति-पत्नि देखती हूँ तब दिल में आता है कि विवाह आखिर किया ही किस लिए जाए ? सच पूछा जाय, तो मुझे आपसे बड़ी ईर्ष्या होती है, चाची ! आप जैसी ही मैं भी यदि बाल-विधवा होती "

"चुप रह ! कलमुँही कहीं की।" ताई चिल्लाकर बोल उठी, "कुछ समझती भी है निगोड़ी कि कहाँ कैसी बात करनी चाहिए ?"

लीला बोली—"मेरी समझ में कुछ आवे चाहे न आवे, पर 'बाल-विधवा होती तो' कहने से कुछ नहीं बिगड़ता। मैं अब इतनी बड़ी हो गयी हूँ कि अब आगे चलकर मैं विधवा भी हो गयी, तो मुझे कोई बाल-विधवा न कहेगा। मुझे बड़ी विधवाओं में गिनेंगे। इसलिए सिर्फ बहस के लिये यदि मैंने विधवा शब्द का उपयोग किया, तो इसका आप को दुःख क्यों होता है—क्यों बुरा लगता है ? मैं सच कहती हूँ, यदि मैं विधवा हो जाती तो यह रोज की मेरे पीछे लगी विवाह की बात तो कम-से-कम नहीं सुननी पड़ती। चाची के विवाह की क्या कोई कभी चर्चा करता है ? कितनी सुखी हैं वे ? इतनी बढ़ गयी हैं, पर बढ़ी हुई लड़की कहकर कोई उन पर उँगली नहीं उठाता। क्यों ? आप कहेंगी कि उनका विवाह हो चुका। पर वह कैसा विवाह ? तेरहवें दिन की तेरही की याद और विवाह की याद—उनकी दृष्टि में ये दोनों एक सी ही हैं। इसीलिए मैं कहती हूँ कि चन्दू की ऐसी गृहस्थी की अपेक्षा बाल-वैधव्य हजार गुना अच्छा !"

लीला की यह बात सुनकर, किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सायंकाल को हम घूमने गये। पहले हम ट्राम से रवाना हुए। ट्राम से जहाँ तक जाया जा सकता था वहाँ तक हम गये। इसके बाद विक्टोरिया से मालाबार हिल गये। बम्बई के माथे पर खड़े होकर समुद्र के किनारे की शोभा जी-भर कर देखी। मातृभूमि के दर्शन से मन की भूख

ओर प्यास जैसे शान्त हो गयी।

दीये जलने पर घर लौटे। उस समय चन्दू आ गया था। हमारे आने का उसे पता तक न लगा इतना गुस्से में था वह। बड़े जोर-जोर से वह अपनी पत्नी से लड़ रहा था। लड़ने की अपेक्षा यदि यह कहूँ कि वह उसे गालियाँ दे रहा था तो अधिक ठीक होगा।

हमें आये हुए देखकर उसका मुंह बंद हो गया।

अपनी बकबास के कारण वह कुछ झेंप-सा गया था। यह देखकर कि कोई यह नहीं पूछ रहा है कि वह क्यों लड़ रहा था, उसकी झेंप पद-पद पर बढ़ रही थी।

भोजन के बाद हम फिर बैठकखाने में आकर बैठे। मुझे दोपहर की याद हो आई और मैंने चन्दू से साफ-साफ शब्दों में पूछा, "देखो चन्दू, मैं विलायत से लौटकर आयी हूँ। वहाँ मैंने खान-पान के नियमों का ठीक से पालन नहीं किया था। तो बताओ, मुझे प्रायश्चित लेना चाहिए क्या ?"

मेरा प्रश्न सुनकर वह मेरी ओर लगातार देखता ही रहा। उत्तर देने के लिए उसके मुंह से शब्द ही नहीं निकलते थे।

गृहिणी

यह देखकर कि चन्दू मौन है, काका बोले, "क्यों भई, चुप क्यों हो ? क्या कोई उत्तर नहीं सूझ रहा है ? या सच कहने के लिए डर रहे हो ? देखो, सच कहने में डरना कोई अच्छी बात नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम वकील हो गये हो। झूठ बोलना तुम्हारा पेशा है। उस पेशे के कारण, झूठ बोलना तुम्हें जितना आसान मालूम होता है उतना ही सच बोलना कठिन लगता है, यह भी मैं जानता हूँ। हमें झूठ बोलने का अभी अभ्यास नहीं हुआ है। मन में जो उद्गार आता है, वह ज्यों का त्यों मुँह से बाहर निकल पड़ता है। हमें जानबूझ कर सच बोलने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसलिए तुम्हारे इस अल्प मौन पर हमें आश्चर्य नहीं हुआ। अब जब तुम मुँह खोलो, तो सच ही बोलना ?"

काका की यह बात सुनकर, चन्दू मन-ही-मन हँसा और बोला—"आपकी बात झूठ नहीं है। कुछ ऐसा ही हो गया है, इसमें शक नहीं। सच हो या झूठ हो, बिना सोचे किसी भी बात को कहने का अभ्यास धीरे-धीरे छूट रहा है। काँटे भरे रास्ते में चलते समय मनुष्य जितनी सावधानी से कदम रखता है, उतनी ही सावधानी बरत कर हमें बात करनी चाहिए, यह हमारा अब जैसे एक स्वभाव ही बन गया है। मथू के प्रश्न का जवाब देने के लिए मेरे सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गयी है। इतने सालों के बाद मथू घर आई है। मुझे लग रहा है कि अब वह मेरे ही घर रहे, अन्यत्र कहीं न जाए। अब यदि सच कहता हूँ, तो उसे मेरा घर छोड़ना पड़ेगा।"

"सो क्यों, भई ?" काका की भौंहे तन गयीं। चन्दू के मुँह से चट से उत्तर न निकला। उसने एक बार मेरी ओर देखा। फिर दरवाजे की आड़ में खड़ी अपनी पत्नी पर निगाह डाली और इसके बाद बोलना शुरू किया—"हम स्वयं धर्म का कितना पालन करते हैं, यह हम जानते हैं। यदि हम धार्मिक-बन्धनों का सचाई से पालन करें, तो हमें दिन में कम-से-कम तीन बार रोज प्रायश्चित लेना पड़े। जब हमीं इस दशा में हैं, तब मथू से मैं किस मुँह से कहूँ कि वह प्रायश्चित ले ? चूंकि इस समय मुझे सच बोलना है, इसलिए मुझे यही कहना होगा कि उसे प्रायश्चित नहीं लेना चाहिए। लेकिन यदि वह प्रायश्चित नहीं लेगी, तो मेरे घर में नहीं रह सकती। अब आपसे क्यों छिपाऊँ ? यह मेरी गृहिणी की आज्ञा है। आज मथू यहाँ रही, इसी विषय को लेकर हम दोनों अभी लड़ रहे थे। उसने कल पुरोहित को बुलाकर 'शांत" करने के लिये मुझ से कहा है। यही नहीं, बल्कि यह भी जता दिया है कि कल यदि मथू प्रायश्चित नहीं लेती, तो या तो उसे इस घर से चली जाना चाहिये या फिर मैं ही घर छोड़कर अपने मायके चली जाऊँगी। आप बुजुर्ग हैं—आप ही इसका फैसला कर दें।"

चन्दू बड़ी गम्भीरता से बोल रहा था। पर उसकी बात समाप्त होते ही काका जोर से हँस पड़े। चन्दू के चेहरे से ऐसा लगा जैसे वह काका की इस वृत्ति पर कुछ क्रोधित-सा हो गया।

काका बोले—"तुम मेरे मतों से अपरिचित नहीं हो। किसी भी पुस्तक में लिखे धर्म की अपेक्षा मेरी दृष्टि में मानव-धर्म अधिक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। मेरा हृदय मुझसे जो कहता है, उसी को मैं अपना धर्म मानता हूँ। किसी पुस्तक में, किसी संस्कृत श्लोक में किसी के द्वारा कुछ कह दिया गया है, इसलिए उसे मैं मानूँ, यह मुझे स्वीकार नहीं। इस तरह कही गयी बात यदि मेरी बुद्धि को जँचती है, तभी मैं उसके अनुसार चलूँगा। लेकिन यदि वह मेरी बुद्धि को जँचती न होगी, तो फिर किसी भी महापुरुष के द्वारा क्यों न कही गई हो, मैं उसे हरगिज

स्वीकार न करूँगा। मेरा मत है कि मथू को प्रायश्चित लेने की कोई जरूरत नहीं। यदि उसे यह जँचता हो कि प्रायश्चित लेना चाहिए, तो वह खुशी से ले सकती है। इस काम से उसे रोकने की तानाशाही मैं नहीं करूँगा। मुझे जँचता है, पर उसे नहीं जँचता; तो सिर्फ मुझे खुश करने के लिए वह अपने मतों के विरुद्ध काम करे, यह मैं कभी नहीं कहूँगा।'

चंदू बोला—"गृहिणी की आज्ञा मैं आपको बता चुका हूँ। मेरे और आपके मत बिल्कुल एक हैं। फिर ऐसी परिस्थिति में मैं क्या करूँ ?"

"तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो।" काका बोले, "तुम यह करो, वह करो, यह कहने का मुझे कोई अधिकार नहीं। तुम स्वयं खुद-मुख्यार हो। प्रायश्चित न लेने से यदि मथू को तुम घर से निकाल दोगे, तो उसे लेकर हम अपने गाँव चले जाएँगे। और मथू के प्रायश्चित न लेने पर भी तुमने उसे अपने घर में रख लिया और इसके परिणाम-स्वरूप तुम्हारी पत्नी यह घर छोड़कर अपने मायके चली गई, तो इसका भी मुझे कोई अफसोस न होगा। इसलिए जो तुम करना चाहते हो, करो। इससे अधिक निश्चयपूर्वक कुछ कहने की आज मुझ में शक्ति नहीं और इच्छा भी नहीं।"

काका की बात खत्म होते ही चंदू द्वार की ओर देखकर बोला—"काका ने क्या कहा, वह सुन लिया तुमने ? इस पर तुम्हारा क्या मत है ? तुम क्या कहना चाहती हो ?"

द्वार की ओर से शब्द आये—"मैं क्या कहूँ ? मुझे कोई अधिकार है क्या यहाँ ? कुछ भी हो, पर मैं आखिर हूँ तो पैर की जूती ही ! पर जहाँ ऐसा अधर्म होता हो, वहाँ मैं नहीं रहना चाहती। पैर की जूती भी ठेस लगने पर टूट जाती है—पैर से निकल जाती है। आप पुनः एक बार कान खोलकर सुन लीजिए। जब तक यह भ्रष्ट राँड इस घर में है, तब तक मैं यहाँ कदम नहीं रखूँगी।"

चंदू की पत्नी की ये बातें सुनकर सभी सन्नाटे में आ गए।

चंदू को बड़ा धक्का लगा था। वह बिल्कुल सन्न रह गया था।

उसके चेहरे पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विकारों के भाव जल्दी-जल्दी बदल रहे थे।

जी कड़ा करके उसने उत्तर दिया—"मैं विवश हूँ। मथू को यदि आप अपने साथ गाँव ले जाना चाहते हों, तो सुबह सात की वोट आप को मिल सकती है। आप चाहें तो पहुँचाने मैं भी चलूँ, न चाहें तो न जाऊँ।"

चंदू का निश्चय सुनकर काका ठहाका मारकर हँस पड़े। मुझे भी हँसी आ गयी। परन्तु मुझे हँसी क्यों आयी, यह मैं स्वयं भी न समझ पाई। लीला का माथा अलबत्ता ठनका। वह चिढ़ कर बोली—"आप पुरुष हैं या कौन हैं, चंदू भैया? अपनी पत्नी के इतने गुलाम हो कि उस के कहने पर अपनी पुरानी सहेली को, जो आज पाँच साल के वाद आप से मिली है, आप भगा दे रहे हैं। यदि पत्नी को कब्जे में नहीं रख सकते थे, तो फिर विवाह क्यों किया। यह इतनी जल्लाद और झगड़ालू है, यह विवाह करने से पहले क्या आपको मालूम न था?"

"विल्कुल नहीं मालूम था।" चंदू ने शान्तिपूर्वक कहा, "यदि इसका पता होता, तो मैं इस विवाह की झंझट में ही क्यों पड़ता? तुम सवके सामने मुझे गर्दन झुकाने का यह मौका क्यों आता? काका से यह कहने में कि कल आप मथू को ले जाइए, क्या मुझे सुख हो रहा है? विलायत से लौटने के वाद, दूसरे ही दिन ऐसी समस्या उपस्थित होकर, यदि मथू मेरे घर से चली गई, तो क्या मुझे खुशी होगी? क्या तुम्हें लगता है कि मैं क़साई हूँ?"

बोलते समय वह सिसक रहा था, हाँफ रहा था। क्षण-भर के लिए वह चुप रहा और फिर वोला, "तुम वड़ी-वड़ी डींगें हाँका करती हो, लीला! पर ऐसा प्रसंग यदि तुम पर आवे, तो तुम्हारी भी हालत मुझ जैसी ही हो जाएगी। आज अगर यह लड़कर मेरे घर से अपने मायके चली गई, तो लोगों को मुंह दिखाना भी मेरे लिए कठिन हो जाएगा। मुझे दुनिया में रहना है। समाज में रहना है। अपनी वकालत करनी

है। हर मनुष्य की जबान पर यही विषय होगा। हर आदमी अपने-अपने ढंग से मुझ पर प्रश्न की झड़ी लगा देगा। हर एक को मुझे उत्तर देना होगा। वह मौका मैं नहीं आने देना चाहता। मथू काका के साथ कल यदि गाँव चली जाएगी, तो इसके लिए कोई कुछ न कहेगा। उन की सास है। काका उसके दामाद हैं। वहाँ जाने का उसे अधिकार है। परन्तु यदि मेरी पत्नी मायके चली गयी, तो यह विषय सब तरफ फैले बिना न रहेगा। मुझे इस समय कितना दुख हो रहा है, मेरे हृदय में कैसी चुभन हो रही है, इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। पर जिस बेशर्मी के बल पर मैं वकालत का पेशा कर रहा हूँ, उसी बेशर्मी का आश्रय लेकर मैंने काका से अभी साफ-साफ सच बात कह दी। मथू से मिलने की जब-जब मुझे इच्छा होगी, तब-तब छुट्टियों में गाँव जाकर मैं उससे मिल आऊँगा। उस समय यदि मेरी पत्नी मायके गयी, तो वह एक साधारण बात होगी। वह किसी की चर्चा का विषय न होगा। परन्तु मथू यहाँ रहे और मेरी पत्नी मायके में जाकर रहे, तो मुझ पर कितने गंदे आरोप होंगे, इसकी तुम्हें कोई कल्पना नहीं। मुझ पर आरोप लग जाएँ, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मैं उन्हें बरदाश्त कर लूँगा। पर उन आरोपों के छींटे मथू के आचरण पर भी उड़े बिना नहीं रहेंगे और यह नहीं होना चाहिए। मथू विलायत से आई और मेरे घर नहीं रही, इसके लिए यदि मुझे दुख होगा, तो मैं उस दुख को पी लूंगा, पर यदि उस पर किसी ने उंगली उठा दी, तो उससे जो मुझे दुख होगा उसे पीने की शक्ति मुझ में नहीं। अतः इसके लिए तुम मुझे कितना भी बदनाम करो, फिर भी मैं उसकी परवाह नहीं करूँगा।"

"सच है।' काका बोले, 'सुना लीला ? चंदू की बातें। और तुम भी देखो (ताई को संकेत कर) तुम्हें भी चंदू की बात जँचे बिना न रहेगी। सरसरी दृष्टि से देखने पर चंदू की बात कुछ अजीब-सी लगती है, इसमें शक नहीं, पर व्यवहारिक दृष्टि से वह उचित है। अब तुम्हारा क्या कहना है, यह भी सुनूँ ?"

ताई खिन्नता से हँसी और बोली, "मैं इस विषय में क्या कहूँ ? इसे अपने घर ले जाने के लिए मैं किसी के बाप से भी नहीं डरती। पहले तो वहाँ उसके प्रायश्चित का प्रश्न ही नहीं निकलेगा। वहाँ उसे पहिले एक बार देव का कौल मिल गया है न। तब से सब गाँव वालों के मुंह बंद हो गये हैं। और अगर प्रायश्चित का प्रश्न निकला भी, तो गांव वालों की भी मैं कोई परवाह न करूँगी। हमारा हुक्का पानी बंद करने की किसी की हिम्मत नहीं। चार दिन चख-चख करेंगे और फिर आप-ही-आप चुप हो जाएँगे।"

"सुन लिया चंदू ?' काका बोले, "हो गया तुम्हें विश्वास। अब हमारी ओर देखो और खुद अपनी ओर देखो। हमारे मत भले ही नये जमाने के हों, पर आखिर हैं हम पुराने लोग ! हमारे ये विचार हैं और खास तौर से महत्व की बात यह है कि ये तुम्हारी चाची के विचार हैं और तुम्हारी पत्नी को ये विचार जँचते नहीं ! क्यों ?"

चंदू बोला, "यह अब आप ही उससे पूछिए।"

काका ने एक बार ताई की ओर देखा। ताई ने उनकी ओर देख कर आँखें विस्फारित कीं। काका को मजाक करने की सनक आ गयी थी। ताई की डांट से वह रुकने वाली न थी।

दरवाजे की ओर देखकर वे बोले—"अरी ओ सरू, इधर हम लोगों के सामने आ न ? मुझे अपना चेहरा देखने दे। शब्द सिर्फ कानों में पड़ते हैं, परन्तु जब तक शब्दों का मेल चेहरे से नहीं होता, तब तक बोलने वाले की वृत्ति का पता नहीं चलता। मैं टेलीफोन जैसी बातें नहीं सुनना चाहता। मैं चाहता हूँ कि बोलने वाला मेरे सामने आ कर बोले।"

दरवाजे की ओर से शब्द आए, "आप मुझ से जो पूछना चाहते हों, वहीं से पूछिए। आपकी बातों का उत्तर मैं यहीं से दूँगी। बुजुर्गों के सामने बैठ कर बातें करने के लिए मैं न कालेज गयी हूँ न विलायत।"

सरूबाई का उत्तर सुनकर काका थोड़ी देर चुप रहे। काका को सूझ नहीं रहा था कि क्या बोलूं। तब ताई उन की मदद के लिए आगे

बढ़ी और बोली—

"सुना ? आप पुरुष लोग बाहर जाकर गैलरी में बैठिए। जो भी पूछना है, मैं पूछ लेती हूँ सरूबाई से।"

"जो हुजूर का हुक्म !" कह कर काका उठे और चंदू को साथ लेकर बाहर गैलरी में चल दिए।

उनके जाते ही ताई ने सरूबाई को बाहर बुलाया। वह बाहर आई, पर कुर्सी पर नहीं बैठी। ताई बोली—"बैठो न ? अब तुम्हें संकोच करने की जरूरत नहीं।"

सरूबाई ने उत्तर दिया—"मुझे कुर्सी पर बैठना अच्छा नहीं लगता। यह मर्दानी बैठक पढ़ी-लिखी लड़कियों को शोभा देती है। हम तो सीधे-सादे देहाती लोग हैं। हमें कुर्सी और कोंच की क्या जरूरत ? नीचे बैठ जाती, पर यहाँ जमीन पर सब लोग जूते पहिन कर घूमते हैं !"

'अच्छा ! ताई ने कहा—"जो तुम चाहो करो। अब यह बताओ, अभी जो बातें हुई, वे सब तुमने सुनी ही हैं। इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ?"

सरूबाई ने उत्तर दिया—"मेरी राय आप को मालूम ही हो चुकी है। मैं पुराने ढंग के पुराणपंथी परिवार की लड़की हूँ। मैं पुराने आचारों-विचारों के बीच बढ़ी हूँ। आपकी ये नयी बातें, नयी रीतियाँ अच्छी होंगी, पर वे मुझे नहीं जँचती और जहाँ धर्म का प्रश्न है, वहाँ मैं हरगिज पीछे नहीं हटूँगी। आप शायद कहें कि पुरुष तो चाहे जो खाते हैं और चाहे जिसके हाथ का पानी पी लेते हैं। पर यह सब हमारी दृष्टि की ओट में होता होगा। वे हमारे सामने तो ऐसा कोई भ्रष्टाचार नहीं करते और न हमसे आकर कहते हैं कि उन्होंने भ्रष्टाचार किया है। खान-पान की बात तो छोड़ दीजिए, पर समुद्र के पार जाना ही एक महान अधर्म है, ऐसा हमारे पूर्वज कहते आए हैं। मैं कहती हूँ यदि प्रायश्चित ले लिया, तो इसमें बिगड़ता क्या है। प्रायश्चित ले लेने से मनुष्य मर नहीं जाता। थोड़ी-सी धार्मिक-विधि कर लेने पर मन की सफाई हो

जाती है। थोड़ा होम-हवन हो जाने से घर शुद्ध हो जाता है। इस शुद्धि को करने के लिए इतना दुराग्रह क्यों ? ये हमारी धारणायें हैं। हो सकता है वे गलत हों। पर जो धारणायें हमारे खून में भिद गयी हैं, वे अब बदल नहीं सकतीं। इसलिए मैं कहती हूँ कि मथूबाई को प्रायश्चित ले लेना चाहिए। बिना प्रायश्चित लिए अगर वे यहाँ रहीं और इसकी खबर मेरे मायके में पहुँच गयी, तो मुझे जीवन-भर के लिए अपने मायके से वंचित हो जाना पड़ेगा और यह बात मुझे किसी भी हालत में पसंद नहीं। जो कहना था, कह चुकी। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।"

बोलते समय वह हाथ नचाती जाती थी। कम-से-कम मुझे तो ऐसा नहीं लगा कि उसके साथ किसी भी प्रकार का समझौता होने की कोई गुंजाइश थी। उसने अपनी अंतिम बात कह दी थी। अब ताई क्या कहती है, इस ओर मेरा और लीला का भी ध्यान लगा हुआ था।

ताई ने कहा—"देखो सरूबाई, तुमने जो कहा, वह सब ठीक है परन्तु हमारे घर की रीति भी हमारे खून में मिली हुई है। वहू को ससुराल की रीतियों में घुल-मिल जाना चाहिए, यह तो तुम जानती हो न ? तुम्हारे मायके के रीति-रिवाज हमारे घर नहीं चलेंगे। यहाँ हम लोग जेठे-सयाने हैं और हम जो कहें, वही तुम्हें करना होगा। तुम्हारे पति का भी यही मत है। फिर तुम्हारे अकेले के मत का क्या मूल्य ? वह मत यहाँ नहीं चलेगा।"

"नहीं चलेगा न ?" सरूवाई जोर से चिल्ला उठी, 'ठीक है। तो मैं अपनी मायके चली जाती हूँ। फिर आप चाहे जितनी मेमें लाकर अपने घर में रख सकती हैं। मुझे उसके लिए कोई दुख न होगा। आप चाहें तो अपने देवर का दूसरा विवाह भी कर दीजिए। अब मेमों की कोई कमी नहीं—"

उसकी बात को बीच ही में तोड़कर ताई बोली—"बस, चुप रहो। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं सुनना चाहती। यदि चंदू लाला को भी यह बात जँचती हो, तो हम भी बेकार आग्रह क्यों करें ?" कह कर वह

सीधी गैलरी में गयी और काका को लक्ष्य करके बोली—"सुना आपने सरूबाई से किसी भी प्रकार का समझौता संभव नहीं। हम कल मथू को लेकर सुबह सात की बोट से गाँव चल देंगे।"

लीला की ओर मुड़कर बोली, "लीला, तुम कोंकरण देखना चाहती हो न ? एक बार बोट के सफर का मजा भी लूट लो। नाना साहब को मैं पत्र लिख दूँगी।" पुनः चंदू की ओर मुड़कर वह बोली—"चंदू जी, नौकर से हमारा सामान बँधवा दो। अच्छा हुआ जो मथू ताई ने अपने ट्रंक नहीं खोले।"

मातृभूमि पर कदम रखते ही पहिले ही दिन हुए इस अनुभव के के कारण मेरा मन उद्विग्न हो गया। क्या हिन्दुस्थान लौटकर आने का मुझे पश्चाताप होगा, यह प्रश्न भी मेरे सामने खड़ा हो गया।

दूसरे दिन सुबह की बोट से हम कोंकरण के लिए रवाना हो गए।

स्त्री-दृष्टि

स्मिथ बाई अभी तक बम्बई में ही थीं। डॉ० मॅककिन भी बम्बई में थे*। मैं उन दोनों से मिलना चाहती थी। पर न मिल सकी। काका और ताई ने बम्बई छोड़ने के लिए एकदम कुछ ऐसा सिर उठाया कि दूसरे ही दिन हम लोगों को गाँव जाना पड़ा।

हम गाँव पहुँचे, तो वहाँ बड़ी सनसनी फैल गयी। मैं काका के घर ही उतरी थी। मायके नहीं गयी। यद्यपि मेरे पिता जी को मालूम हो गया था कि मैं विलायत से लौट आई हूँ और काका के गाँव में हूँ, फिर भी वे मुझसे मिलने नहीं आए। मेरी माता तो मुझे लाखों गालियाँ दे रही थी, ऐसा मैंने सुना। जब मैं गाँव छोड़कर गयी थी, उस समय मुझे आशीर्वाद देने वाले दादा जी अलबत्ता चल बसे थे। यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

पुरानी यादें अभी ताजी थीं। इसलिए लोग मुझ पर उँगली उठाने के लिए जरा डरते थे। फिर भी कुछ लोगों ने यह बात निकाली कि चूंकि मैं विलायत से लौट कर आयी हूँ, इसलिए पहले जैसी देव-कृपा अब मुझ पर नहीं रह सकती। कई लोगों ने तो यह सुझाव भी दिया कि मुझे फिर एक बार मंदिर में ले जाकर देखा जाए कि आज भी देव का वही कौल मुझे प्राप्त होता है या नहीं?

यद्यपि मुझे इसका कोई अंदाज नहीं था कि मुझे कौल मिलेगा या नहीं, फिर भी मंदिर में जाने के लिए मैं हमेशा तैयार थी। पहिले मुझे जो कौल प्राप्त हुआ था, वह वास्तव में देव का ही कौल था या सिर्फ

* विशेष परिचय के लिए 'विधवा कुमारी' पढ़ें।

एक अचानक घटी घटना थी, इसका भी मुझे शक था। काका का मत था कि मुझे जान-बूझकर मन्दिर में जाकर फिर से देव का कौल प्राप्त करने की झंझट में ही न पड़ना चाहिए।

पर मैं देव के देवत्व को परखना चाहती थी, इसलिए उस कठिन परीक्षा के लिए मैं राजी थी। यदि मुझे देव का कौल न मिलता तो इस से मेरी कोई हानि नहीं थी। पहिले की परिस्थिति अब बदल गयी थी। गाँव में मुझे रहना नहीं था। इसके आगे का जीवन कहाँ विताऊँगी इसकी मुझे कोई कल्पना न थी, परन्तु वह कोंकण के इस गाँव में नहीं विताना पड़ेगा यह निश्चित था। इसलिए कौल न मिलने के कारण गाँव छोड़ना पड़े, तो इसका मुझे कोई खेद न था।

कौल लेने के लिये मैं तैयार थी, पर मन्दिर के पुजारी इसके लिए तैयार न थे। कुछ ब्राह्मणों का यह मत था कि बिना प्रायश्चित लिए मुझे मन्दिर में नहीं घुसने देना चाहिए। यह उनका दृढ़ निश्चय ही गया था। इस विचारा·धारा का नेतृत्व स्वयं मेरे पिता जी कर रहे थे। मैं मन्दिर में जाकर देव का कौल प्राप्त करने के लिए तैयार हूँ, पर पुजारी मुझे मंदिर में प्रवेश नहीं करने देना चाहते—इन दो परस्पर विरोधी वातों का गाँव वालों पर बड़ा अजीब-सा प्रभाव पड़ा।

उनकी मेरे प्रति श्रद्धा वढ़ गयी। लोगों की यह धारणा हो गयी कि मैं मंदिर गई और मुझे मनचाहा कौल मिल गया, तो मंदिर में मेरे प्रवेश को रोकने वालों की नाक कट जाएगी, इसीलिए प्रायश्चित का हौवा सामने खड़ा करके वे मुझे मन्दिर में नहीं जाने देते।

पिछड़ा हुआ माने जाने वाले इस छोटे से गाँव ने इस तरह प्राय-श्चित की अग्नि-परीक्षा से मुझे मुक्त कर दिया।

जब से गाँव आयी थी मेरा सारा समय विलायत की बातें बताने में वीता करता। उन वातों को लीला भी वड़े ध्यान से सुनती। मेरे द्वारा किए गए विलायत के वर्णन सुनकर लीला को भी विलायत जाने की स्फूर्ति हुई थी, पर उसका कोई उपयोग न था। वह विलायत जाती कैसे

और मान लो उसका कोई प्रबन्ध भी हो जाता, फिर भी सबसे बड़ा सवाल यह था कि उसके घर के लोग उसे भेजते कैसे ?

विलायत पहुँचने पर प्रो० भिसे के घर मैं बहुत थोड़े दिन रही। जाते समय मुझे जो पत्र दिए गए थे उनकी सहायता से मैं वहाँ के एक महिला महाविद्यालय में भरती हो गयी। तब से मुझे उस महाविद्यालय के छात्रालय में ही रहना पड़ा। प्रो० भिसे बीच-बीच में मेरी पूछ-ताछ कर लेते और मैं भी छुट्टियों में उनके घर चली जाती। उनके सिवा और किसी भी भारतीय से मेरे विलायत में रहते हुए मेरा परिचय नहीं हुआ। जो भी भारतीय विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए उस समय विलायत आये हुए थे, वे प्रायः सभी युवक थे और उनसे मिलना-जुलना या उनसे परिचय करना हमारे छात्रालय के अनुशासन के अनुसार करीब-करीब असंभव था।

हमारे कालेज की छात्राओं से दिन-प्रति-दिन मेरा परिचय बढ़ता गया। छुट्टियों में कुछ छात्राओं के साथ मैं उनके घर जाने लगी। जिन छात्राओं के साथ मैं उनके घर जाती, उनके पिताओं को भारत की हिन्दू-संस्कृति के प्रति बड़ा गर्व था।

उनमें के एक महाशय स्वामी विवेकानन्द के बड़े भक्त थे। जब विवेकानन्द स्वामी विलायत में थे उस समय कुछ अँग्रेज लोग उनके शिष्य हो गये थे, उन्हीं शिष्यों में एक ये महाशय भी थे। उन्होंने हिन्दुस्थान के आध्यात्मिक ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। इसलिए उनके घर जाने पर मुझे जरा भी परायापन महसूस नहीं होता था। गीता और उपनिषदों का अध्ययन मैं भी कर चुकी थी। इसलिए उनसे वार्तालाप करने में मुझे हमेशा प्रसन्नता ही होती।

यही नहीं, बल्कि यदि यह कहूँ कि इसी एक घर से मेरा विशेष स्नेह हो गया था, तो कोई हर्ज नहीं। इन महाशय का नाम था मि० विलकिन्स।

उनके घर विवेकानन्द के चित्र के साथ ही हिन्दू देवताओं के भी

वहुत से चित्र लगे थे, इसलिए वहाँ जाने पर मुझे लगता जैसे हिन्दुस्थान में ही हूँ। उन चित्रों में यद्यपि मुझे हिन्दुस्तानी चेहरे सजीव नहीं दिखते थे और उनके मुँह से हिन्दुस्तानी भाषा नहीं सुनाई पड़ती थी, फिर भी आस-पास का वातावरण हिन्दू-पद्धति का होने के कारण उतना ही मेरे लिए काफी था।

स्मिथ वाई द्वारा दिए गए पत्र का मैंने उपयोग किया था। उस मिशन के जो लोग विलायत में थे, उनसे जाकर भी मैं कभी-कभी मिल आती। समय-समय पर उनसे मुझे काफी मदद भी मिल जाती। मेरी निजी कोई पूंजी न होने के कारण केवल धर्मार्थ दिये जाने वाले दान पर ही मुझे अपना जीवन-पालन करना पड़ता था।

धर्म के अन्न पर जीवन जीना मुझे आगे चलकर कठिन प्रतीत होने लगा। इस विचार से की स्वयं मुझे ही कुछ करना चाहिए, मैं अपने योग्य काम खोजने लगी। पर इंग्लैंड अमेरिका नहीं है, ऐसा अनेक मिशनरी मुझ से कहा करते और उनके इस कथन की सत्यता का मुझे यहाँ अनुभव हुआ। अमेरिका में भारतीय विद्यार्थियों को उनकी गुजर लायक नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती है। परन्तु यदि यह कहें, कि विलायत में यह परिस्थिति करीब-करीब असंभव ही है, तो कुछ हर्ज नहीं। जब मैं गयी थी उस जमाने में कम-से-कम भारतीयों को तो किसी भी प्रकार नौकरी मिलना विलकुल असंभव था।

परंतु विलकिन्स साहब ने मुझे एक नौकरी दिला दी। उनके परिचय की एक उन्हीं जैसी विवेकानंद की भक्तन एक महिला थी। उसे संस्कृत पढ़ने की बड़ी रुचि थी। यह ट्यूशन विलकिन्स साहब ने मुझे दिला दी। मेरी परिस्थिति को जिस प्रकार विलकिन्स साहब जानते थे, उसी तरह यह महिला भी जानती थी। इसलिए मुझे धर्मार्थ मदद देने की अपेक्षा मुझ से कुछ काम लेकर मेरे जीवन निर्वाह में हाथ बँटाने का उसका उद्देश्य था। संस्कृत पढ़ने का यद्यपि उसे जबरदस्त शौक था, फिर भी जब प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत की पढ़ाई आरंभ हुई, तो उसे वह

भाषा बड़ी कठिन प्रतीत होने लगी। वर्णमाला से शुरू करना पड़ा था। संस्कृत के सभी ग्रंथ अँग्रेजी लिपि में नहीं लिखे हैं। जर्मनी में छपे हुए कुछ जर्मन लिपि के संस्कृत के ग्रंथ वर्तमान हैं। पहले-पहल मैंने उन्हीं से काम लिया। संस्कृत सीखने की उसे प्रबल इच्छा होते हुए भी, उसे पढ़ाने में मुझे बड़ी कठिनाई प्रतीत होती थी।

फिर भी उसने अपनी लगन न छोड़ी। यही नहीं, बल्कि मुझे मदद करने के लिए ही जैसे वह संस्कृत पढ़ने का हठ पकड़े बैठी है, ऐसा लगने लगा। केवल दान पर जीवन जीने की अपेक्षा अपना पेट भरने के लिए मैं कम-से-कम एक नौकरी कर रही हूँ, इस तरह मन को समझकर मैं वह ट्यूशन करती रही।

वहाँ एक विवेकानंद सोसाईटी थी। इस सोसाईटी की तरफ से कभी कभी व्याख्यान हुआ करते। उनमें मैं भी भाग लेती। मेरी परिस्थिति को महसूस कर विलकिन्स साहब ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि जिस दिन मेरा व्याख्यान होता, उस दिन वे टिकट लगाकर व्याख्यान कराते। टिकट से जो आय होती उनका बहुत-सा भाग वे मुझे दे देते जिससे मेरा बहुत-सा खर्च निभ जाता।

विलायत में रहते समय मैंने हमेशा अपनी आँखें खुली रखी थीं, और जितना भी देखना संभव था, वह सब ठीक से देखने का मैंने निश्चय कर लिया था। वहाँ के प्राय: सभी बड़े-बड़े ग्रंथालय, म्यूजियम, शिक्षा-संस्थायें इत्यादि का अवलोकन करने में विलकिन्स साहब से मुझे काफी मदद मिली।

विलायत जाने वाले अन्य भारतीय विद्यार्थी अपने अध्ययन को छोड़कर और किसी भी बात की ओर ध्यान नहीं देते थे। जब मैंने यह देखा, तो मैंने यह तय कर लिया था कि यह गलती मैं नहीं करूँगी। विलायत से केवल परीक्षाएँ पास कर हिंदुस्थान लौट जाना, इतना ही मेरा संकीर्ण उद्देश्य नहीं था। ज्ञानार्जन के जितने भी साधन वहाँ उपलब्ध थे, उन सब साधनों का उपयोग कर लेने में मैंने कोई कसर न

रखी और न इसके लिए मैं कभी झिझकी ही।

यदि वे सब बातें मैं यहाँ लिखूं, तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ ही हो जाएगा। मेरे आगामी जीवन पर उन सब बातों का यद्यपि बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है, फिर भी उन बातों की विस्तार-पूर्वक जानकारी अपनी इस आत्म-कथा में देना आज मुझे उचित नहीं जान पड़ता।

घर में मेरे दिन बड़े आनन्द से बीत रहे थे। विलायत से हाल ही में लौटने के कारण गाँव की निर्मल हवा में गुजरने वाला वह वक्त मुझे अत्यन्त आनंददायी मालूम हो रहा था सही, पर छोटे-से गाँव में अपना कार्य दिखाने का कोई मौका और क्षेत्र न होने के कारण मेरा उत्साही मन धीरे-धीरे अधिक तड़पने लगा।

हमारे गाँव आने के बाद चंदू के पत्र आते थे। परन्तु उनमें कुशल-समाचार के अलावा और कोई बात न लिखी रहती। चंदू की यह उदासीनता देखकर मुझे जबरदस्त धक्का लगा। मेरी बात छोड़ दीजिए, पर वह काका और ताई को भी अपने से दूर करने के लिए तैयार हो जाए, यह बात मुझे अच्छी न लगती। उसकी पत्नी का उस पर इतना जबरदस्त सिक्का जम गया था क्या, इसका मैं ठीक से अन्दाज नहीं लगा पाती थी। जिन्होंने उसे छोटे से बड़ा किया, उसे एल० एल० बी० तक पढ़ाया, भाई की अपेक्षा जिन्होंने उसे अपना पुत्र मानकर ही बढ़ाया, उन्हें भी त्यागने के लिए वह तैयार हो जाए? क्या उसे अपनी पत्नी की खुशी और नाखुशी इतनी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है?

एक दिन रात को हम यूँ ही बैठे बातें कर रहे थे, तो काका ने ही यह विषय छेड़ दिया। काका की वृत्ति यद्यपि स्थितप्रज्ञ जैसी थी, फिर भी चंदू के इस बर्ताव का काका के मन पर कुछ-न-कुछ असर जरूर हुआ था, ऐसा उनकी बातों से मुझे दिखायी दिया।

वे बोले, "चंदू के बर्ताव की यह पहेली किसी भी तरह मैं हल नहीं कर पा रहा हूँ। विवाह होने के बाद से वह सुखी नहीं है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जब-जब मैं बम्बई जाता हूँ तब-तब मुझे यह दिखाई देता

है जितना सम्भव हो सकता है, उतना समय वह घर के वाहर ही व्यतीत करता है। उसकी पत्नी को घर के बाहर जाने से उतनी ही घृणा है। वह चौबीस घन्टे घर में घुसी रहती और चंदू पूरा दिन वाहर बिताता, यही मैं देखता। परन्तु उसके परसों के वर्ताव से मुझे बड़ा अजीव-सा लगा। अपनी पत्नी के मुँह से निकले एक शब्द पर से ही वह हम सव से और विशेषतः इतने सालों के वाद विलायत से लौटी हुई मथू से भी नाता तोड़ने को कैसे तैयार हो गया, इसका मैं कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकता।"

ताई बोली, "पुरुषों की दृष्टि के लिए ये वातें अगम्य हैं।"

इतने ही शब्द कहकर वह स्तब्ध हो गई, तव काका बोले, "तो कम-से-कम, तुम्हीं हमें वता दो कि स्त्रियों की दृष्टि से तुमने यह पहेली किस प्रकार हल की है?"

ताई हँसी, पर उसने कोई उत्तर न दिया। थोड़ी देर राह देखकर काका बोले, "अब क्यों नहीं बोलतीं? स्त्रियों की दृष्टि की व्यर्थ शान न वघारो? तुम इस पहेली को हल नहीं कर सकीं।"

ताई गंभीरतापूर्वक वोली, "शायद यही हो! मैंने अपनी तरफ से यह पहेली हल कर ली है, यह सच है। परन्तु इस पहेली का उत्तर क्या है यह मैं अभी एकदम नहीं वताऊँगी। मैंने एक अनुमान लगाया है। वह अनुमान ठीक है या गलत है, यह जव तक कि मैं आगे की घटनाएँ कैसी होती हैं, 'यह न देख लूँगी, तव तक न वताऊँगी।"

काका ठहाका मारकर हँसे और बोले—"ठीक! ज्योतिषी की भविष्य-वाणी की तरह ही तुम्हारा उत्तर दिखता है। कोई वात हो गयी, तो एकदम कह देना कि मैंने उसी समय यह भविष्य वता दिया था। इस तरह मैं धोखा नहीं खाऊँगा। मैं साफ-साफ कहता हूँ कि चन्दू अब पहले जैसा नहीं रहा। पत्नी की संगति के कारण हो, अथवा वकालत के पेशे के कारण, उसकी वृत्ति पर कोई विलक्षण प्रभाव पड़ा है। पहले वह कोई बड़ा बातूनी रहा हो, ऐसा तो था नहीं। वह जो कुछ

वोलता, उसमें निश्चितता होती थी। वह नासमझ तो कभी था ही नहीं। परन्तु इस समय का उसका वर्ताव अवश्य नासमझदारी की सीमा पर वैठा हुआ मुझे साफ-साफ दिख रहा है। इतनी निडरता और नि:संकोचता उसमें आयी कहाँ से ? जव वह अकेला कभी मिले तो मैं उससे यह पूछूँगा। उसके पत्र देखता हूँ तो हैरानी होती है—"हम सव कुशल से हैं। अपने कुशल समाचार दीजिए"—इन दो वाक्यों के अलावा उनमें कुछ नहीं रहता। स्वतन्त्र रूप से मथू के वारे में वह कुछ भी नहीं पूछता। तुम्हें प्रणाम लिखता है। परन्तु मथू क्या लीला को आशीष लिखना टाल देता है।"

काका थोड़ी देर आंखें वन्द करके स्तब्ध वैठे रहे और समाधि से उठे किसी योगी की तरह आंखें खोलकर वोले—"अच्छा, यह वात है, अव ताड़ा, तुम्हारा क्या मतलव है। यह पहिले मेरे ध्यान में आना चाहिए था। कुल मिलाकर स्त्रियों की वुद्धि विलक्षण होती है, इसमें शक नहीं।"

"तो मैं भी स्त्री ही हूँ।" लीला वोली—"परन्तु मुझे इसमें का कुछ भी समझ में नहीं आया।"

लीला के इन उद्गारों को सुनकर ताई वड़े जोर से हँस पड़ी। ताई का उद्देश्य क्या था, इसकी वहुत कुछ कल्पना मुझे हो गयी।

लीला वोली—"ताई, वात इस तरह हँसी में न उड़ाओ। आपने कोई अनुमान लगाया है। काका को भी वह जँच गया है। पर मुझे अलवत्ता कोई कल्पना नहीं हो रही है। काका आप कहते हैं कि स्त्रियों की वुद्धि विलक्षण होती है। पर मैं भी स्त्री हूँ—ताई के समान ही—ताई से भी अधिक पढ़ी-लिखी !"

"पढ़ी-लिखी हो, इसलिए तुम कुछ नहीं समझती !" ताई वोली—"यह शिक्षा का दुष्परिणाम है। शिक्षा से प्राप्त हुआ एक अहंभाव तुम्हारी वुद्धि को अंधी वना रहा है। —मैं खासी पढ़ी-लिखी हूँ, अंग्रेजी जानती हूँ, और अन्य स्त्रियों की अपेक्षा मैं अधिक समझती हूँ, ऐसी तुम्हारी धारणा होने

के कारण जो बातें बहुत आसानी से स्त्रियों की नजर में दिख जाती हैं, वे तुम्हें नहीं दिखती हैं। उस दिन झगड़ा होते ही चन्दू ने हमें जाने के लिए कह दिया। उस दिन जो बात मुझे सहज में जँच गयी, वह तुम्हारे ध्यान में न आने का कारण तुम्हारी शिक्षा है। यह सच है कि वह बात ऐसी न थी जो आसानी से एकदम तुम्हारे ध्यान में आ जाती। मेरे ध्यान में जो आ गयी, उसके लिए पहिले के कुछ कारण थे। वे पहिले के कारण तुम नहीं जानती परन्तु मुझे वे पहले के कारण भी यदि मालूम न होते, फिर भी मैं तुरन्त, जो समझना चाहिए था, समझ जाती। हम अपढ़ स्त्रियों को दूर तक सोचने की अक्ल नहीं होती और जो कारण होते हैं वे बिल्कुल नजदीक होते हैं। नजदीक देखने का हमारा स्वभाव होने के कारण हमें वे चट-से दिख जाते हैं। और दूर तक देख कर विचार करने की तुम्हें शिक्षा मिली है और यह तुम्हारी आदत हो गयी है। इसलिए नजदीक के कारण तुम्हारी नजरों से छूट जाते हैं।"

लीला बड़ी गम्भीर होकर बोली—"आपने अभी जो लम्बा भाषण दिया, उसका एक शब्द भी मेरी समझ में नहीं आया। आप पहेली की भाषा में बोल रही हैं। इसलिए उसमें सिधाई न होकर मोड़ें ही अधिक दिखती हैं। मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर देने के बजाय, सिर्फ टालमटोल करने के लिए आपने एक लम्बा भाषण दे डाला, ऐसा मैं समझती हूँ। स्पष्ट शब्दों में मुझसे यह कहने के बदले कि जो हुआ है वह मैं तुमसे नहीं कहना चाहती, आपने जो यह द्राविड़ी प्राणायाम किया, वह मुझे बिल्कुल नहीं रुचा!" ऐसा कह कर वह चुप बैठ गयी।

ताई ताड़ गयी कि वह गुस्सा हो गयी है। परन्तु उसका गुस्सा दूर करना जिस तरह ताई को सम्भव न था, उसी तरह वह मेरे लिए भी असम्भव था।

ताई का अनुमान ठीक था। जिस कारण से चन्दू ने उस दिन हम लोगों से जाने के लिए कहा, वह कारण लीला से स्पष्ट शब्दों में कहने

योग्य नहीं था, यह मैं भी समझ गयी थी। ताई का अनुमान अक्षर-अक्षर ठीक था। परन्तु ताई के बताने पर मैं उसका अनुमान लगा। सकी इसी की मुझे शर्म आई। पढ़ी-लिखी और अपढ़ स्त्रियों की विचार सारणी का अन्तर, जो ताई ने बताया था, उसमें थोड़ा बहुत तथ्य था, यह मेरी ही वृत्ति पर से मुझे जँच गया।

उस दिन वह विषय वहीं तक रहा। दूसरे दिन पूना से नाना साहब का पत्र आया। उस पत्र को पढ़कर हम सब आश्चर्यचकित हो गये।

पूना का जूता

नाना साहब जैसे कट्टर पुराणपंथी महाशय मुझे अपने घर आने का निमन्त्रण दें, इसका अन्य सब की अपेक्षा मुझे ही अधिक आश्चर्य हुआ। शायद समाचार पत्रों द्वारा की गयी मेरी स्तुति का ही नाना साहब के मत पर ऐसा परिणाम हुआ होगा। "केसरी" में भी मेरी प्रशंसा में दो-चार सतरें प्रकाशित हुई थीं। नाना साहब के लिए उतना-सा आधार भी काफी था।

मुझे पूना भेजने के लिए काका का मन हिचकिचा रहा था। उनका नाना साहब पर थोड़ा भी विश्वास न था। मुझे पूना बुलाने में नाना साहब की जरूर कोई चाल है, ऐसा काका को संशय था।

पर ताई ने उनके इस संशय की मीठे शब्दों में खिल्ली उड़ाई। ताई बोली—"आप जब देखो तब नाना साहब पर खार ही खाए रहते हैं। वे पुराणपंथी हैं, यह सच है। मनुष्यता में भी उनके पैर काफी पीछे हैं, यह भी मुझे स्वीकार है। परन्तु प्रत्येक समाचार पत्र में मथू की प्रशंसा के गीत गाए गए हैं। ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक है कि उन्हें यह इच्छा हुई हो कि मथू अपने घर आए और हमें लोगों में शान दिखाने का अवसर मिले। भला इस स्वर्ण अवसर को नाना साहब व्यर्थ क्यों जाने देगें? यदि मथू को अपने घर बुलाने में उनका कोई स्वार्थ है, तो यही हो सकता है।"

काका बोले—"तुम चाहे जो कहो, पर नाना साहब पर मेरा रत्ती-भर भी विश्वास नहीं। तुम यदि यह भी कहो कि ऐसे लोगों के बारे में मैं बड़ा दुराग्रही हूँ, फिर भी मुझे इसका कोई बुरा न लगेगा। ये मनुष्य

ही ऐसे हैं कि किसी भी प्रसंग पर उनका स्वभाव कभी न बदलेगा। मानवता का एक कण भी ईश्वर ने उनके हिस्से में नहीं दिया है। मित्रता की अपेक्षा से मथू यदि वहाँ जाती है, तब मैं कुछ नहीं कहता। वहाँ आगे कोई अजीब प्रसंग उपस्थित हो गया, तो मैंने पहिले ही जो भविष्यवाणी कर दी है, उसे न भुला देना। बस ! इतना ही मैं चाहता हूँ।"

मेरे मन में बहुत था कि काका भी मेरे साथ पूना चलें। पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया कि मैं उस मनुष्य का मुँह तक नहीं देखना चाहता। उन्होंने यह भी कहा कि विलायत जैसे विदेश में पाँच वर्ष रह कर लौटी हुई मुझ जैसी स्त्री को पूना पहुँचाने के लिए वे साथ गए, तो इस में मेरी ही प्रतिष्ठा कम होगी।

नाना साहब के निमन्त्रण के कारण मैं एक प्रकार से बौखला-सी गई थी। मेरी यह जीत है, ऐसा मुझे लग रहा था। लीला भी खुश थी।

दूसरे दिन हम रवाना हुए। बम्बई आने पर हम चंदू के घर नहीं गए, बल्कि सीधे स्टेशन चल दिए।

रेल से सफर करते समय खंडाला का रमणीय दृश्य देख कर मेरा हृदय आनन्द से भर आया। इन दृश्यों को पहिले भी मैंने कई बार देखा था, यह सच है। परन्तु पाँच वर्ष के वियोग के कारण वही दृश्य मुझे पहिले की अपेक्षा कितने ही गुने अधिक सुन्दर लगने लगे। खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर, मैं किसी लालची की तरह उस प्राकृतिक सौन्दर्य को अपनी आँखों में भर रही थी।

क्षण-भर के लिए मैं सारी दुनिया को भूल गयी थी। मुझ पर हुए इस असर को देखकर लीला जब मेरा मजाक उड़ाने लगी, तब मैंने उस से कहा—"पाँच वर्ष से मैं कितनी भूखी हूँ, इसकी तुम कल्पना नहीं कर सकती। प्राकृतिक सौन्दर्य का विलायत में पूर्ण अभाव है। वहाँ सौन्दर्य है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु वह सारा सौन्दर्य कृत्रिम बाग-बगीचों में मिलता है। विलायत के गाँव भी मैंने देखे हैं। परन्तु हमारे गाँवों की रमणीयता विलायत के गाँवों में नहीं है। वहाँ एक तो सूर्य का दर्शन ही

बहुत कम होता है इस कारण हवा कुंद लगती है। वृक्षों के पत्तों पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें इस हरियाली की सुन्दरता में जिस तरह चार चाँद लगा देती हैं, उस प्रकार का दृश्य विलायत में तो दुर्लभ ही है। वहाँ के वृक्षों के तनों का रंग भी सूखा हुआ-सा रहता है। गहरा हरा रंग हिन्दुस्थान को छोड़ कर विशेषतः हमारे सहयाद्रि पर्वत को छोड़कर अत्यन्त कहीं भी कभी दिखायी नहीं देता। अपनी यह गहरी हरियाली देखने के लिए मेरा जी कितना व्याकुल हो उठा था, इसकी तुम्हें कल्पना नहीं हो सकती।"

जैसे-जैसे पूना नजदीक आने लगा। वैसे-वैसे मेरे हृदय-सागर में आनन्द की लहरें उमड़ने लगीं। यह सच है कि मेरा स्वभाव अभिमान करने का न था। परन्तु इस समय अभिमान की छोटी-सी झकोर मेरे हृदय में जाग्रत हो उठी। एक स्त्री विलायत गयी। वहाँ के विश्वविद्यालय से बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लेकर लौटी। उस स्त्री की समूचे महाराष्ट्र ने जो सराहना की, उसका प्रभाव नाना साहब जैसे दुराग्रही मनुष्य के मन पर पड़ा, इसके लिए मुझे एक प्रकार का अभिमान हो रहा था। मेरे घर पहुँचते ही मेरा स्वागत शानदार ही होगा वह किस रूप में होगा, इस विषय की भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ मैं अपने मन में कर रही थी।

आते समय मैं बहुत सा सामान साथ नहीं लायी थी। पूना में अधिक दिन रहने का मेरा विचार न था।

स्टेशन पर उतरते ही एक ताँगा करके हम दोनों रवाना हुए। दरवाजे पर आए। ताँगे से उतर कर अपना सामान भी उतार लिया। पैसे देकर ताँगे वाले को छुट्टी दी। फिर भी घर से कोई बाहर नहीं निकला। हमारे बरामदे पर पहुँचते ही नाना साहब अकेले ही हमारे सामने आए और जोर से चिल्ला पड़े, "लीला, घर में जाओ।" और मेरी ओर मुड़कर बोले, "और मेम साहब, इस घर में तुम्हारा कोई काम नहीं। तुम जहाँ जाना चाहती हो जाओ। मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

मैं आश्चर्य से स्तंभित हो गयी। इन्होंने इतने आग्रह से मुझे बुलाया और अब इस तरह पेश आ रहे हैं। इसका क्या मतलब ?

मैंने कहा, "आप ही के निमन्त्रण से मैं यहाँ आई हूँ न ?"

"सच है !" नाना साहब बोले, "मैंने निमन्त्रण दिया था, सच है। पर क्यों दिया था, इसका अनुमान तू न कर सकी। विलायत जाकर इतनी डिग्रियाँ प्राप्त करने के बाद भी तुझे अकल क्यों नहीं आई हैं। हम लोग ठहरे बलवंतराव[1] जी के चेले ! हमें भ्रष्टाचार कैसे भा सकता है ? तू विलायत से लौटी है। वहाँ पाँच साल रही। वहाँ जाने क्या-क्या खाया होगा तूने ? खाने तक ही सीमित रहा है या आगे भी बढ़ गया है ? अकेली लड़की विलायत गयी। साहब लोगों के बीच रही। चाहे जहाँ चाहे जैसी रही, ऐसी लड़की ने क्या किया होगा और क्या न किया होगा, यह ब्रह्मा जी का बाप भी नहीं बता सकता। दुनिया का अकेली सफर करने वाली औरतों पर मेरा तनिक भी विश्वास नहीं। एक तो विलायत जाकर हमारे खानदान को बदनाम किया और अब शान से हमारे घर में घुसने आई है—शर्म नहीं आती तुझे ? मैंने निमन्त्रण भेजा था, तो क्या हुआ ? कम-से-कम प्रायश्चित तो ले लेना था। इधर के लोग क्या कोई विलायत गए ही नहीं ? पर जो भी गए थे, उन्होंने लौटते ही प्रायश्चित लिया था। तूने एक तो प्रायश्चित नहीं लिया और ऊपर से समाचार पत्रों के जरिये ढिंढोरा पीटती है कि प्रायश्चित में मेरा विश्वास नहीं। तुझ से यह पूछा किसने था कि तूने प्रायश्चित लिया या नहीं ? चुप रही आती तो मैं माफ भी कर देता। परन्तु सूली कंधे पर रख कर प्रायश्चित विधि का तूने जो लिखित अपमान किया है, उसे पढ़कर मेरा क्रोध भड़क उठा।"

नाना साहब क्या कह रहे थे, यही मैं नहीं समझ पायी। किसी भी समाचार पत्र में मैंने कुछ भी न लिखा था। यह सच है कि किसी समा-

---

१. लोकमान्य तिलक

चार पत्र में मैंने अपने प्रायश्चित के बारे में कुछ लिखा हुआ देखा था। परन्तु उससे मेरा प्रत्यक्ष कोई सम्बंध न था। मैंने नाना साहब से भी जब इसी तरह कहा, तब वे बोले—"यदि यह बात थी, तो तुझे उसका प्रतिकार करना था—इंकार करना था। तू प्रायश्चित नहीं लेना चाहती थी यह मैं जानता हूँ। अब भी तू प्रायश्चित नहीं लेगी यह भी मैं जानता हूँ। पर समाचार पत्रों में यदि यह बात न आती तो तेरे बाप की कोई हानि होने वाली न थी। परन्तु तेरे इंकार न करने के कारण हमें अपना मुंह दिखाने को भी कहीं ठौर न रहा। तू हमारे घर प्रायश्चित लिए बिना रही और लोगों को इसका पता चल गया, तो दूसरे ही दिन मेरा हुक्का-पानी बन्द हो जाएगा। मेरे चार बाल-बच्चे हैं। उनके विवाह होने हैं। मैं अभी बिल्कुल निर्लज्ज नहीं हो गया हूँ या कि कोई आवारा नहीं हूँ। मैं एक संसारी मनुष्य हूँ। केसरी आफिस जैसी महाराष्ट्र की एक बड़ी संस्था का मैं एक घटक हूँ। उस नाते मुझ पर बड़ा भारी दायित्व है। इसलिए मुझ पर कृपा कर और जैसे आई है, उसी तरह फौरन यहाँ से लौट जा।"

गुस्से से मेरा बदन भड़क उठा था। पर वह सारा गुस्सा पीकर मैंने अत्यन्त शान्ति से कहा—"यदि यह बात थी, तो मुझे बुलाया क्यों था ? कम-से-कम यह लिख देना था कि प्रायश्चित लेकर आओ – जिस से मैं आने या न आने का विचार कर सकती।"

नाना साहब मुंह बनाकर बड़े जोर से हँसे और बोले, "पूछ रही है कि मैंने क्यों बुलाया ? तो सुन। अपनी लड़की के लिए मैंने बुलाया। तुझे न बुलाता, तो मेरी लड़की सिर्फ मेरे बुलाने से कभी न आती इसका मुझे विश्वास है। कहाँ की झकमारी और उसे पढ़ने को स्कूल भेजने की दुर्बुद्धि मुझे सूझी। परन्तु स्कूल में जाने के बाद से वह बड़ी वाहियात हो गयी है। किसी की कुछ सुनती नहीं। मैं यदि केवल उसे ही बुलाता, तो वह साफ-साफ शब्दों में उत्तर दे देती कि छुट्टियाँ समाप्त होने तक मैं नहीं आऊँगी। एक तो तू विलायत से लौट कर आई है दूसरे

यह अँग्रेजी पढ़ी-लिखी है । दो दीवाने मिल गए ! फिर क्या पूछना ? इन अँग्रेजी पढ़ने वालों को विलायत से लौटे हुए लोग एकदम परब्रह्म मालूम होते हैं । हमें ऐसा नहीं लगता । हमारे इतने बड़े बलवंतराव हैं, पर वे गोखले[1] की तरह विलायत नहीं गए । वे इस पूना में ही हैं । पर सारी दुनिया में उनका नाम रोशन है । पर अँग्रेजी स्कूल में पढ़ने वाले इन छोकरों और छोकरियों को गोखले ही बड़े लगते हैं । क्यों ? तो इसलिए कि वे विलायत हो आए हैं ! हमारी छोकरी भी अँग्रेजी स्कूल में पढ़ती है । इसीलिए मुझे डर लगा कि कहीं तेरा साथ उसे मिल गया तो वह हमेशा के लिए मेरे पास से निकल जाएगी ! मुझे इसकी कल्पना थी– बल्कि पूरा विश्वास था, इसीलिए मैंने यह चाल चली—और मुझे सफलता भी मिल गयी । तू भी आ गयी और मेरी लड़की भी अपने पास आ गयी । मेरा काम हो गया । अब मेम साहब जी, सलाम ! चुपचाप मेरे घर से बाहर चलती-फिरती नजर आओ !"

काका की भविष्य-वाणी मेरी नजरों के सामने मूर्त हो उठी ।

लीला दरवाजे में खड़ी हुई यह सब सुन रही थी । यह देखकर कि मैं जा रही हूँ, वह आगे बढ़ी और बोली—'चाची, कहाँ जा रही हैं आप ?"

"जहाँ रास्ता मिलेगा, वहीं चल दूँगी ।" मैंने उत्तर दिया, "शायद फिर लौटकर गाँव चली जाऊँ अथवा एक-दो दिन बम्बई में रुक कर जिन से मिलना है, उनसे मिलकर फिर गाँव जाऊँगी ।"

"लेकिन बम्बई की गाड़ी मिलने तक यहाँ कहाँ रहोगी ?"—लीला ने पूछा ।

मैंने उत्तर दिया—"स्टेशन पर बैठने के लिए तो प्रायश्चित की कोई रुकावट नहीं !"

यह कह कर मैंने सामान उठाया और घर से बाहर निकल पड़ी । जूते पहिन कर लीला भी मेरे पीछे-पीछे बाहर आई । मैं उससे भीतर

---

१. स्व० श्री गोपाल कृष्ण गोखले

जाने के लिए कहने वाली थी, इसी समय नाना साहब वहाँ आए और लीला का कंधा पकड़ कर उन्होंने उसे घसीटा।

लीला शेरनी की तरह आग बबूला हो गयी थी। वह बोली, "खबरदार, मुझे हाथ मत लगाना। मैं अब छोटी नहीं। इस तरह धोखा दे कर मुझे यहाँ ले आए और ऊपर से अपनी चालाकी साफ-साफ शब्दों में मुझे भी सुना दी। यह काफी हो गया। अपनी ये चालें आप अपने केसरी के दफ्तर में ही चलाते रहिए। मेरे पास वह नहीं चलेंगी। मैं चाची के साथ जाऊँगी और छुट्टियाँ पूरी होने तक घर नहीं आऊँगी।" ऐसा कह कर उसने एक धक्का मार कर अपना हाथ नाना साहब की पकड़ से छुड़ा लिया।

उस के धक्के से नाना साहब शायद लड़खड़ा कर जमीन सूँघने लगते, परन्तु दरवाजे का सहारा लेकर वे बोले—"मैं तेरा बाप हूँ। तुझ पर मेरा पूर्ण अधिकार है। जो मैं कहूँ, वही तुझे करना होगा। यह कानून है। अपने अधिकारों को मैं पूरी तरह जानता हूँ। अपना यह हक जमाये बिना मैं हरगिज न रहूँगा। ज्यादा गड़बड़ करेगी तो पुलिस में रिपोर्ट करके तुझे स्टेशन से पकड़ कर ले आऊँगा।"

"देख लो ये हैं, जो अपने को केसरी संस्था का एक घटक कहते हैं।" लीला व्यंग से हँसते-हँसते बोली।

पहिले की एक ऐसी ही घटना मुझे याद हो आयी। नाना साहब ने उस समय मेरा ट्रंक घर से बाहर फेंक दिया था। उस समय मेरी स्थिति बहुत असहाय थी उस समय मैंने विलायत जैसा लम्बा सफर नहीं किया था। यही नहीं, बल्कि एक छोटा-सा सफर भी अकेले नहीं किया था। उस स्थिति में भी मैं अकेली स्टेशन गयी। और उस समय

वह घटना याद आते ही मेरा हृदय भर गया। आज मैं यदि सीधा स्टेशन जाती, तो लीला से भी अपने साथ चलने के लिए कहती। परंतु आज जिम्मेदारी का नया ज्ञान मुझे में जाग्रत हो उठा था। पिता की लड़की को उसके घर से निकाल कर अपने साथ ले जाने का मुझे रत्ती

भर अधिकार नहीं था। पुलिस में रिपोर्ट होते ही वे उसे स्टेशन पर से भी आकर ले जाते, यह मैं जानती थी। इसीलिए मैंने कहा—"लीला, घर में जाओ बेटी ! काका की बात मैंने नहीं सुनी, इसलिए अब पछता रही हूँ। उसी तरह तुम भी यदि मेरी बात न सुनोगी, तो पछताओगी कानून की दृष्टि से तुम अभी नाबालिग हो। तुम्हारे पिता का तुम पर पूर्ण अधिकार है, इसे यद्यपि तुम नहीं समझती, पर मैं समझती हूँ। इसलिए मेरी मानो और चुपचाप घर जाओ। उचित समय पर ही अब फिर हमारी भेंट होगी, परन्तु जब तुम नाबालिग हो, तब तक तुम से मैं नहीं मिलूँगी।"

सामने से एक खाली ताँगा जा रहा था। उसे मैंने पुकार कर रुकवाया।

लीला जिद पर आ गयी थी। वह मेरे साथ बहस कर रही थी। परन्तु मैंने उसे चुप करा दिया। चुपचाप मैं ताँगे में बैठी और ताँगा चलने लगा।

वह मेरे ताँगे के पीछे-पीछे दौड़नी लगी। इसी समय नाना साहब उसका हाथ पकड़ कर उसे घसीट ले गए।

आसपास के लोग खिल-खिलाकर हँस रहे थे। लज्जा को ताक पर रखकर वह "चाची! चाची !!" पुकारती हुई जोर से चिल्ला रही थी।

मैं स्टेशन पर पहुँची और सेकण्ड क्लास वेटिंग-रूम में जाकर बैठ गयी। लीला की उस अन्तिम मुद्रा का स्मरण होते ही मेरे हृदय में बेचैनी शुरू हो गई। नाना साहब के पहिले वर्ताव से भी इस बार का उनका वर्ताव अधिक राक्षसीय स्वरूप का हो गया था।

पूना तक आने का मेरा खर्च बेकार रहा। यदि भला आदमी पत्र लिख देता, तो बात घर ही में रही आती। परन्तु इस तमाशे के कारण वह लोगों के लिए चर्चा का एक विषय हो गया। पड़ोसियों ने यह सारा दृश्य देखा था। वे इस को सारे नगर में फैलाये बिना चैन न लेंगे। बेचारी लीला को अब सभी लोग चुभते हुए तानें दे देकर हैरान कर देंगे

श्रौर यह सब उस बेचारी को मेरे कारण सहना होगा। इस विचार के मन में आते ही मेरी आँखों से टप-से दो आँसू टपक पड़े।

कहाँ जाऊँ, इसका मैं कुछ भी निर्णय न कर पाती थी। एक वार मन में आता कि बम्बई चन्दू के घर जाऊँ। पर वहाँ भी यदि इस घटना की पुनरावृत्ति हुई तो ......

वह विचार मैंने छोड़ दिया। एक बार मन में आया कि स्मिथवाई के घर जाऊँ। परन्तु वहाँ जाने से मिशन हाऊस में रहना होगा। वैसे मिशन हाऊस में मैं रह भी जाती, परन्तु लोग मुझे वहाँ भी चैन से न रहने देते।

पहिले यदि मैं कुछ करती, तो वह बड़ा महत्वपूर्ण न माना जाता, पर आज विलायत से लौटने के बाद मुझ पर एक प्रकार की जिम्मेदारी आ गयी थी। उस जिम्मेदारी के अनुरूप मुझे अपने वर्ताव में निर्मलता रखनी आवश्यक थी।

सब दृष्टि से विचार करने के बाद मैंने गाँव जाना ही तय किया और बम्बई का टिकट खरीदा।

वम्बई की गाड़ी आने में अभी कुछ घण्टों की देर थी। तब तक समय कैसे काटूं, यह मुश्किल मैंने महसूस की। बुक-स्टाल पर जाकर मैं एक-दो अखबार खरीद लाई।

मैं अखबार पढ़ रही थी, यह स्वयं मैं ही नहीं समझ रही थी। मेरे दिमाग में विचार-चक्र लगातार घूम रहा था। सब बातों का सिंहावलोकन यद्यपि हो रहा था फिर भी एक बात प्रमुखता से पुनः पुनः मुझे याद आ रही थी कि इसी पूना स्टेशन पर इसी परिस्थिति में पहिले भी मुझे एक बार यही मौका आया था।

कहीं मेरे पूर्व जीवन की पुनरावृत्ति तो न होगी? यह भी लगने लगा कि ऐसी पुनरावृत्ति हो जाए तो क्या बात है! वही पुनरावृत्ति हो जाए और चन्दू से भेंट हो जाए—अकेले चन्दू से, तो बम्बई में उसी घटना के बारे में उससे मैं दिल खोल चर्चा कर सकूंगी, ऐसा मुझे

लग रहा था। पढ़ने की ओर मेरा ध्यान बिल्कुल लगता ही न था। बार-बार वही पढ़ती और पढ़ी बात यदि ध्यान में न रहती तो उस पढ़े हुए भाग को छोड़कर आगे का पन्ना पलटती। यही चल रहा था। मैं जिस वेटिंगरूम में बैठी थी वह महिलाओं के लिए था, इसलिए उसमें किसी पुरुष के आने की सम्भावना ही न ही। यह बात पहिले मेरे ध्यान में न आई। न जाने मुझे क्या लगा, मैं वहाँ से उठी और बाहर एक बेंच पर जाकर बैठ गयी।

बहुत से लोग आ-जा रहे थे। मेरी पहचान का उनमें कोई न दिखा। सभी चेहरे अपरिचित थे। पर मेरे सामने से गुजरने वाला हर पुरुष मेरी तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देखता हुआ जाता था। यही नहीं, बल्कि कुछ लोग तो आगे बढ़कर भी मुड़कर मेरी ओर देखते थे। उन लोगों के देखने के ढंग से मुझे बड़ा अजीब-सा लगने लगा। विलायत में रहते हुए भी मैंने वहाँ काफी सफर किया था। स्टेशनों पर इसी प्रकार बैठे रहने के भी मुझे कई मौके आये थे। परन्तु वहाँ यह अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। सच पूछा जाय तो मैं हिन्दू स्त्री थी, इसलिए वहाँ के लोगों को मेरे प्रति यदि जिज्ञासा होती और वे मेरी ओर देखते, तो वह बुरा न माना जाता। वे कितनी ही बार मुड़कर मेरी ओर देखते तो विलायत में मेरे मन पर इसका कोई असर न होता।

परन्तु इस जगह यह मुड़कर देखना मुझे दुःसह होने लगा। मैंने जब शाला जाना आरम्भ किया था, उस समय भी वाहियात लोगों की नजरें इसी तरह मेरे पीछे भटकती थीं। इसका मुझे स्मरण हो आया। उस समय सिर्फ नजरें ही नहीं भटकती थीं, बल्कि जबानें भी चलती थीं। इस बार सिर्फ जबानें ही मूक रहीं और इसे मैंने अपना भाग्य समझा।

मुड़कर देखने वालों की नजरें बचाने के लिए मैं अखबार लेकर पढ़ने लगी। परन्तु उससे मेरा काम नहीं होने वाला था। यूँ ही एक पगली आशा मेरे मन में जाग्रत हो उठी थी। उस आशा की पूर्ति के लिए चेहरे के सामने अखबार रखना अनुकूल न था। पहले की तरह

इस बार भी चन्दू मुझे यहाँ मिलेगा, यह आशा हृदय में दबाये मैं स्टेशन आयी थी। इसलिए लोगों की नजरें कैसी भी रहें, फिर भी उन्हें बर्दाश्त करने के लिए मैं मजबूर थी।

पांच वर्ष पहिले जिस समय मैं इसी स्टेशन पर इसी तरह आकर बैठी थी, उस समय कोई मेरी ओर देखता है क्या, यह कल्पना ही मेरे मन में नहीं आती थी। उस समय मैं अपने में ही चूर थी। उस समय मुझे लग रहा था आसमान ही मुझ पर टूट पर पड़ा है। परिस्थिति की पूर्ण जानकारी होने से आँखों के सामने कुछ ऐसा विलक्षण अँधेरा छा गया था कि आँखें खुली होते हुए भी सामने खड़ा हुआ मनुष्य मुझे नहीं दिखता था।

आज भी परिस्थिति वही थी, पर मैं निराधार नहीं थी। यद्यपि यह सच है कि आज भी मुझे पहले की तरह ही किसी व्यक्ति का आधार नहीं था, फिर भी विलायत से लौटने के कारण मुझे एक दर्जा प्राप्त हो गया था। उस दर्जे के कारण और उसके आधार पर आज नाना साहब ने मेरा जो अपमान किया था, वह मुझे असहनीय न लगा।

गाड़ी आने में काफी देर थी और समय काटे नहीं कट रहा था। चाय की दूकान पर जाकर मैंने एक कप चाय माँगी। मुझे चाय देने के बजाय दूकानदार मेरी ओर टकटकी लगाए देखता ही रहा। पुनः मेरी पूर्व-स्मृति जाग्रत हुई। पाँच साल हो गये, फिर भी यहाँ के पुरुषों की प्रवृत्ति नहीं बदली, इसका मुझे आश्चर्य हुआ। पाँच वर्ष की अल्प अवधि में इतने सालों की पुरानी प्रवृत्ति बदले भी कैसे? पर मैं बदल गयी थी और जब कि मैं बदल सकती हूँ, तो दुनियाँ के सारे मनुष्यों को भी बदल जाना चाहिए, मेरा ऐसा सोचना कितना निरर्थक था।

मैंने चाय पी। फिर जाकर बैंच पर बैठ गयी। पुनः अखबार पढ़ना शुरू किया। ऊपर नजर उठाई तो चंदू खड़ा था।

सचमुच इतिहास की पुनरावृत्ति हो गयी थी।

इतिहास की पुनरावृत्ति

हमने एक दूसरे को देखा, पर क्षण-भर के लिए किसी के भी मुँह से शब्द न निकलता था। शायद चंदू को भी मुझ जैसा ही लग रहा था।

वह बोला—"इधर कहाँ ? कोंकण से यहाँ कब आयीं ?"

मैंने उत्तर दिया—"आज ही आयी हूँ और आज ही वापिस जा रही हूँ।"

बोलते समय मेरी आ ज पर मन पर पड़े प्रभाव की छाया छा गयी थी, वह चंदू के ध्यान में आ गयी। वह बोला—"आज ही आयी और आज ही वापस जा रही हो ? इतनी जल्दी क्या काम था ?"

गाड़ी आने का करीब-करीब समय हो चुका था इसलिए मैंने कहा, "वह कहानी बहुत लम्बी है। अब गाड़ी में ही बातें करेंगे।"

चंदू ने पूछा, "अब कहाँ जाओगी ?"

जब मैंने उससे कहा कि कोंकण जाऊँगी, तब वह बहुत देर तक स्तब्ध रहा। उसके चेहरे पर विषाद की छाया साफ दिख रही थी। कुछ भी पूछना चाहिए इसलिए वह बोला, "गाड़ी तो रात को बम्बई पहुँचेगी। तो तुम क्या स्टेशन से बाला-बाला बंदर ही चल दोगी ?"

मैंने कहा, "बेशक। नहीं तो और कहाँ जाऊँगी ? मुझे अब बम्बई में रहने के लिए आधार है कहाँ ?"

वह पुनः स्तब्ध हो गया। उसके मन में जो कुहराम मचा था, उस की झलक उसके चेहरे पर दिख रही थी। इसी समय गाड़ी आ गई।

हम जिस डिब्बे में बैठे थे उनमें हम दोनों को छोड़कर और कोई न था। इतने बड़े डिब्बे में हम दोनों अकेले बैठे थे, यह मुझे बड़ा अजीब-

सा लगा ! चंदू भी थोड़ा अस्थिर हो गया था।

जब मैं अपना सब हाल सुना चुकी, तब वह बोला, "हाँ, तो यह बात हुई ! सच पूछा जाए तो मथू इस वक्त मेरे दिल में आ रहा है कि नाना साहब को खूब गालियाँ सुनाऊँ। परन्तु किस मुँह से मैं उन्हें दोष दूँ ? आखिर मैंने भी क्या किया है ? यद्यपि नाना साहब की तरह दरवाजे की देहली पर ही मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, फिर भी विलायत से लौटकर आने के बाद, पहिले ही दिन तुम्हें अपने घर से निकाल देने का श्रेय मैंने प्राप्त किया है। नाना साहब को गालियाँ दूँ ऐसा मेरे मन में आता है। कम-से-कम इतनी सी इन्सानियत मुझ में बची है, यह देखकर तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा। अच्छा हुआ, अनायास ही यह मौका मिल गया। इस संयोग की मैं प्रतीक्षा ही कर रहा था। वह इतनी जल्दी आ जाएगा ऐसा मैंने नहीं सोचा था। मेरा भाग्य है जो आज तुम मिल गयी। अब मुझे लगने लगा है कि दिल खोलकर तुम से सब कुछ कह डालूँ। क्या तुम सुनने को तैयार हो ?"

चट-से मुझ से 'हाँ' नहीं कहा जाता था। कोंकण में काका ने जो चर्चा की थी, वह मुझे याद हो आई और इसलिए मुझे यह अन्दाज हो गया था कि चंदू क्या कहेगा।

मैंने कहा, "उस विषय में काका के साथ मेरी काफी बातें हो चुकी हैं। काका ने यद्यपि साफ-साफ नहीं कहा था, फिर भी उनके कहने का सारांश मेरे ध्यान में आ गया है। तुम मुझ से उस तरह क्यों पेश आए थे, तब तक इसकी कोई कल्पना मुझे नहीं हुई थी। तुम्हारी वह दुष्टता देखकर मैं बड़े असमंजस में पड़ गयी थी। तुम्हारे स्वभाव में पाँच वर्ष की अवधि में इतना परिवर्तन कैसे हो गया, इस पर मुझे अचंभा हो रहा था। काका का अंदाज शायद गलत हो अथवा ठीक भी हो, पर यदि मुझे यह लगे कि वह हाल मैं तुम्हारे मुँह से सुनूँ, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। दिल खोलकर वह हाल सुनाने में यदि तुम्हें कोई दुख न हो, तो एकदम कह ही डालो।"

ऐसा लगा कि उसकी पलकें गीली हो गयी हैं। जेब से रूमाल निकाल कर उसने आँखें पोंछीं। वह बोला, "संयोग से ही यह अवसर मिला है। इस गाड़ी का इतना बड़ा डिब्बा जैसे हम दोनों के लिए ही रिजर्व हो गया है। यदि मैंने इस संयोग से लाभ न उठाया तो मुझ पर झुठाई का दोष प्रस्थापित होगा, ऐसा मैं सोचता हूँ। इसलिए सुनो! इस समय मैं तुम्हारे सामने अपना हृदय खोलकर रख देने वाला हूँ। मेरा विवाह किस परिस्थिति में हुआ, इसका हाल काका ने तुम से कह ही दिया है। विवाह के बारे में मेरा मन बिलकुल उदासीन हो गया था। विवाह करना है, इसलिए वह कर लेना चाहिए, इसे छोड़कर मेरे मन में दूसरी कोई भी भावना न थी। किसी भी लड़की के साथ विवाह होता, फिर भी वह मेरे लिए बराबर ही था। इसलिए काका ने जो लड़की पसंद की, वह मैंने बिना किसी शिकायत के मंजूर कर ली। मैं उसे देखने गया था, यह सच है। पर आँख उठाकर भी उसे नहीं देखा था। फिर परीक्षा लेने की बात तो दूर ही रही। उसके मायके के लोगों के ध्यान में वह बात आयी न होगी। विवाह योग्य लड़की के बाप बड़े लालची होते हैं। उनकी नजर दूर तक नहीं पहुँचती। उतनी ही लालच-भरी दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा था। उन्होंने इस बात पर ध्यान भी नहीं दिया कि मैंने बिना ठीक से देखे ही लड़की स्वीकार कर ली। यहीं बड़ी गलती हो गयी। विवाह की विधियाँ हो रही थीं, उस समय भी मैंने उस की ओर न देखा। जिस समय देखने का मौका आया, उस समय उसकी ओर देखते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी वृत्ति एक प्रकार से बँध गयी थी। मन में निश्चय कर लिया था मैंने, पर वह निश्चय व्यर्थ था। मुझे विश्वास था कि मेरी उस पगली आशा के पूर्ण होने की कोई संभावना नहीं है। इसलिए मैंने यह नासमझी की। बिना विवाह किये मैं गृहस्थी नहीं चला सकूँगा, सिर्फ इसीलिए ही मैंने विवाह किया।"

ऐसा कहकर वह क्षण-भर के लिए रुका। बोलते समय उसकी आवाज लगातार काँप रही थी। उसके मुँह की वह गिडगिड़ाहट की

भाषा सुनकर मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था।

वह आगे कहने लगा, "हम दोनों का परिचय हुआ। परिचय का वह निरा बहाना था। उस परिचय से मेरा तिल-मात्र भी समाधान न हुआ। उलटे मन का उद्वेग बढ़ गया। जैसे-जैसे सहवास बढ़ने लगा, वैसे-वैसे मैं उससे अधिक नफरत करने लगा। वह भी मेरी ओर विशेष आकृष्ट नहीं थी, यह भी मैं देख रहा था। गृहस्थी के झूठे ढंग हम चला रहे थे। आज भी उसी तरह है। वह कभी भी मुझ से दिल खोलकर बातें नहीं करती और मैं भी नहीं करता। फिर भी हम दोनों एक स्थान में रह रहे हैं, पर मुझे आश्चर्य होता है। उसका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा है। पुराने जमाने के पुराण-पंथी परिवार में वह बढ़ी है। काका के आगरकरी (सुधारक) वातावरण में मैं छोटे से बड़ा हुआ हूँ। इस तरह हम दोनों दो किनारे पर खड़े हैं। अनेक बार मन में आता है कि यह झूठी बेड़ी तोड़ डालूं—पर हिन्दुओं की दुनिया में वह संभव नहीं। पहिले नासमझी मुझ से ही हुई है। उसका कोई दोष नहीं। ऐसी हालत में मैं उसे संकट में क्यों डालूं ; यदि मैं आज उससे मायके जाने के लिए कह दूँ, तो मुझे विश्वास है कि उसे आनन्द ही होगा। परन्तु ऐसा करना अन्याय होगा। कल शायद हमारी गृहस्थी बढ़ेगी, दो बच्चे खेलने लगेंगे पर हम दोनों की राय एक कभी न होगी। उस दिन यदि मैं तुमसे रह जाने के लिए कहता, तो वह सचमुच ही मायके चल देती, इसका मुझे पूरा विश्वास है। इसीलिए हृदय में वेदनाएँ होते हुए भी मैंने तुम्हें जाने दिया। मेरे उस बर्ताव से ताई को धक्का लगा, काका को दुख हुआ, लीला ने मेरा तिरस्कार किया। फिर भी मैं उसी तरह पेश आया। इसका कारण एक ही है। मैं व्यर्थ ही उसका मन दुखाना नहीं चाहता था। तुम्हारी गलतफहमी तो कभी-न-कभी दूर कर सकूंगा, परन्तु यदि वह गलत समझ बैठी, तो हम लोग जीवन-भर के लिए एक दूसरे से अलग हो जाएँगे। इसीलिए मैंने तुम्हें कोंकण चली जाने दिया। पाँच वर्षों के बाद तुम्हारी भेंट हुई थी। घड़ी भर भी एक जगह बैठकर हम

दोनों ने बातें नहीं की और दूसरे ही क्षण मैंने तुम्हें चले जाने के लिए कह दिया। मैं अपनी नासमझी के कारण ही इतना राक्षस बन गया।

ऐसा कह कर वह चुप हो गया। क्या उत्तर दूँ उसे, यह मुझे सूझ नहीं रहा था। उसकी बातों का रुख मेरी समझ में आ गया था। गत काल का वह प्रसंग मैं भूली नहीं थी। उस समय के उसके उद्‌गार आज भी मेरे कानों में गूंज रहे थे। मुझे उसकी याद हो आई और अनजाने मुझे एक सिसकी आ गयी।

चन्दू बोला "तुम रो रही हो क्या ? इसलिए कि तुम्हें मुझ पर तरस आता है। मुझ पर तरस खाने का यह समय नहीं। वह समय कब का गुजर चुका है। उस समय यदि मुझ पर तरस खाती, तो आज मैं इस प्रकार जिंदगी भर के लिए दुखी न होता। उस समय तुम्हारी वृत्ति जिस प्रकार की थी, उसी प्रकार की वृत्ति आज मेरी पत्नी की है। मैं ऐसा कह रहा हूँ, इसलिए तुम नाराज हो जाना। क्यों उस समय तुमने मेरी बात अस्वीकृत कर दी ? उस समय मेरे प्रस्ताव को अस्वीकृत करते समय तुम्हारा हृदय पुराणपंथी वृत्ति का ही था। मेरे प्रति तुम्हें आदर था या नहीं ? फिर मुझे इस तरह क्यों फटकार दिया। मेरे उस प्रश्न से तुम्हें उस समय कितना जबरदस्त धक्का लगा था। याद है तुम्हें ? उस समय तुम्हें मूर्छा आ गयी थी। तुम क्षण-भर के लिए ही मूर्छित रही, पर मैं जीवन-भर के लिए मूर्छित हो बैठा हूँ। मैं कोर्ट जाता हूँ, लोगों के मुकदमें लड़ता हूँ, रुपये कंमाता हूँ, लोग मुझे सुखी समझते हैं, पर मेरा मन मर गया है। बार-बार मुझे अपने आप पर ही क्रोध आता है और एक ही बात पर क्रोध आता है कि विवाह करने की यह मूर्खता मैंने क्यों की ? मैं स्वयं तो दुखी हुआ सो हुआ ही, परन्तु एक मासूम जीव को अकारण दुखी करने का पाप भी उसके कारण मेरे मत्थे पड़ गया है। मैं उसका समाधान कर सकूंगा, यह कभी संभव ही नहीं है। क्या उसे समाधान की अपेक्षा न होगी ? उसे समाधान नहीं है—वह कुढ़नी स्वभाव की हो गयी है- चिड़चिड़ी बन गई है—परन्तु यह अप-

राध उसका नहीं। वह अपराध मेरा है। मैंने उसके साथ उसी तरह का बर्ताव किया है, प्रेम का एक शब्द भी उसे कभी सुनाई नहीं पड़ा। उसे देखते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह कोई कुरूप नहीं और न मूर्ख ही है। वर्तमान परिस्थिति के हिसाब से लड़कियाँ जितनी पढ़ती हैं, उतनी वह भी पढ़ी है, फिर भी मुझे उससे नफरत होती है। क्यों होती है, यह मैं नहीं कह सकता। सभी गलतियाँ मैंने की हैं। परन्तु मुझे यह लगता है कि मेरी किसी एक गलती के कारण उसे हमेशा के लिए नहीं चली जाना चाहिए। शायद यह मेरी कमजोरी हो, पर मैं इसे कमजोरी नहीं समझता। मैं कहता हूँ—यह मेरी कमजोरी नहीं—यह मेरा स्वार्थ-त्याग है—यह मेरे पाप का प्रायश्चित है—"

बोलते-बोलते वह एकदम रो पड़ा। किसी छोटे वच्चे की तरह वह फूट-फूटकर रोने लगा। यह देखकर कि इतना विद्वान और पुरुषार्थी मनुष्य धाड़ मारकर रो रहा है; मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया। किन शब्दों से उसे सांत्वना दूँ, मैं समझ नहीं पा रही थी। उसने आँखें पोंछी और फिर कहना शुरू किया। वह बोला—"अब तुम कहाँ जाओगी। बम्बई के कुछ होटलों में रहने का भी प्रबन्ध है। आज की रात इसी तरह के किसी होटल में विताओ। मैं घर जाऊँगा। फिर एक बार अंदाज लेकर देखूंगा और यदि एक रात के लिए तुम्हें घर में रखना संभव हो, तो तुम्हें बुलाने आऊँगा। मैं सोचता हूँ तुम दिन-भर की भूखी हो। शायद स्नान भी न किया होगा। ऐसे समय मेरे घर चलती—अच्छी तरह स्नान करके गरम-गरम खाना खाती, तो मुझे बड़ा समाधान होता। परन्तु तुम्हारा इतना भी आदर-सत्कार करना मेरे भाग्य में नहीं। तुम विलायत से आई हो, वहाँ की बातें जानने के लिये मेरा मन कितना उत्सुक हो रहा था, पर सब इरादे जहाँ-के-तहाँ ठप्प हो गए। बिल्कुल पहिले ही दिन वह ऐसा अनर्थ करेगी, ऐसा मैंने न सोचा था।

मैंने कहा, "मैं एक प्रयत्न करके देखना चाहती हूँ। तुम्हारे साथ मैं

तुम्हारे घर चलती हूँ। बिल्कुल बाहर बैठी रहूँगी। घर के भीतर कदम भी न रखूंगी। तुम्हारी पत्नी से खाना बाहर ही परोस देने के लिए कहूँगी और फिर यह कोशिश करूँगी कि उससे दिल खोलकर चार बातें कर सकती हूँ या नहीं ?"

"नहीं, नहीं ! इतना मत करना !" चन्दू बड़ी आजिजी से बोला, "फिर से नाना साहब के घर की पुनरावृत्ति होगी। तुम्हें अपमानित करने के लिए अब वह क्षण-भर के लिए भी पीछे नहीं हटेगी। उस समय काका और ताई दोनों थे। उनका थोड़ा डर भी था। परन्तु इस समय उसने तुम्हारा अपमान कर दिया, तो मुझे मरणप्राय दुख होगा। मैं जैसा कह रहा हूँ, वही करो। मैं ही उसका मन झुकाने की कोशिश करता हूँ।"

उसकी लाचार हालत देखकर मुझे बड़ा रहम आया। उसके कहने में तथ्य था। यदि हम दोनों एक साथ जाकर वहाँ पहुँचे, तो वह इसका कोई गलत अर्थ लगा लेगी। इसी प्रसंग से चन्दू डर रहा था।

हम दोनों चुप रहे। वह भी विचारों में खो गया था। मैं भी सोच रही थी। वह क्या सोच रहा था, यह मैं न कह सकती थी। पर मेरे मन में एक ही बात आ रही थी कि इतिहास की पुनरावृत्ति हो गयी है, इस में शक नहीं। पर वह भिन्न प्रकार से हुई है। उस समय अत्यन्त विपदा-वस्था में मैं स्टेशन पर आई थी और चन्दू मुझे मिला था—उसके मित्र मिले थे। उन सब ने मेरे साथ बड़ा स्नेहपूर्ण बर्ताव किया था। मेरे निरुत्साहित हुए मन को उस समय उन स्नेहशील मित्रों की संगति में बड़ा धीरज मिला था।

पर आज स्थिति भिन्न है। उस समय की तरह आज मैं निरुत्सा-हित नहीं हुई थी। आत्मविश्वास के पैरों पर खड़ी हुई मैं आज उसी प्रकार के प्रसंग पर उससे मिलती हूँ और वह मेरे सामने रोता है ? पहली बार उसने मेरा समाधान किया था। आज उसे मैं सांत्वना दे रही थी।

विषयान्तर करने के उद्देश्य से मैंने पूछा—"तुम तो डाक्टर हो रहे थे, फिर डाक्टरी की परीक्षा देना छोड़कर वकालत की ओर कैसे मुड़ गये थे।"

मेरे इस प्रश्न से उसका चेहरा बदल गया। क्षण-भर के लिए उस के मन पर जो काली छाया आ गयी थी वह अब दूर हुई सी दिखाई दी। वह बोला, "सच बताऊँ ? मुझे डाक्टरी पसंद थी। उसी ओर मेरी रुचि भी थी। परन्तु जब मैंने देखा कि मेरे साथी कुछ विद्यार्थी चार-चार पाँच-पाँच बार परीक्षा में बैठकर फेल हो गये, तब मेरी हिम्मत टूट गयी और मुझे लगा कि यह पेशा ही छोड़ देना चाहिए। सच्चा कारण तुम्हारा विलायत चला जाना था। तुम्हारे विलायत चले जाने के कारण मेरा मन ऐसा हो गया कि कोई भी काम मैं क्यों कर रहा हूँ इसी का मुझे होश न रहता। जब मैंने काका को लिखा के मेडिकल कालेज छोड़ कर मैं वकालत पढ़ने लगा हूँ, तब इसका उन्होंने कोई विरोध न किया। किसी भी विषय में कभी उन्होंने मुझ पर अपना शासन नहीं चलाया। मैं परीक्षा मैं बैठा, पास हो गया और वकालत करने लगा।

ऐसा कहकर वह चुप हो गया। मौन साधे बैठा रहा। फिर वह उदास-सा हो गया। मैं कुछ बोलना चाहती थी। पर इसी समय खिड़की से झाँक कर देखा तो बम्बई की हद आ गयी थी।

इसीलिए होठों तक आये शब्दों को पुनः निगलकर मैं चुप रही।

बोरीबंदर स्टेशन आया और हम दोनों प्लेटफार्म पर उतरे। स्टेशन के बाहर आते ही मैं जाने के लिए गाड़ी तय करने लगी, तभी चन्दू बोला, "ठहरो ! मेरे दिमाग में एक विचार आया है। चलो मेरे साथ—मैं एक अनुभव लेना चाहता हूँ।"

मुझे भी उसी प्रकार की सनक आई और मैं गाड़ी में बैठकर चन्दू के साथ उसके घर चल पड़ी।

अलगाव

हम दोनों घर पहुँचे। हमें देखते ही सरूबाई आश्चर्य-चकित हो गयी।

आते ही मैंने जूते-मोजे उतारे और मेरे सामान को ले जाकर भीतर रखने का चन्दू ने नौकर को हुक्म दिया। सरूबाई धुँधवा रही थी, परन्तु वह बोली कुछ नहीं। मुझे लग रहा था कि यह ज्वालामुखी थोड़ी देर में भड़केगा।

चन्दू ने थालियाँ लगाने को कहा। मैं मुंह-हाथ धोकर रसोई घर के बरामदे में गयी, जहाँ सब लोग खाना खाने बैठे थे। मेरे साथ चन्दू भी था। परन्तु वहाँ एक चमत्कार दिखायी दिया। एक ही थाली परोस कर रखी गयी थी।

चन्दू ने रसोईया से कहा, "घर में एक मेहमान आई है। क्या तुम्हें दिखा नहीं ? क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि दो थालियाँ लगानी थीं ?"

रसोइया सिर्फ टकटकी बाँधे देखता रहा, तब चन्दू चिल्लाकर बोला, "दूसरी थाली भी लगाओ।"

रसोइया अपनी जगह से टस-से-मस न हुआ। चन्दू का गुस्सा बेकाबू हो गया। वह सरूबाई की ओर मुड़कर बोला, "कम-से-कम तुम्हें तो समझना चाहिए।"

सरूबाई बिल्कुल शाँति से बोली, "मैं पगली क्या जानूं कि स्त्रियाँ भी भोजन के लिए पुरुषों की पंक्ति में बैठती हैं ? मैं अभी विलायत नही गयी।"

चन्दू थोड़े ठंडे दिमाग से बोला, "अच्छा ! अच्छा ! अब कहो उसे थाली लगाने के लिए। तुम यदि हमारे साथ खाने बैठो, तो मैं कब तुम्हें रोकता हूँ। पर तुम खुद ही नहीं बैठती, तो इसके लिए मैं क्या करूँ ?"

सरूबाई ने कहा, "विवाहित स्त्री अपने पति की जूठी थाली में खाया करती है। आप लाख कहें मुझ से कि हमारी पंक्ति में बैठकर भोजन करो, पर मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूँगी।"

इतनी बातें हो जाने पर भी रसोइया थाली नहीं लगा रहा था। यह देख चन्दू उस पर फिर बरस पड़ा।

उत्तर में रसोइया बोला, "मैं क्या करूँ, साहब ! चार आदमियों के लिए ही भोजन बना है। या तो मुझे भूखा रहना होगा, या फिर नौकर भूखा रहे। मैंने मालकिन से पूछा था कि क्या और चावल पकाऊँ, पर उन्होंने इंकार कर दिया। मैंने यह भी कहा कि एक मेहमान बाई आयी हैं। तब उन्होंने कहा कि वे यहाँ भोजन नहीं करेंगी।"

चन्दू ने सरूबाई को लक्ष्य कर कर कहा, "क्या यह सच है ?"

सरूबाई ने उत्तर दिया, "मैं ही भूखी रह जाती हूँ जिससे सबके पेट भर जाएँगे।"

चन्दू बोला, "यह कौन कह रहा है कि तुम भूखी रहो। रसोई बनाने वाला ब्राह्मण काफी मजबूत है। फिर से भोजन बनाने के लिए भी तैयार है। फिर तुम्हें भूखा रहने की क्या जरूरत ? साफ-साफ ही क्यों नहीं कह देती कि तुम नहीं चाहतीं कि मथू यहाँ भोजन करे। इसके लिए इतना शर्माने की क्या जरूरत ?"

सरूबाई बोली, "तो अब कहे देती हूँ। कान खोल कर सुन लीजिए। ऐसा भ्रष्टाचार मैं अपने घर नहीं होने दूँगी। यदि वह भोजन करती है, तो इस घर में मैं भोजन नहीं करूँगी। और यदि वह यहाँ रहती है, तो कल ही मुझे मेरे मायके पहुँचा दीजिए।"

चन्दू बोला, "ठीक है। तुम अगर भोजन नहीं करना चाहती, तो मत करो। और कल अगर मायके जाना चाहती हो, तो बताओ कितने

रुपये चाहिए। मुझे बहुत काम हैं। तुम्हें पहुँचाने के लिए तुम्हारे साथ जाने की मुझे फुरसत नहीं।''

मैं कुछ कहने जा रही थी, पर उसी समय चन्दू ने आँख का इशारा कर मुझे रोक दिया। सरूबाई ने कहीं जाकर अपना अंग धड़ाम-से पटक दिया, ऐसा मुझे सुन पड़ा। मैं देखने के लिए जा रही थी, पर चन्दू ने अपने मुँह पर अंगुली रखकर मुझे मना कर दिया।

रसोइया ने थाली लगाई और हम लोग भोजन करने वैठे। इतना कांड हो जाने पर मुझ से खाया नहीं जाता था। भोजन करते समय चन्दू कुछ न बोला।

पूना से लेकर अभी तक की वातें मेरी नजरों के सामने से जा रही थीं। जहाँ मैं जाती हूँ, वहीं एक न एक काण्ड खड़ा हो जाता है, यह कैसा संयोग है? यह विचार मन में आते ही मुझे वड़ा दुःख हुआ। मैं खिन्न हो गयी।

भोजन से निपट कर हम वाहर आये। उस समय मेरा विस्तर वाकायदा लगा हुआ मुझे दिखायी दिया। रसोइया को दी गई डाट से नौकर ने सवक सीखा होगा।

वहुत देर तक हम दोनों विलायत की वातें करते वैठे थे। फिर भी वातें करते हुए मेरा सारा ध्यान गत घटनाओं में उलझा हुआ था। क्या सरूवाई सचमुच मायके चल देगी? उसके इस तरह चले जाने से क्या वाहर वदनामी नहीं होगी? उस वदनामी का क्या मेरे चाल-चलन पर भी प्रभाव न पड़ेगा? चन्दू के साथी उससे क्या कहेंगे? वह क्या उत्तर देगा? अनेक प्रश्न मेरे मन में खड़े हो रहे थे।

करीव साढ़े ग्यारह वज गये थे। तव तक हमारी वातें चल रही थीं। चन्दू ने घड़ी की ओर निगाह फेंकी और कहा "मैं सोचता हूँ, अव हमें सो जाना चाहिए। चार दिन यहाँ आराम करो और फिर जाना हो तो कोंकण चली जाना। यहाँ तुम्हें स्मिथबाई से मिलना होगा न? उनके पास कव जाओगी?"

मैंने कहा—"मैं साफ-साफ कह कह रही हूँ, इसके लिए मुझे क्षमा करना। मुझे कल सुबह की ही बोट से चल देना है। फिर कभी आऊँगी, तब चार दिन रह लूंगी।"

"मैं यह एक नहीं सुनूंगा।" चन्दू बोला, "मैं तुम्हें कल नहीं जाने दूँगा। कम-से-कम कल तो तुम्हें यहाँ रहना ही होगा। तुम शायद मेरी पत्नी से डरती होगी। पर अगर वह जाना चाहती है, तो शौक से जाये। यदि तुम कल ही चली गयी, फिर भी तुम्हें मुझे अपने घर लाना ही पड़ेगा। सिर्फ अपनी पत्नी के मूर्खता-पूर्ण मतों के कारण मैं अपने आत्मीयों से सम्बन्ध नहीं तोड़ना चाहता। तुम जब फिर आओगी, तब यह जाएगी ही। फिर वह कल ही क्यों न चली जाए।"

मैंने कहा—"मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगता। मेरे कारण तुम्हारी सुख की गृहस्थी में कोई बाधा आवे, यह मैं पसन्द नहीं करती। दुर्भाग्य से मैं जन्म से ही दुखी हूँ। मेरी गृहस्थी मिट्टी में मिल गयी है। तब दूसरे की गृहस्थी को नष्ट करने का पाप मैं अपने मत्थे क्यों लूं?"

चन्दू बोला—"मेरा सुख? क्या तुम सोचती हो कि मैं सुखी हूँ? अगर मैं सुखी होता, तो उस दिन मेरी इस तरह विडम्बना क्यों हुई होती? मुझे किसी भी तरह सुख नहीं मिल रहा है। फिर कम-से-कम मैं अपनी मनमानी क्यों न करूँ? कितने दिन यह सजा भोगता रहूँ? इसे आना चाहिए, उसे नहीं आना चाहिए, इसके घर नहीं जाना चाहिए, उसकी ओर नहीं देखना चाहिए—मैं नहीं चाहता कि कोई मुझ पर यह साहबी शान जमाये। मैं किसी का शासन नहीं चाहता, इसीलिए तो मैंने स्वतन्त्र पेशा इख्तयार किया है, वरना मैं कहीं नौकरी न कर लेता। बाहर तो मैं स्वतन्त्र हूँ। घर पर में परतन्त्रता मेरे भाग्य में आयी है। कभी-न-कभी इस भय को मुझे अपने मन से निकाल देना ही पड़ेगा। जितना यह भय पुराना होता जाएगा, उतना मोरचा अधिक लगेगा और उतने ही दाग अधिक पड़ेंगे। इससे तो जो होना हो, सो आज ही हो जाने दो।"

भीतर से जोर से रोने की आवाज आई। मैं फिर देखने जाना चाहती थी। पर फिर चन्दू ने मुझे रोक दिया।

वह काण्ड देखकर मुझे बुरा लग रहा था सही। पर उसके लिए मेरे पास कोई इलाज न था। यह तो मुझे पहले ही सोच लेना चाहिए था। मैं जानती थी कि मेरे यहाँ आने पर ऐसा कोई काण्ड जरूर उपस्थित होगा। अब काण्ड हो जाने के बाद पीछे हटना कायरता होती।

मैं विस्तर पर सो गयी। पर मेरी आँखों में नींद कहाँ ? बचपन से आज तक की सारी घटनायें सिनेमा की रील की तरह मेरी नजरों के सामने से सरक रही थीं। सत्यकाम जाबलि* की कहानी मुझे याद हो आई। सत्य के लिए हर कष्ट सहना मानव-धर्म है, यह भी मुझे याद आया।

चन्दू की तैयारी थी। फिर मुझे लगा, मैं ही क्यों पीछे हटूँ ? सरूबाई नाराज हो रही थी, इसमें शक नहीं। उसकी वह नाराजगी क्या सत्य के लिए थी ? उसके मतानुसार थी। मेरे और चन्दू के मत अनुसार वह नाराजगी मूर्खता की थी। दोनों की सत्य की कल्पनायें अलग-अलग थीं। अपने-अपने ढंग से जो जिसे सत्य लगता था, उसके लिए वे आपस में लड़ रहे थे। इस लड़ाई में जो जीतता, उसी का सत्य सच्चा सत्य निश्चित होने वाला था।

पर इस लड़ाई में जीत किसे कहा जाय ? पहेली ही यह उपस्थित हो गयी थी। सरूबाई मायके चली गयी—नाराज होकर हमेशा के लिए वहीं रह गयी, तो क्या यह कहेंगे कि चन्दू की जीत हुई ? उसे पाश्चाताप होकर यदि वह लौट आई, तो शायद यह चन्दू की जीत होगी ? पर इस तरह वह लौट आएगी, ऐसा मुझे नहीं लगा। उसके मत बड़े विक्षिप्त थे सही, पर उनके लिए उसे अपने मन को बड़ा कठोर बनाना था। वह मायके गयी और उसने चन्दू पर गंदा आरोप लगाया, तो मायके वाले उसका समर्थन करेंगे,. उसी का पक्ष लेंगे और चन्दू का

*इस कथा के सम्बन्ध के लिए "विधवा कुमारी" पढ़ें।

बदनामी करने के लिए वे भी कमर कसकर खड़े हो जायें।

दूसरा प्रश्न मन में यह उठा कि चन्दू की इस प्रकार बदनामी होने से, उसके व्यवसाय पर भी क्या कुछ प्रभाव पड़ेगा? मुझे यह बात सम्भव नहीं मालूम हुई। मैं जानती थी कि कितने वकीलों की ही चाल-चलन अच्छी न थी। जब तक वकील के नाते वह अपना काम सचाई से करता था, तब तक उसके व्यक्तिगत जीवन पर किये गये आरोप उसके व्यवसाय के मार्ग में कोई रुकावट पैदा नहीं कर सकते। यही विचार मेरे मन में आया।

जो भी होना हो, सो हो, पर एक बार यह प्रयोग हो ही जाए, ऐसा चन्दू की तरह मेरे मन में भी आया। मैंने भी पक्का निश्चय कर लिया।

इन्हीं विचारों में खोयी हुई मैं सो गयी। सुबह जब जागी, तो धूप निकल आयी थी। चन्दू मेरे पहिले ही उठ गया था। प्रातः क्रियाओं से निवृत्ति होकर वह सुबह के समाचार पत्र पढ़ रहा था।

मैं प्रातः क्रियाओं से निवृत्त हो कर आयी। फिर भी चंदू पढ़ ही रहा था। भीतर से बाहर आते समय सरूवाई मुझे घर में कहीं न दिखी। मैं हाल में आई। तब रसोइया चाय लेकर आया। मैंने चाय पी। फिर भी चंदू ने मेरी ओर न देखा। कुछ देर प्रतीक्षा कर मैंने उससे पूछा—"सरूवाई कहाँ है?"

समाचार पत्र पर से अपनी नजर न हटा कर वह बोला, "वह गयी—मायके चली गयी।"

यद्यपि मैं जानती थी कि ऐसा कुछ जरूर होगा, फिर भी मैंने यह न सोचा था कि वह इतनी जल्दी चल देगी। मैंने यह अनुमान लगाया कि रात को दोनों में काफी खटकी होगी और क्रोध के आवेश में वह किस तरह गयी, यह चंदू से पूछना मुझे उचित प्रतीत न हुआ।

कोर्ट जाने तक चंदू ने कोई विशेष बातें न कीं। दोपहर को समाचार पत्र उठा कर मैं कुछ देर तक पढ़ने लगी। पर पढ़ने में मन न लगता

था। बार-बार विचारों के चक्र में मैं गोते खा रही थी। जो हुआ, वह अच्छा या बुरा हुआ, मुझ पर इसका दायित्व कितना है और उस दायित्व का मेरे भावी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? यह विचार मुझे डरा रहा था। मेरे अधिक विचार करने वाले स्वभाव के कारण हजारों कुत्सित कल्पनाएँ मेरी नजरों के सामने आ रही थीं। घर में दो आदमी थे, इस में शक नहीं, पर वे नौकर थे। ऐसी परिस्थिति में अकेले रहने वाले चंदू के घर में उसके साथ मुझे रहना चाहिए या नहीं, यह प्रश्न मेरे सामने उपस्थित होने लगा। यदि अपना मन साफ है, तो दुनिया से डरने की परवाह नहीं, यह हम कहते हैं जरूर, परन्तु जब प्रत्यक्ष ऐसा कोई अवसर प्राप्त हो जाता है, तब हमें हिम्मत नहीं पड़ती। यही बात मेरे साथ हो गयी थी।

करीब तीन-चार बजे मैं स्मिथबाई से मिल गयी। मुझे देखते ही उन्हें बड़ी खुशी हुई। मेरे बारे में वे समाचार पत्रों में पहिले ही पढ़ चुकी थीं। उन्हें यह भी पता चल गया था कि मैं विलायत से लौट आई हूँ। वे मेरी ही राह देख रही थीं।

उन्होंने यह इच्छा प्रदर्शित की कि उनके अधिकार में लड़कियों की जो शाला थी, उसमें मैं हेडमिस्ट्रेस का काम करूँ। वे बोलीं, "आप विलायत से जो सम्मान प्राप्त करके लौटी हैं, उसे देखते हुए इस स्थान का वेतन बहुत ही कम है। परन्तु आपको विलायत भेजने में मैंने भी थोड़ी मदद दी है, इसलिए इस नौकरी को स्वीकार कर आपको भी थोड़ा स्वार्थ-त्याग दिखाना चाहिए, ऐसी मेरी इच्छा है। दूसरी जगह शायद आपको इससे भी अधिक वेतन की नौकरी मिल जाए—शायद मिले भी नहीं। सच पूछा जाए, तो आपको किसी कालेज में प्रोफेसर की जगह मिलनी चाहिए थी—पर हमारे कालेज याने हिन्दुस्थान के कालेज अभी तक लड़कों के कालेजों में स्त्रियों को प्रोफेसर नियुक्त नहीं करते। कम से कम इस प्रान्त में तो अभी तक यह रिवाज नहीं है, इसलिए अगर आपको नौकरी करनी है, तो हमारी शाला की नौकरी ही स्वीकार

कीजिए। आगे चलकर अच्छे वेतन की दूसरी नौकरी यदि आपको मिल जाए, तो मैं आपको यहाँ नहीं रोक रखूँगी। परन्तु आप के आने का पहला मौका हमें मिलना चाहिए, ऐसी मेरी अत्यंत प्रवल इच्छा है।"

उस जगह की तनख्वाह डेढ़ सौ रुपये थी। मेरी मौजूदा परिस्थिति में वह तनख्वाह सब दृष्टि से बिल्कुल पर्याप्त थी। अलग घर लेकर एक रसोईदारिन रख कर उतनी तनख्वाह में मैं मजे से रह सकती थी।

मैंने कहा—"मेरी जगह यदि कोई पुरुष होता, तो उसे नौकरी के लिए सब ओर चक्कर काटने पड़ते। उसकी यही जिद होती कि उसे प्रोफेसरी ही मिलनी चाहिए और वह जगह उसे चट-से मिल भी जाती। मेरी कोई अपेक्षा न होते हुए भी आपने चट-से मुझे जो यह सम्मान दिया, इससे सचमुच मुझे वड़ी खुशी हो रही है। फिर भी इस विषय में सोचने के लिए यदि आप मुझे दो-चार दिन का समय दें, तो अच्छा होगा।" ऐसा कह कर मैंने स्मिथाबाई से विदा ली।

शाम को जब चंदू घर आया, तब मैंने स्मिथबाई की मुलाकात का सारा हाल उससे कहा। पुरुष होने के कारण अपने स्वभाव के अनुसार उसने मुझ से कहा कि मुझे इतनी जल्दी वह जगह स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिए थी—थोड़े ही दिन मुझे और रुक जाना था—शायद इस से भी अधिक वेतन की जगह मिल सकती थी, पर इस पर मुझे कोई आश्चर्य न हुआ। मुझे तो अनुमति केवल काका और ताई से लेनी थी और वह मुझे मिल जाएगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास था।

जब यह वात मैंने चंदू से कही, तव वह वोला, "ठीक है। वैसे आज कल के दिनों में डेढ़ सौ रुपये की नौकरी भी कोई छोटी नहीं है, खास कर तुम जैसी स्त्री के लिए। जब तुम्हारी इच्छा ही है उस नौकरी को स्वीकार करने की, तो कर लो। पर तुम्हारा यह प्रस्ताव कि तुम यहाँ अलग घर लेकर रहोगी, मुझे विल्कुल नहीं जँचता। तुम यहीं मेरे घर ही रहो। मन में जरा भी संकोच न करो। मेरी पत्नी अव नहीं आएगी इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। अभी कम-से-कम दो साल तक वह मेरी

परीक्षा लेगी। तब तक इस घर में अकेला रहना मेरी जान पर आ जाएगा। अगर तुम यहाँ रहोगी, तो मुझे एक साथ हो जाएगा। मेरे मन को शांति मिलेगी। नहीं तो मथू, मैं तुम्हें जताये देता हूँ कि मैं फिसल जाऊँगा नीति-भ्रष्ट हो जाऊँगा। मेरा मन वड़ा भावनात्मक है। अकेला रहना मेरे लिए संभव नहीं। वह चली गयी है। मैं खुद उसे कभी नहीं वुलाऊँगा और साल-दो साल तक यदि मैं इसी तरह अकेला ही रहा, तो अपने आचरण पर अधिकार रखना मेरे लिए संभव न होगा। यदि तुम्हारी इच्छा है कि मैं पापी न वनूं, तो तुम यहीं मेरे साथ रहना। तुम्हारी मुझ पर एक प्रकार से कड़ी नजर रहेगी। साफ-साफ ही कहता हूँ। यह सच है कि उम्र में तुम मुझ से छोटी हो, परन्तु मैं जितना काका से डरता हूँ, मुझे उतना ही तुम्हारा भी भय लगता है। मेरी अभी वह उम्र है जव कि मुझ पर किसी जेठे-सयाने की छत्र-छाया रहे। ऐसी छत्र-छाया के अभाव मैंने अपनी उम्र के अनेक युवकों को नीति-भ्रष्ट हुए देखा है। वही हाल मेरा न होना चाहिए। अपने सुभीते के लिए नहीं वल्कि मेरे कल्याण के लिए तुम मुझे छोड़कर दूसरी जगह न रहना।"

क्या उत्तर दूँ, यह मुझे सूझ नहीं रहा था। वोलते समय वह इतना गद्गद् हो गया था कि उसकी स्थिति देखकर मेरा हृदय भी भर आया।

मेरी आँखों में आँसू देखकर वह वोला—"तुम रो रही हो? मथू, तुम्हें मुझ पर दया आती है। दया करने योग्य यदि कोई है, तो मैं ही हूँ। इस समय निष्ठुर मत वनो। यदि तुम्हें यह लगता हो कि मेरे साथ अकेली रहने में लोग तुम्हें और मुझे वदनाम करेंगे, तो उसकी तुम परवाह न करो। वदनामी होते-होते घुल जाती है। परन्तु उस वदनामी के डर से जो वात करना हम टाल देते हैं, उसके टाल देने के कारण होने वाले अनर्थ किसी निरपराधी जीव का हमेशा के लिए सत्यानाश कर देते हैं, यह न भूलो।"

उस समय मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मैं वहुत देर तक सोचती

रही। मेरे मन में लगातार कुहराम मचा था। मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रही थी।

मन में पक्का निश्चय करके अन्त में मैंने कहा—"मैं सोचती हूँ, इस बात का फैसला हम काका पर ही छोड़ देंगे। मैं आज तक उनकी सलाह के अनुसार काम करती आई हूँ और इस विषय में भी मैं उन्हीं की सलाह मानूँगी। तुम्हारे साथ अकेला रहना मुझे खतरनाक मालूम होता है। मुझे तुम से कोई खतरा हो, यह बात नहीं। परन्तु जैसा कि तुम कहते हो उस तरह बदनामी से ही मैं बहुत डरती हूँ। इसके बावजूद यदि काका मुझ से तुम्हारे साथ ही रहने के लिए कहें, तो उनकी आज्ञा मेरे सिर-माथे होगी।"

मेरे इस उत्तर से उसे समाधान हो गया, ऐसा लगा।

दूसरे ही दिन मैं कोंकण चली गयी। काका का फैसला सुनने के लिए वह भी उतना ही उत्सुक हो गया था।

पुनः बम्बई

गाँव में आकर देखती हूँ तो वहाँ एक दूसरा ही काण्ड उपस्थित हो गया था। गाँव में काका का हुक्का-पानी बंद करने का प्रस्ताव हो रहा था। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि इस काण्ड के अगुआ मेरे पिता जी ही थे।

लोगों को इस पर आश्चर्य था। पर मेरे लिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जिस दिन मेरी माँ की मृत्यु हो गई थी और पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया था, उसी दिन से मैं मातृ-पितृ-विहीन हो गई थी।

उनका सिर्फ इसी बात पर कटाक्ष था कि काका ने विलायत से लौटी एक विधवा को, जिसने प्रायश्चित नहीं लिया, अपने घर में रखा, रहने दिया और उसके साथ भोजन किया। विलायत से लौटी वह विधवा मेरी पुत्री है, इसकी मेरे पिताजी को कोई परवाह न थी। वे गाँव के नेता थे, वेद और शास्त्र के जानकार थे और इसी हैसियत से मैं अपना कर्त्तव्य कर रहा हूँ, ऐसा उनका दावा था। वह लड़की यदि मेरे घर आती, तो जब तक वह प्रायश्चित न ले लेती, तब तक मैं उसे अपने घर की देहली भी न चढ़ने देता, ऐसा वह बड़े अभिमान से कहते थे।

जिस समय काका ने यह सब हाल मुझसे कहा, उस समय मैंने उनसे पूछा, "फिर अब आप क्या करेंगे ? मुझे अब यहाँ नहीं रहना है। मुझे नौकरी मिल गई है। मैं अब बम्बई में ही रहूँगी। तो फिर आप प्राय-श्चित लेकर मुक्त हो जाइए न।"

"पगली लड़की," काका बोले, "यह सिद्धान्त का प्रश्न है। तुम यहाँ रहोगी या नहीं रहोगी, इससे मुझे कोई वास्ता नहीं। समुद्र की यात्रा करना यदि अधर्म है तो जल-मार्ग से कोंकण से बंबई जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रायश्चित लेना होगा। इन लोगों का कहना यह है कि सिर्फ समुद्र से यात्रा करना अधर्म नहीं है। विदेश-गमन करना अधर्म है। मनुस्मृति पर मेरी कोई श्रद्धा नहीं, कोई विश्वास नहीं। उसमें इतनी परस्पर विरुद्ध बातें हैं कि उनका एक दूसरे से मेल ही नहीं जमता। मनुस्मृति में जो प्रायश्चित बताया गया है अथवा निर्णय-सिंधु में जो लिखा है वह समुद्रयान के लिए है—समुद्र के पार जाने के लिए नहीं। वह पाप कोंकण के लोग रोज कर रहे हैं, ऐसी मेरी धारणा है। विदेश-गमन की इस थोथी कल्पना के कारण ही हम आज पराधीन हो गये हैं। सच पूछा जाय तो हिन्दुस्थान को बहुत पहले ही बहुत से देश जीत लेने थे। पहले जमाने में हिन्दुस्थान में इतनी शक्ति थी। परन्तु विदेश-गमन को पाप का स्वरूप दे देने के कारण हम आज दूसरों की पराधीनता में सड़ रहे हैं। परदेश गमन यदि ईसाइयों के धर्म में अधर्म माना जाता, तो इंग्लैंड जैसा एक छोटा-सा देश हिन्दुस्थान पर शासन न कर सकता। यदि सिर्फ इसी मामले में तुलना करें तो ईसाई-धर्म हिन्दू-धर्म से श्रेष्ठ है। अधिक व्यापक है, यह कोई भी मानेगा। हिन्दुस्थान के बिना इंग्लैंड का क्या मूल्य है? बीत्ता-भर इंग्लैण्ड आज इतने बड़े हिन्दुस्थान पर राज्य कर रहा है। इसका कारण एक ही है कि ऐसे मूर्खता-पूर्ण बंधन उन्होंने नहीं माने। मैं इसी दृष्टि से परदेश गमन को देखता हूँ। यही नहीं, बल्कि मेरा तो यह ख्याल है कि हम जो परदेशगमन नहीं करते यही एक बड़ा पाप है। परसों हमारे पड़ौसी गाँव के गोविंदराव का लड़का बंबई से आया। शराब पीकर नाबदान में पड़ा हुआ था। सब ने वह दृश्य देखा। वह क्या खाता होगा, और क्या नहीं खाता होगा, यह वही जाने। उसका हुक्का-पानी क्यों किसी ने बंद नहीं किया? उसके बाप का हुक्का-पानी बन्द क्यों नहीं किया? मेरा कहना यही है कि पहिले

उसे और उस जैसे दूसरों को जात से वाहर निकालो और फिर मुझ से प्रायश्चित लो।"

"इस प्रश्न का उन्होंने क्या उत्तर दिया ?" मैंने पूछा।

"किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया।" काका वोले, "गोविन्दराव गाँव के जमींदार हैं। लोगों का भला-बुरा कर सकते हैं। पुलिस के अधिकार भी उन्हें ही मिल गये हैं। तव ऐसे व्यक्ति से विरोध कौन करेगा ? मेरे पास भी थोड़े-वहुत अधिकार हैं। मैं भी एक छोटा-सा जमींदार ही हूँ। पर मेरे स्वभाव को ये लोग जानते हैं। जमींदार की शान मैंने कभी नहीं दिखाई और न आगे भी कभी दिखाऊँगा, यह वे जानते हैं। इसी लिए उन्होंने मुझ पर यह शस्त्र फेंका है। सच, पूछा जाय तो यह सव तुम्हारे पिता का षड़यंत्र है। मैं तुमसे स्नेह करता हूँ, तुम्हें आश्रय देता हूँ, तुम्हें विलायत जाने के लिए मैंने ही प्रोत्साहित किया, इस पर वे नाराज हो गये हैं। मुझ पर बुरी तरह चिढ़ गये हैं। इसी का वदला वे मुझ से ले रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आज वे मेरा हुक्का पानी बंद करने का प्रस्ताव करेंगे, पर कल अगर मेरे घर कोई मंगल कार्य हुआ तो चुपचाप आकर पंगत में वैठ जाएँगे। मैं इनके वहिष्कार के प्रस्ताव की जरा भी परवाह नहीं करता। मेरी दृष्टि में प्रस्ताव का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं।"

काका ठीक कहते थे और वैसा हुआ भी। वहिष्कार का प्रस्ताव पास हो गया। वहुतों ने काका से संवंध रखना छोड़ भी दिया। पर जिस समय काका ने एक उत्सव करके सवको भोजन के लिए अपने घर निमंत्रित किया, तव सव चुपचाप आ गये। आये नहीं थे सिर्फ मेरे पिताजी। वे इसलिए नहीं आये थे कि उन्हें वहिष्कार का पालन करना था, वल्कि इसलिए कि मेरा काका से संवंध था।

इसके आगे उस दिन इस वहिष्कार को लेकर ही हमारी वातें आगे वढ़ीं। स्मिथवाई का सारा हाल मैंने काका को वताया और आगे मैं क्या करूँ यह प्रश्न उनसे पूछा।

वे बोले, "प्रश्न बड़ा विकट है। चंदू का कहना अक्षरश: सच है। तुम दोनों पर भी मेरा पूर्ण विश्वास है। परन्तु तुम्हें यह अनुमति देने के लिए कि तुम दोनों एक साथ रहो, मुझे बहुत सोचना पड़ रहा है।" ताई की ओर मुड़कर वे बोले, "इस विषय में तुम्हारी क्या राय है?"

ताई पहले हँसी और फिर मेरी ओर मुड़कर बोली, "यह प्रश्न तुम्हारा है या इनका?"

मैंने कहा, "इस विषय में मैंने काका से राय पूछी है। कम-से-कम इस समय तो इनका कोई संबंध नहीं।"

मेरे उद्गार सुनकर काका बीच-बीच में हँसे और बोले, "इस विषय में मैं निरुत्तर हो गया हूँ और इसीलिए मैंने तुम्हारी ताई से पूछा। मैं इनकी राय अपने लिए पूछ रहा हूँ। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं माँग रहा हूँ। मैं इनसे यह पूछना चाहता हूँ कि चंदू की पत्नी यदि उसके घर में नहीं है, तो ऐसी हालत में मथू का उसके घर जाकर रहना उचित होगा या अनुचित?"

एक क्षण-भर रुक कर ताई ने कहा, "इसमें अनुचित कुछ भी नहीं है, पर मेरा एक सुझाव है। मथू उसी के पास रहे, यह मैं भी चाहती हूँ, परन्तु लोगों की बदनामी से बचने के लिए मैं एक उपाय सुझाना चाहती हूँ। वह आपको जँचना चाहिए।"

"ठीक है! ठीक है!" काका बोले, "तुम्हारा सुझाव यदि उचित होगा, तो हम उसे तुरंत अमल में ले आएँगे।"

ताई पुन: हँस कर बोली, "मुझे अपने सुझाव में एक ही कठिनाई मालूम होती है। उसके कारण आपको बड़ा स्वार्थ त्यागना पड़ेगा—बहुत सी असुविधा भी बरदाश्त करनी होगी।"

"मथू की भलाई के लिए मैं हर स्वार्थ-त्याग करूँगा। चाहे जैसी असुविधा सह लूँगा।" काका बोले।

"वह असुविधा इतनी आसान नहीं है।" ताई बोली, "मेरा यह सुझाव है कि लोग बदनाम न करें, इसलिए पहले कुछ दिन मैं भी जाकर

उसके साथ रहूँगी।"

"तो जाओ न! "काका बोले, "तो तुम यह चाहती हो कि मैं यहाँ अकेला पड़ा रहूँ। असुविधाएँ सहता रहूँ। खाने के मामले में मैं कितना नटखट हूँ, यह तुमसे छिपा नहीं। रसोईया द्वारा पकाया गया खाना मेरे हलक के नीचे ही नहीं उतरता।"

"यह मैं जानती हूँ। इसीलिए मैंने कहा था कि आपको बहुत सी असुविधा बरदाश्त करनी होगी। मैं कहती हूँ यदि संभव हो, तो हम दोनों चलें।"

"हाँ यह सुझाव बेशक ठीक है।" काका बोले, "चन्दू भी बहुत दिनों से बुला रहा है। उसकी बात भी रह जायगी और बदनामी भी न होगी। पर एक और क्या बात होगी, यह तुम जानती हो? सरूबाई को घर से निकाल देने की सारी बदनामी का घड़ा इसके कारण हमारे सिर फूटेगा। वह थी, तब तक हम कभी उसके घर रहने नहीं गये और अब उसके चले जाने के बाद ही हम उसके घर जा रहे हैं। सरूबाई के मायके वाले इस बात का सम्बन्ध जोड़े बगैर न रहेंगे। कदाचित लोग भी यही कहेंगे।"

"ठीक है! कहेंगे।" ताई बोली, 'सरूबाई के मायके वाले और दूसरे लोग, चाहें जो कहते रहें। उनके कहने से हम ईश्वर के घर दोषी नहीं माने जाएँगे। हमने कभी यह न कहा कि सरूबाई को घर से निकल जाना चाहिए—न हम कभी यह कहना चाहते हैं। यही नहीं, बल्कि हमारी आन्तरिक इच्छा यही है कि दोनों सुख से रहें। इसी के लिए हमारा मन तड़प रहा है। पर वह जब घर से चली गयी, तो क्या हमें चन्दू के घर जाकर नहीं रहना चाहिए?" इसके सिवा यहाँ जो हुक्का पानी बन्द करने का यह तूफान उठा है, हमारे यहाँ से चले जाने के कारण वह भी थोड़ा शान्त हो जाएगा। जब हमीं यहाँ नहीं रहेंगे तो हुक्का-पानी किसका बन्द करेंगे? वहाँ का सब हाल देखकर उस दरम्यान यदि सरूबाई आ गयी, तो अच्छा ही है। इच्छा हो तो कुछ दिन और रहेंगे। यदि उसे हमारा वहाँ रहना पसंद न होगा, तो गाँव चले आयेंगे।

हमें कोई चन्दूलाल के घर जीवन-भर तो रहना नहीं है। सरूबाई लौट आई और उसके कारण यदि मथू को अलग घर लेकर रहना पड़ा और अलग घर लेकर अकेली रहने की उसकी भी हिम्मत हो गयी, तो हमारी फिर आप ही आप कोई जरूरत न रहेगी।"

काका सोच में पड़ गये। सुझाव तो जँच गया था। पर वह अमल में कैसे लाया जाय, इसी की शायद उन्हें चिन्ता हो रही थी। मुझे ताई के सुझाव की एक-एक बात जँच गयी। चन्दू की इच्छा होते हुए मैं उसके घर न रहूँ, यह मुझे अच्छा न लगता था। चन्दू यही समझता कि मैं इतनी कमजोर हूँ कि लोगों की बदनामी से डरती हूँ। उसे मेरी कमजोरी का सबूत मिल जाता। बदनामी की परवाह न कर मन को जँचने वाली हर बात आज तक मैं करती आई थी और इस समय यदि मैं पीछे हट जाती, तो वह मेरी कमजोरी सिद्ध होती। ताई को इस का अन्दाज होगा और तभी उसने इस योजना का सुझाव दिया।

काका बोले, "ठीक है। मुझे साधक-बाधक बातों को पहिले सोच लेना चाहिए। कुछ दिन बम्बई में जाकर रहने का मतलब यह हुआ कि यहाँ के झमेलों का पहिले इन्तजाम कर देना चाहिए। इस इन्तजाम के लिए दो-चार दिन सहज लग जाएँगे। यहाँ का इन्तजाम पूरा होने पर हम तीनों साथ ही बम्बई चलेंगे।"

काका की यह बात सुनकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। इसमें भी मेरी थोड़ी कमजोरी न थी, यह बात नहीं। दरअसल में मुझे इस विषय में काका से पूछना ही न था, यानी उनकी सलाह या अनुमति लेने की जरूरत न थी। यदि मैं उनसे सिर्फ यह कह देती कि मैं चन्दू के घर रहने वाली हूँ, तो वे इसका जरा भी विरोध न करते। परन्तु अब पूछ लिया, ताई ने सुझाव दिया, काका ने सुझाव मान लिया, इसलिए मु े आगे-पीछे सोचने की कोई जरूरत ही नहीं रही।

हम तीनों जिस समय बम्बई चन्दू के घर जाकर पहुँचे, उस समय वह आश्चर्य-चकित हो गया। गाँव से निकलने से पहिले हम लोगों ने

अपने आगमन की उसे कोई पूर्व-सूचना न दी थी। उसे आश्चर्यचकित कर देने का ताई का उद्देश्य था।

काका ने चन्दू से सब हाल कहा। उन दोनों के आकर रहने से यद्यपि चन्दू को आनन्द हुआ, फिर भी ऐसे विशेष प्रसंग पर उनका आना उसे अच्छा नहीं लगा, ऐसा उसकी कुल बातचीत से मुझे दिखायी दिया। उसकी इच्छा थी कि सिर्फ हम दोनों ही रहें। काका और ताई के आ जाने से उसकी वह इच्छा पूरी नहीं हुई। वह आग के साथ खेलना चाहता था। जान लड़ाकर वह उस आग के खेल को खेलकर देखना चाहता था। मैं उस कठिन परीक्षा से सही सलामत छूट जाती, इसका मुझे विश्वास था।

परन्तु चन्दू के बारे में मुझे विश्वास न होता था। अब पहले के सब प्रसंगों की याद आती, तो मुझे विश्वास हो जाता कि उस कठिन परीक्षा से सही सलामत छूट जाना चन्दू के लिए अलबत्ता बड़ा कठिन हो जाता। और इसीलिए काका और ताई के आने से मुझे समाधान हुआ।

मैंने अपनी नौकरी सँभाली। मैं डेढ़ सौ रुपया माहवार कमा रही हूँ, इस पर ताई को गर्व था। जितनी भी परिचित स्त्रियाँ मिलतीं, उन सबसे वह मेरी मुँह भर कर प्रशंसा करती।

मैं उसकी 'मां' थी लड़की नहीं, यह प्रायः वह भूल गयी थी। अपनी लड़की की कार्यक्षमता और योग्यता पर किसी माँ को जितना अभिमान होता, उतना ही अभिमान उसे मेरे प्रति था। वह व्यवहारिक नाता जो एक बार उल्टा, तो वह हमेशा के लिए ही उलट गया।

फिर भी सगे-सम्बन्धियों में चर्चा शुरू हो गयी थी। काका जिस बात से डर रहे थे, वही सच हो रही थी। लोगों की यही धारणा होने लगी थी कि हम तीनों ने षड्यंत्र रचकर सरूबाई को घर से भगा दिया है। इस अवधि में मेरे पिता जी बम्बई आये थे। स्वयं उन्होंने यह गलतफहमी लोगों में फैला दी थी, ऐसा बाद में हम लोगों ने सुना।

उधर पूना में नाना साहब भी चैन से नहीं बैठे थे। लीला के पत्रों से वहाँ के हाल का पता लगता था। लीला बम्बई आना चाहती थी। यह उसकी तीव्र इच्छा थी। मैं भी यही चाहती थी और ताई भी इसके खिलाफ न थी।

काका ने नाना साहब को पत्र लिखा, परन्तु उन्होंने लीला को बम्बई भेजने से साफ इन्कार कर दिया।

मुझे भय लगने लगा। बार-बार होने वाले छल के कारण लीला बिल्कुल वेकाबू हो गयी थी। मुझे पद-पद पर यह भय लग रहा था कि कि कहीं वह एकदम पूना से भागकर यहाँ न आ जाए।

मैंने जान-बूझ कर लीला को पत्र लिखा और ऐसी कोई नासमझी न करने की चेतावनी दी। मेरे इस पत्र का उसने जो उत्तर दिया, उसे पढ़कर मुझे अत्यन्त दुख हुआ।

उसने लिखा था, "मेरा कष्ट अब असहनीय हो गया है। नाना साहब ने मुझे शाला में भेजना बन्द कर दिया है। फिर भी मैं शाला में जाने के अपने हठ पर कायम हूँ। पिछले दो दिनों से उन्होंने मुझे भूखा रखा है। इसके बावजूद मैं शाला में जा रही हूँ। पड़ोस की एक सहेली के घर जाकर आज-कल मैं खा आती हूँ। एक-दो दिन के भीतर मुझे घर छोड़ना पड़ेगा, ऐसा मुझे लगता है। घर में जब खाने को ही नहीं मिलता, तो घर रहूँ किस लिए? माँ को भी मुझ पर दया आई, पर नाना साहब का हृदय नहीं पसीजा। अब मैं क्या करूँ, काका से यह पूछकर मुझे लिखो। प्राण चलें जाएँ, पर मैं शाला नहीं छोड़ूँगी। मेरी सहेलियाँ स्कूल जाती हैं, पढ़ती हैं और कुछ ही दिनों बाद आने वाली परीक्षा में बैठेंगी। शाला न जाकर इस परीक्षा को देना मुझे दुस्तर हो जायेगा। कम-से-कम मैट्रिक पास हो जाती तो मुझे कोई चिंता न होती। परन्तु कालेज में जाकर बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने की मेरी बड़ी इच्छा है। तुम मेरी चाची हो। तुम विलायत जा कर बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ ले आई हो और मैं, बी० ए० की तो बात छोड़ो, पर कम-से-कम

मैट्रिक भी न होऊँ, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है ? यदि इसी तरह मेरी यहाँ घुटन होती रही, तो तुम्हारी चेतावनी की परवाह न कर यहाँ से भागकर तुम्हारे पास बम्बई चली जाऊँगी।"

पत्र बहुत लम्बा था। उसने वही-वही बातें बार-बार लिखकर अपने मन पर का बोझ उतारने का प्रयत्न किया था।

यह पत्र मैंने काका और ताई को दिखाया। जब चन्दू ने पत्र देखा, तब उसके सारे बदन में जैसे आग लग गयी। वह बोला, "क्या सभी बाप इसी तरह के कसाई होते हैं। इस मथू के बाप को देखो और लीला के बाप के देखो। दोनों एक दूसरे के कान काट रहे हैं। आप शायद नाराज हो जाएँगे, पर मैं जब ऐसी बातें देखता हूँ तब मुझे इस बात की बड़ी खुशी होती है कि मैं बे-बाप का हूँ।"

विषयांतर करने के उद्देश्य से मैंने कहा, "तो अब लीला को क्या उत्तर दिया जाए ? उसे बुलाने का मुझे कोई अधिकार नहीं। एक दृष्टि से मैं उसके लिए बुजुर्ग की तरह हूँ, यह सच है, परन्तु यहाँ जब तक ताई है तब तक मैं अपनी बुजुर्गी की शान नहीं बघार सकती। अब ताई ही बताये कि लीला को क्या करना चाहिए ?"

ताई बोली, "मुझे क्यों संकट में डालती हो ? एक तो नाना साहब मुझ पर पहिले से ही नाराज हैं। फिर यदि उनकी लड़की को फोड़कर उसे यहाँ लाने के लिए कारणीभूत हुई, तब तो वे भड़क ही उठेंगे। उनकी दृष्टि में जैसी लीला, वैसी ही मैं। वह जिस तरह उनकी लड़की है उसी तरह मैं उनकी भतीजी हूँ। हाँ, अगर भतीजा होती, तो बात दूसरी थी। मैं हूँ एक स्त्री। मैं इस विषय में क्या बताऊँ ? मेरे हाथ में क्या अधिकार है ?"

"तुम ठीक कहती हो।" काका बोले, "परन्तु यह यदि किसी पराये की भी लड़की होती तो भी मैं उसे आश्रय दे देता। किसी की भी परवाह न की होती। कायदे से भी न डरता। मैं सोचता हूँ, वह अठारह साल की करीब-करीब हो गयी है। उसे हम लिख दें कि अठारह वर्ष की उम्र

पूरी होने तक धीरज रखे। जरूरत मालूम हो तो उस समय तक के लिए शाला जाना बन्द कर दे। उसकी भरपाई यहाँ हो जाएगी। यहाँ घर में हम उसे पढ़ाएँगे। परन्तु जब तक वह नाबालिग है, तब तक हम कितना भी जोर दिखायें वह सब बेकार होगा। हम पर मुकदमा करके नाना साहब हमारे घर से उसे ले जाएँगे।"

दूसरे ही दिन मैंने इस तरह का पत्र लीला को लिख दिया। इस पत्र का उसने जो उत्तर भेजा उसे पढ़कर मुझे समाधान हुआ। बाप की यंत्रनायें उसे दु:सह हो गयी थीं सही, पर कानून से वह अभी पराधीन है, यह महसूस करके उसने फिलहाल पिता की आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया।

उसे शाला छोड़ देनी पड़ी, इसका मुझे बड़ा दुख हुआ। नाना साहब के इस स्वभाव का क्या मतलब समझा जाय, यही मैं न समझ पाती। वह उसे शाला में जाने से रोकते क्यों हैं? वह शाला जाती, मैट्रिक हो जाती, तो उसका विवाह करना उनके लिए बहुत सरल हो जाता। मैट्रिक पास लड़कियाँ उस जमाने में बहुत थोड़ी थीं। विवाह के बाजार में लीला का मूल्य निश्चित ही बढ़ जाता और उसे जीवन साथी भी अच्छा मिल जाता। फिलहाल वह जितनी पढ़ी थी, उतनी शिक्षा भी उसे अच्छा वर प्राप्त करने के लिये पर्याप्त थी, यह सच है। फिर भी वह मैट्रिक पास हो जाती, तो दूसरी मामूली पढ़ी-लिखी लड़कियों की अपेक्षा अधिक अच्छा वर उसे मिलता, इसमें शक नहीं, क्योंकि उस समय ऐसी परिस्थिति ही थी।

इसी तरह दो महीने गुजर गये और एक दिन चमत्कार हो गया। पहले कोई सूचना न देकर सरूबाई अचानक आ धमकी।

स्वातन्त्र्य

सरूबाई ने आते ही एकदम घर पर अपना अधिकार जमाया। अधिकार जमाया इसलिए कह रही हूँ कि उसने यह आभास ही न होने दिया कि पहले किसी प्रकार का कोई झगड़ा करके गई थी। वह अपने दैनिक कार्य में लग गयी।

उसके इस वर्ताव का मतलव कम-से-कम मैं न समझ पायी। सोचा काका या ताई से पूछूं तो साफ-साफ पूछ भी नहीं सकती थी। चंदू भी आश्चर्य-चकित हो गया था।

मैं घर में हूँ, यह वह प्रत्यक्ष देख रही थी। उसके कुल आवेश को देखकर ऐसा लग रहा था कि आगे चलकर कुछ झगड़ा जरूर होगा। भोजन का समय होते ही हम सब हाथ-मुँह धोकर, जब भोजनालय में पहुँचे, उस समय आँचल खोंसकर सरूबाई आगे बढ़ी और बोली, "सुनते हो ? मैं आ गयी हूँ और मैं अपने घर में कोई भ्रष्टाचार नहीं चाहती, यह आप जानते हैं। मेरी गैरहाजिरी में जो भी हुआ होगा, उसका निराकरण मैं कल करूँगी ही। पर मैं साफ कहे देती हूँ कि अपनी नजरों के सामने मैं यह भ्रष्टाचार नहीं चलने दूँगी।"

उसका वह हाव-भाव देखकर चंदू क्रोध से थर-थर काँपने लगा। सामने थालियाँ लगी हुई थीं, भोजन परोस दिया गया था। यह देखकर कि ऐसे समय लड़ाई का प्रसंग आयेगा, मैं वहुत शर्मिंदा हुई। मैं पूर्ण रूप से यह जानती थी कि चंदू पीछे नहीं हटेगा, और सरूबाई भी पीछे न हटने का निश्चय करके आयी है, यह भी उसकी नजरों में दिख रहा था। काका नित्य की भाँति किसी स्थित-प्रज्ञ जैसे वैठे थे। ताई अल-वत्ता कुछ घवराई हुई-सी दिख रही थी।

चँदू मेरी ओर मुड़कर बोला, "मथू, खड़ी क्यों हो ? आकर अपने पीढ़े पर खाने के लिए बैठो।"

मेरा मन बैठने से इंकार कर रहा था। मैं कुछ निश्चय ही न कर पाती थी। यदि मैं पीढ़े पर बैठ जाऊँ, और सरूबाई मेरा हाथ पकड़ मुझे उठा दे, तो जरूर झगड़ा हो जाएगा, यह मुझे साफ दिख रहा था।

यह देखकर कि मैं नहीं बैठ रही हूँ, चंदू बोला, "मेरा हुक्म है। इस घर का मालिक मैं हूँ। यहाँ मेरी ही सत्ता चलेगी। मेरे मत के अनुसार जो यहाँ नहीं रहना चाहते, फिर वे चाहे काका हों, ताई हों या और भी कोई हों, वे खुशी से इसी क्षण यहाँ से रास्ता नापें।"

सरूबाई भरी हुई तैयार थी ही। अपनी मुद्रा पर निर्भयता झलकाती हुई बोली—"जिस किसी की भी यहाँ जितनी सत्ता होगी, उतनी ही मेरी भी है। मैं कहती हूँ कि मैं इन धर्म-भ्रष्ट लोगों को अपने घर भोजन नहीं करने दूँगी। जिसे जो भ्रष्टाचार करना हो, वह मेरे घर के बाहर जाकर करे। परन्तु इस घर में भ्रष्टाचार नहीं चलेगा, यह मैं साफ जताये देती हूँ।"

चंदू क्रोध से थर-थर काँप रहा था। उसकी आँखों से जैसे चिंगारियाँ उड़ रही थीं। यदि हम लोग वहाँ न होने, तो शायद वह पत्नी को पीट देता।

चंदू मुझे लक्ष्यकर बोला, "चुपचाप जाकर पीढ़े पर बैठ जाओ।"

मैं टस से मस न हुई। यह देखते ही वह जोर से चिल्ला पड़ा।

यह देखकर कि फिर भी मैं नहीं बैठ रही हूँ, वह काका को लक्ष्य करके बोला, "आप बुजुर्ग हैं। अब आप ही फैसला कीजिए। आप मथू के साथ भोजन करते हैं, ताई भी करती हैं, पर आप लोगों को वह अधर्म नहीं मालूम होता। इसे आज अधर्म लग रहा है। इसी तरह पहले भी लगता था। मथू अगर रहेगी, तो मैं इस घर में कदम भी न रखूंगी, ऐसी भीष्म-प्रतिज्ञा करके यह यहाँ से चली गयी थी। मैंने उसे कोई बुलावा न भेजा था। अब जब वह आई, तो मैं कुछ भी न बोला।

मैंने सोचा कि उसे शायद पश्चाताप हुआ होगा । परन्तु यहाँ आकर यह एक दूसरा ही रोब जमा रही है । यह सिद्धान्त का प्रश्न है । यहाँ मैं एक इंच भी पीछे नहीं हटूंगा ।"

काका बोले, "इसमें मैं क्या फैसला करूँ । मथू के साथ भोजन करने को मैं भ्रष्टाचार नहीं मानता । इस विषय में तुम्हारा जो मत हो उसके मुताबिक तुम शौक से करो । आज तक मैंने किसी पर भी यह सख्ती नहीं की है कि कोई मेरे मत के अनुसार ही काम करे ।"

सरूबाई को लक्ष्यकर चंदू बोला, "सुन लिया ? यह जेठे-सयानों की आज्ञा है । ऐसा मैं नहीं कहता, क्योंकि काका वैसा नहीं कहना चाहते, मेरी दृष्टि से वह आज्ञा है । उनके मतों से मैं परिचित हूँ । मैं उनके मतों के अनुसार काम करता आया हूँ । इसलिए नहीं कि वे उनके मत हैं । बल्कि इसलिए कि वे मुझे भी जँचते हैं । मेरा ख्याल है कि तुम्हें किसी ने पढ़ाकर भेजा है । तुम्हारे दिमाग में यह ठूंसा गया है कि यहाँ आकर तुम अपने अधिकार की शान बताओ । परन्तु तुम्हें यह बिल्कुल गलत सलाह दी गयी है । इस मामले में सिर्फ मेरा और तुम्हारा ही संबंध आता है । कोई भी दूसरा आदमी, फिर वे प्रत्यक्ष काका ही क्यों न हों । इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकते । मेरे मतों के अनुसार यदि तुम्हें चलना हो, तब तो ठीक है, वरना इसी क्षण अपने मायके का रास्ता नापो । यही मेरी आखिरी बात है ।" वह मेरी ओर मुड़कर बोला, "हाँ, मथू ! आओ, बैठो पीढ़े पर । खाना ठंडा हो रहा है ।"

काका और ताई पीढ़े पर बैठे । चंदू भी बैठा । मैं हिचकिचा रही थी, पर काका ने मुझे आँख का इशारा किया और मैं भी जाकर पीढ़े पर बैठ गयी ।

शेरनी की तरह बिगड़कर सरूबाई मुझ पर टूट पड़ी । उसने एकदम आकर मेरी बाँह पकड़ ली । उसी समय उसके हाथ पर चंदू के हाथ की जोर की फटकार पड़ी । उसका हाथ छूट गया, पर उसने फिर मेरा हाथ पकड़ लिया । यह देखते ही चंदू ने उसका हाथ पकड़ा और घसी-

टता हुआ उसे नजदीक के कमरे में ले गया और उस कमरे का दरवाजा बंद करके बाहर से कुंडी लगा दी।

हम खाना खाने बैठे। पर कौर हलक से नीचे नहीं उतरता था। सरूबाई भीतर से दरवाजा जोर-जोर से खटखटा रही थी। चंदू उस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। बेचारा रसोईया भी घबराकर थर-थर काँप रहा था। नौकर की तो आगे बढ़ने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

यदि मैं यह कहूँ कि हम लोग भोजन करने का फार्स कर रहे थे, तो वह अधिक उपयुक्त होगा। जैसे-तैसे दो कौर खाना खाकर हम उठे। हाथ-मुँह धोकर हम हाल में आये तब चंदू ने जाकर उस कमरे की कुंडी खोल दी। सरूबाई जो उस कमरे से निकली तो दौड़ती हुई सीधी हाल में आ पहुँची। ऐसा लगा जैसे उसके सिर पर भूत सवार हो गया था। उसने एकदम मेरा हाथ पकड़ा और मुझे धक्के देकर घर से बाहर निकालने की कोशिश करने लगी। यह देख कर कि मैं चुपचाप बाहर जा रही हूँ, चंदू आगे बढ़ा और कंधा पकड़ कर सरूबाई को पीछे खींचा।

इस तरस खींचे जाते ही वह नीचे गिर पड़ी— नीचे गिर पड़ी कहने की अपेक्षा यदि यह कहूँ कि वह जान-बूझ कर ही गिर पड़ी, तो अधिक ठीक होगा। और उसी तरह पड़ी हुई वहीं धाड़ मार कर रोने लगी।

क्या करना चाहिए, यह मुझे सूझता न था। काका भी बिल्कुल स्तम्भित हो गए थे।

पर ताई को बेशक इस समय बड़े जोर का आवेश आया। जहाँ सरूबाई पड़ी हुई थी, वहाँ वह गयी और उसने उसे उठाकर जबरदस्ती बिठाया। किसी भी तरह उठकर नहीं बैठ रही थी। उसे जबरदस्ती से उठाकर बैठाती, तो वह पुनः जमीन पर अपना अंग डाल देती। परन्तु ताई ने जैसे दृढ़ निश्चय ही कर लिया था। जितनी बार वह गिरने को करती उतनी बार ताई उसे पुनः जबरदस्ती से उठा कर बैठा देती थी। यह क्रम लगातार जारी था। उसे देख कर चंदू बोला— "उसे शौक से रोने-चिल्लाने दीजिए। मैं बिल्कुल माफ नहीं करना चाहता। मुझे यह

बीज-जड़ से ही नष्ट कर देना चाहिए। मथू यहीं रहेगी, यह निश्चित ही है। उसे नौकरी मिल गयी है और मेरे यहाँ रहते हुए वह कहीं अलग घर लेकर रहे, यह मैं कभी पसंद नहीं करूँगा। जो कुछ होना हो, वह इसी समय हो जाने दीजिए। वह अगर इस घर में रहना चाहती है तो उसे मथू के शासन में रहना होगा। यदि उसे मंजूर नहीं, तो उसे इसी क्षरण इस घर से चली जाना चाहिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

सरूबाई सिसकियों के बीच बोली—"मैं क्यों जाऊँ? देव और धर्म की साक्षी से मेरा तुम्हारे साथ विवाह हुआ है। तुम यदि मेरा हाथ पकड़ कर भी मुझे बाहर खदेरना चाहोगे, फिर भी मैं नहीं जाऊँगी। इस तरह यहीं डटी रहूँगी। यह मथू जब तक इस घर से बाहर नहीं चली जाती, तब तक मैं एक बूंद पानी भी नहीं पिऊँगी। अगर हो हिम्मत तो निकालो मुझे घर से बाहर। मैं भी देखती हूँ।" ऐसा कह कर वह पलथी मार कर बैठ गयी।

उसकी वह सूरत देखकर रोऊँ या हँसू, यही मैं नहीं समझ पाती थी। चंदू का यह अंदाज कि वह पढ़ाकर भेजी गयी थी, मुझे ठीक जँचा। मैंने लीला के पत्र में यह लिखा था कि मुझे नौकरी मिल गयी है और मैं चंदू के घर ही रहूँगी, यह भी मैंने लिखा था। सरूबाई के पूना में ही होने के कारण यह समाचार उसके कानों तक पहुँचा होगा। शायद स्वयं लीला ने ही अभिमान से यह बात उसे बतायी होगी और इस कारण ही यह सारा कांड उपस्थित हुआ, यह शंका मेरे मन को छू गई।

अब आगे क्या किया जाए, इस विषय में हम सभी हताश हो गये थे। चंदू उसे घसीटता हुआ फिर उसी कमरे में ले गया और बाहर से कमरे की कुंडी लगा दी।

वह जोर-जोर से रोने लगी। यह रुदन बड़ा भयानक था। वह इस तरह फूट-फूट कर रो रही थी जैसे घर में कोई मर गया हो।

उसका वह रोना-चिल्लाना सुनकर पड़ोस के फ्लैट के लोग भी पूछ-ताछ करने के लिए आए। उन्हें कुछ भी बहाना बनाकर चंदू ने भगा

दिया। जिस समय चंदू ने उन लोगों से कहा कि उसे हिस्टीरिया का दौरा आया है, उस समय मुझे उसकी सूझ बड़ी सराहनीय मालूम हुई। मैं सोचती हूँ, चंदू ने यह पहिले से ही सोच कर रख लिया होगा कि अगर पड़ोसी उसके रोने का कारण पूछेंगे तो उन्हें क्या जबाव दिया जायेगा। इतनी जल्दी उसने पड़ोसियों को उत्तर दिया था।

ऐसे कोलाहल के बीच वहाँ चुप बैठे रहना कम-से-कम मुझे तो बड़ा अजीब-सा लगा। काका भी अस्वस्थ हो गए थे। रसोईया थालियाँ लगा-कर इधर-उधर टहल रहा था। उस पर बरसता हुआ चंदू बोला—"जाओ, और खा लो न ? नौकर को भी परोस दो। क्या तुम्हें दिखता नहीं कि वह नहीं खायेगी।"

बेचारा रसोईया चुपचाप चल दिया। हम मौन बैठे हुए थे। दरवाजे का खटखटाना एवं रोना-चिल्लाना लगातार जारी था। यह देख कर काका बोले, "अब क्या करोगे, चंदू ? यह कांड तो चरम सीमा को पहुँच गया मालूम होता है। मैं सोचता हूँ कि हम लोगों का कल ही लौट जाना अच्छा। कांड को अब और अधिक बढ़ाना ठीक नहीं। व्यर्थ ही लोगों में बदनामी होगी। मधू से भी मेरा यही कहना है। फिलहाल उसे वीमन होस्टल में जाकर रहना चाहिए और कुछ दिनों के बाद वह चाहे तो कहीं अलग मकान लेकर रह सकती है। लोगों में यह बदनामी न होनी चाहिए कि उसने तुम्हारी गृहस्थी में आग लगाई।"

चंदू चिढ़ कर बोला, "क्या यह आपकी आज्ञा है ?"

उस परिस्थिति में भी काका के चेहरे पर हँसी की रेखा चमक उठी। वे बोले—"मैंने कभी तुम्हें आज्ञा नहीं दी और आज भी नहीं दूँगा। यह सिर्फ मेरी सलाह है। जँचे तो मानो न जँचे तो मत मानो। परन्तु मधू के बारे में वह बात नहीं। उसे मैं आज्ञा देता हूँ।"

क्षण-भर के लिये सभी चुप रहे। यह देखकर कि कोई कुछ नहीं बोल रहा है, मैंने कहा—"मुझे लगता है कि अभी ही होस्टल में चली जाऊँ. यह अच्छा होगा। वहाँ की लेडी सुपरिटेंडेंट से मेरा काफी परि-

चंय है। इस रात के समय भी वे मेरा इन्तजाम कर देंगी।"

चंदू आवेश से बोला—"नहीं ! मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा। काका भले ही तुम्हें यहाँ रहने की आज्ञा न दे, पर मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हें यहीं रहना चाहिए। यह मेरी इज्जत का सवाल है। यदि इस समय मैं पीछे हट गया, तो भविष्य में मेरा सारा जीवन दुःखी हो जाएगा। यह मेरे सारे भविष्य का प्रश्न है। आज ही इस बात का अंतिम निर्णय हो जाना चाहिए।" ऐसा कह कर उसने दरवाजे की कुंडी खोली और सरू-बाई का हाथ पकड़कर वह उसे घसीटता हुआ हाल में लाया।

उसे काका के सामने खड़ा करके वह बोला—"तुम्हें जो कहना हो इनसे कहो। ये मेरे भाई नहीं—पिता हैं। इन्होंने मुझे छोटे से बड़ा किया है और यह जैसी आज्ञा देते हैं, उसी के अनुसार मैं आज तक काम करता आया हूँ और भविष्य में भी वही करूँगा। मेरी तरह तुम्हें भी उनकी आज्ञा का पालन करना होगा। काका, अब आप ही जो कहना हो इससे कहिए।" ऐसा काका से कह कर, उसने अपनी पत्नी का हाथ छोड़ दिया।

काका क्षण-भर के लिए स्तब्ध रहे। सरूबाई का रोना भी बन्द हो गया था। ताई बिल्कुल एक तरफ जाकर कोने में रखी एक कुर्सी पर बैठी थी। काका बिल्कुल धीर गम्भीर वृत्ति से बोले, "सरू मेरी बात सुनो। तुम्हारे पिता जैसा ही तुम्हारे लिए मैं हूँ। माँ के स्थान में मेरी पत्नी है, मथू को अपनी बहिन समझो। ये रिश्ते हमेशा के लिए जुड़ गये हैं, ये अब टूट नहीं सकते। तुम कितना भी हठ करो, पर चन्दू पीछे नहीं हटेगा। तुम्हें पाठ पढ़ाने वाले लोग बेवकूफ हैं। वे हम लोगों का स्वभाव नहीं जानते। हम सब लोग बड़े कट्टर हैं। प्राण चले जाएँ पर जिस बात पर अड़ जाते हैं, उसे नहीं छोड़ते। यही हम सब लोगों लोगों की टेक है। इस तरह आपे से बाहर होने में तुम्हारा कोई फायदा नहीं। अभी सारी जिन्दगी तुम्हारे सामने पड़ी है। इस जीवन को आनंद से नहीं, तो कम-से-कम समाधान से बिताना चाहिए, यह तुम नहीं समझती

ऐसा मैं कभी नहीं कहूँगा। आपे से बाहर होने में वह समाधान और सुख तुम्हें कभी न मिलेगा। चन्दू ने बिल्कुल दृढ़ निश्चय कर लिया है। तब इस पर तुम क्या करोगी, इसके बारे में ठीक से सोच लो और कल तक मुझे बता देना। इस समय तुम मुझे कोई उत्तर न दो।"

"मैं अभी उत्तर दूँगी।" सरूबाई बोली, "आप मेरे पिता के स्थान में हैं न? इसलिए जिस तरह मैं पिता से बातें करती हूँ, उसी तरह मैं आप से भी बातें करूँगी। मैं भी कट्टर ही हूँ। परन्तु मेरी कट्टरता जिन कारणों के लिए है, वे कारण बेशक भिन्न हैं। आप जिस तरह अपने मतों की धाक जमाना चाहते हैं, उसी तरह मेरे मत भी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। प्राण चले जाएँ, पर मैं भी पीछे नहीं हटूँगी। मुझे सब बातों का पता चल गया है। वे मथू को यहाँ क्यों रखना चाहते हैं, यह भी मैं जानती हूँ।"

"खबरदार! यदि इस तरह वाहियात बात की तो!" चन्दू गरज उठा, "जबान उखाड़ कर फेंक दूँगा, याद रखो! काका की भी परवाह न करूँगा।"

"हाँ, तो फिर उखाड़ ही लो न!" कहकर जीभ निकाल कर वह उसके सामने खड़ी हो गयी।

किसी दूसरे के घर यदि ऐसा कांड होता तो मुझे हंसी ही आ जाती, उसका आवेश इतना मूर्खता-पूर्ण था। पर कुल मिलाकर यह समस्या विकट थी, इसमें संदेह नहीं।

मुझे भय लगने लगा कि चन्दू कहीं कोई नादानी न कर बैठे। परन्तु जब वह जोर-जोर से हँसने लगा, तब मेरा जी कुछ ठंडा हुआ।

वह बोला, "यह न समझना कि ऐसा जोश देखकर मैं घबरा जाऊँगा। तुम्हें घर से बाहर निकालने के लिए यदि मुझे कानून की शरण भी लेनी पड़ी तो भी मैं पीछे न हटूँगा, यह अच्छी तरह ध्यान में रखना।"

"और मैं भी कानून की शरण लूँगी!" सरूबाई बोली, "मेरे पिता जी भी कानून जानते हैं। तुम्हारी सब बातें नाना साहब ने मुझ से कह दी हैं।"

मेरे मस्तक में साफ प्रकाश पड़ा।

वह आगे बोली, "नाना साहब से ही पता चला कि मुझे मायके भगाकर तुम मथू के साथ पुनर्विवाह करना चाहते हो।"

यह देखकर कि चन्दू का क्रोध अब भड़क उठेगा, काका बोले, "सरू, इधर आओ। मेरे सामने इस कुर्सी पर बैठो।"

क्रोध से भरी हुई वह कुर्सी पर पलथी मार कर बैठ गयी।

काका बोले, 'नाना साहब और मथू के सम्बन्ध किस प्रकार के हैं, यह तुम नहीं जानती। तुम यदि मुझ पर विश्वास करती हो तो मैं सारा बताता हूँ। बोलो, सुनने को तैयार हो?"

सरूबाई बोली, "आप कुछ कहें, वह मुझे सच ही नहीं लगेगा। नाना साहब भले ही दुष्ट हों, बिल्कुल अधम हों, राक्षस हों, अन्य बातों में वे चाहे जितने झूठ बोलने वाले हों, पर उन्होंने इस विषय में मुझ से जो कहा है, वह मुझे जँच गया है। वह मुझे सच लग रहा है। उनके स्वभाव से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। उनके मतों को मैं जानती हूँ। इन्होंने स्वयं अपने मुँह से यह बात मुझसे कही है। जिस दिन ये मेम साहब विलायत से आई थीं, उसी दिन इन्होंने उसके बारे में बड़ी अजीब-अजीब बातें मुझसे कही थीं। यह आप नहीं जानते।"

"क्यों चन्दू, क्या यह सच है?" काका ने चन्दू से पूछा, "तुमने इस से क्या कहा था?"

चन्दू ने गर्दन झुका दी। उसके मुँह से शब्द नहीं निकलता था। मुझे भी लगा कि नासमझी से उसने अपनी पत्नी से जरूर कुछ ऊँट-पटाँग कह दिया होगा। जिस दिन मैं आई थी उस दिन दोनों का झगड़ा हुआ होगा, यह शंका मुझे आई थी, परन्तु मैंने यह नहीं सोचा था कि उस झगड़े में वह कोई नासमझी कर बैठा होगा।

काका बोले, "समझ गया। यह तुम्हारी ही गलती है, चन्दू! अपनी भूल का प्रायश्चित तुम्हें ही भोगना चाहिए। इसके सिवा कोई दूसरा चारा नहीं। अब इसे समझाना मेरी शक्ति से बाहर है।"

चन्दू चुपचाप जाकर कुर्सी पर बैठ गया। दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढांक लिया।

सरूबाई बोली, "यदि नाना साहब चांडाल हों, तो इन्हें आप क्या कहेंगे ? ये न बताना चाहते हों, तो मैं ही बताये देती हूँ। सुनिये, इन्होंने मुझ से बिल्कुल साफ-साफ कहा था कि ये मथू से पुर्नविवाह करना चाहते थे। पर वह राजी नहीं हुई।"

सर्वत्र सन्नाटा खिच गया। कोई कुछ न बोलता था।

चन्दू ने कपड़े पहिने और बाहर चल दिया। सरूबाई कमरे में गई और दरवाजा वन्द करके भीतर से कुंडी लगा ली। हम बहुत देर तक एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए चुप बैठे थे।

रात्रि के बारह बज गये। फिर भी चन्दू नहीं आया। मुझे डर लगने लगा।

क़रीब साढ़े बारह बजे वह लौटकर आया और कपड़े उतार कर बिना किसी से बोले एक कोच पर सो गया।

यह देखकर कि वह लौट आया है, मेरा जी ठंडा हुआ। फिर हम भी रोशनी बुझाकर अपने-अपने बिस्तर पर जाकर सो गये।

सनसनी

दूसरे दिन सुवह हम उठ गये थे, फिर भी सरूबाई ने अपना कमरा नहीं खोला था। वह सोचकर जैसे कुछ भी नहीं हुआ है, सब लोग अपने-अपने नित्य के काम लग गये थे।

चाय की प्याली हाथ में लेकर रसोइये ने दरवाजा ख़टखटाया, पर उस कमरे के भीतर से कोई उत्तर न आया। वह सिर्फ ताई की ओर देखता हुआ खड़ा रहा। ताई ने सरूबाई से दरवाजा खोलने के लिए बार-बार कहा, पर भीतर से कोई उत्तर न आया।

मेरे छक्के छूट गये। कहीं वह कुछ ऊँट-पटाँग न कर बैठी हो, ऐसी शंका मेरे मन को छू गयी। मैंने ताई की ओर देखा और मेरे उस तरह देखने का मतलब वह समझ गयी।

ताई जब बार-बार दरवाजा खटखटाने लगी तब चन्दू बोला—"मरने दो उसे। क्यों दरवाजा खटखटा रही हो ?"

कोई उत्तर न देकर ताई लगातार दरवाजा खटखटा रही थी और उसे पुकार रही थी।

आखिर वह भीतर से जोर से चिल्ला पड़ी—"मैं कोई मर नहीं गयी हूँ। इतनी घबराओ नहीं। खासी जिन्दी हूँ मैं, पर इतना बता देना चाहती हूँ कि जब तक मथू घर से बाहर नहीं चली जाती, अब तक मैं बाहर न आऊँगी। मुझे तंग मत करो।"

ताई बड़ी अजीजी से बोली, "यह अच्छा नहीं है, सरूबाई ! भीतर कब तक बैठी रहोगी ? हाथ-मुँह भी धोओगी या नहीं ? खोलो दरवाजा।"

फिर उत्तर आना बन्द हो गया। ताई लगातार गिड़गिड़ा कर बोल रही थी। चन्दू उसे डाँट रहा था। काका अलबत्ता हॉल में बिलकुल गुमसुम बैठे थे।

मैं हॉल में गयी और काका से बोली, "इस तरह यह कब तक चलता रहेगा ? मुझसे यह देखा नहीं जाता। आप लोगों को रहना हो तो आप रहें। मैंने जाने का निश्चय कर लिया है।

काका बोले—"यही मैं भी तुमसे कहने वाला था। वह ज़िद्द पर आ गयी है। तुमने जो तय किया है, वह ठीक है।"

मैंने धीरे-से नौकर को इशारा किया और बिल्कुल दबे पाँव जीने से नीचे उतरी।

वीमन होस्टल की लेडी सुपरिटेन्डेन्ट ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। मैं ऐसी पहुँची थी, जैसे बिल्कुल कहीं बाहर से सफर करके आई हूँ। इसलिए चन्दू के घर जो काण्ड हुआ था, उसके विषय में उसके मन में कोई शक पैदा न हुआ। नौकर जब लौटने लगा तब मैंने उससे कहा कि काका से कह देना कि मेरा सब प्रबन्ध ठीक हो गया है।

उस दिन से मैं अपनी नौकरी पर हाजिर हो गयी। शाला में पढ़ाते समय मेरा चित्त ठिकाने पर न था। वह पहिला दिन होने के कारण चित्त को इस तरह व्यग्र रखना ठीक न था, यह धीरे-धीरे मेरे ध्यान में आया। जी कड़ा करके मैं अपने काम में ठीक से लग गई। हैड मिस्ट्रेस के नाते मुझे पढ़ाने का काम कम था। दूसरे काम ही अधिक थे। आफिस वर्क भी काफी था। जब मैंने इन कार्यों में मन लगाया, तब मुझे अन्य बातें भूल जाना कठिन न हुआ।

विश्रांति की छुट्टी में स्मिथबाई मुझ से मिलने आईं। उन्होंने मुझे मेरे सारे काम की रूप-रेखा ठीक से विस्तारपूर्वक समझा दी। इससे पहिले मैंने शिक्षिका का काम नहीं किया था और ऑसिफ वर्क की तो मुझे कोई कल्पना ही न थी।

स्वयं विद्यार्थी-अवस्था में रहने के कारण शिक्षिका के काम की कल्पना

करना मेरे लिए असम्भव न हुआ, परन्तु ऑफिस वर्क में तो अपनी बुद्धि से ही काम लेना पड़ा। मेरे पहिले जो हैडमिस्ट्रेस थीं, वे बहुत दिन पहिले नौकरी छोड़कर चली गयी थीं, इसलिए बहुत-सा पत्र-व्यवहार इकट्ठा हो गया था। उसे निपटाना मेरा पहिला काम था। उस काम को करते हुए चन्दू के घर का काण्ड मैं आप-ही-आप भूल गयी।

शाला बंद होने से पहिले आखिरी घंटे में मुझे एक कक्षा को पढ़ाना था। उस कक्षा को पढ़ाकर मैं होस्टल में आई।

घर का आसरा प्राप्त होते ही पुनः सारी बातें नजरों के सामने भूल गयीं। मेरा मन चन्दू के घर की ओर खिंच रहा था। मेरे आने के बाद चन्दू ने क्या किया होगा, सरूबाई कमरे से बाहर निकली होगी या नहीं, काका अभी वहाँ होंगे या ताई को साथ लेकर गाँव चल दिये होंगे, आदि बातें जानने के लिए मेरा मन बेचैन हो उठा था। एक बार लगा कि स्वयं ही जाकर देख आऊँ। परन्तु जो काण्ड हुआ था, उसके कारण वहाँ फिर से जाना मुझे उचित न लगा।

मैं विचारों में खोयी बैठी थी। इसी समय चपरासी ने आकर मुझे चन्दू के आगमन की सूचना दी। होस्टल के नियमानुसार पुरुषों को होस्टल के भीतर आने की मनाही थी। इसलिए मुझे चन्दू से मिलने होस्टल से बाहर जाना पड़ा।

चन्दू इन नियमों को जानता था। वह बोला—"मेरे साथ घूमने कहीं बाहर चलोगी। मुझे तुम से बहुत बातें करनी हैं, इसलिए कहीं बाहर चलकर बैठें जिससे मैं तुमसे बहुत-सी बातें कर सकूँ।"

मैंने पूछा, "काका और ताई कहाँ हैं ? क्या कर रहे हैं ?"

चन्दू बोला—वे घर में ही हैं। कहीं गये नहीं। तुम्हारे चली जाने के बाद सब ठीक हो गया है। सब काम सुचारु रूप से हो रहे हैं। उसने अपनी चाल खेली। वह सफल हो गयी। उसने तुम्हें घर से निकाल दिया। पर इसमें मेरी हार हुई है। काका का समाधान हुआ है, इसमें शक नहीं है। पर मैं भीतर-ही-भीतर जलकर खाक हो रहा हूँ। चलो,

हम कहीं बाहर चलकर बातें करें।"

मैं सुपरिंटेन्डेन्ट से अनुमति ले आई। कहाँ जाकर बातें करेंगे, इसकी मुझे कोई कल्पना न थी। चन्दू बोला—"हम अपोलो बंदर चलें। वहाँ हमारी बातचीत में कोई रुकावट न होगी।"

एक विक्टोरिया गाड़ी करके हम दोनों अपोलो बंदर पहुँचे। गाड़ी में हमने कोई बातें न की थीं। कटघरे पर बैठते ही चन्दू बोला—"अब साफ-साफ बता दो। मेरी अक्ल बिल्कुल काम नहीं कर रही है। मस्तक भड़क उठा है, तुम जो कहोगी, उसे मैं मानूंगा। वचन देता हूँ कि तुम्हारी आज्ञा के बाहर मैं नहीं जाऊँगा।"

मुझ पर बड़ी जिम्मेदारी आ गयी। मैंने कहा—"इस विषय में काका की क्या राय है?"

"इस विषय से काका ने अपने आपको मुक्त कर लिया है।" चन्दू जोला—"उन्होंने मुझ से साफ कह दिया कि मैं जो चाहूँ, सो करूँ।"

मैं थोड़ी देर चुप रही। मैंने सब पहलुओं से सोच कर देखा और अन्त में यही कहा कि इस विषय में आपे से बाहर होना ठीक नहीं।

मैंने कहा—"सुनो चन्दू। तुमने सारी जिम्मेदारी मुझ पर रख दी है, इसलिए मैं ऐसी कोई बात न कहूँगी कि जिससे तुम्हें फिलहाल खुशी हो जाए। मैं यह पहिले से ही जानती थी और इसीलिए मैंने अपने लिए अलग एक स्वतन्त्र घर लेकर रहने का विचार किया था। इस क्षण भी मैं वही सोचती हूँ। कुछ दिनों तक मैं होस्टल में ही रहूँगी। तब तक क्या होता है, यह देखूंगी और फिर एक स्वतन्त्र मकान लेने का तय करूँगी।"

चंदू बहुत देर तक मौन रहा। उसका चेहरा बिल्कुल उदास हो गया था। वह जानता था कि मैं ऐसा ही कुछ कहूँगी। परन्तु शायद वह इस उद्देश्य से आया था कि किसी भी तरह वह मेरे मन को अनुकूल कर ले। उसकी मुद्रा से साफ दिख रहा था कि मेरे उत्तर से वह निराश हो गया है।

कुछ देर के बाद बोला—"होस्टल में रहने की अपेक्षा यदि तुम अलग मकान लेकर रहो, तो अच्छा होगा। यदि तुम होस्टल में रहोगी, तो मैं तुम से मिल न सकूंगा। रोज होस्टल में आकर तुम से मिलना उचित न होगा—किसी संकेत स्थल पर भी रोज मिलना ठीक न होगा। तुम अब मास्टरनी हो गयी हो। तुम्हारी छात्रायें तुम्हें घेरे रहेंगी। उनकी तुम पर नजर रहेगी और यदि उन्होंने देख लिया कि तुम रोज किसी पुरुष से नियम पूर्वक मिलती हो, तो यह एक चर्चा का विषय हो जाएगा और तुम्हारी वदनामी हुए विना न रहेगी। इसलिए यदि तुम अपने लिए अलग एक स्वतन्त्र घर ले लोगी, तो मैं तुम से कम-से-कम निःसंकोच आकर रोज मिल सकूँगा।"

"और यही मैं नहीं चाहती।" मैंने कहा—"कुछ दिनों तक हम एक दूसरे से न मिलें, यही अच्छा है। आखिर मिलने से भी क्या होगा? इस भेंट के कारण जो वदनामी होगी उसका असर तुम्हारी गृहस्थी पर हुए विना न रहेगा। सरूवाई हमेशा तुम पर कड़ी नजर रखेगी। यह वात सच है कि हमारी मुलाकातें मामूली तौर पर ही होंगी, पर इसका परिणाम वेशक वड़ा भयंकर होगा।।

चंदू की मुद्रा से मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरी वात उसे जँची नहीं। जव मैंने देखा कि मुंह वनाकर वह चुप ही है, तब मैंने कहा, "यह गलती तुम्हारी है। जिस लड़की से तुम्हें विवाह करना था, उसे ठीक से न देखकर ही तुमने उससे विवाह कर लिया। यही तुमने भूल की है। यह मामला सारे जीवन का है। इस विषय में इस प्रकार आपे से वाहर होने से काम नहीं चलता। परिस्थिति से नाराज होकर, जो लड़की आई उसे ही तुमने पसंद कर लिया, ऐसा जो तुम ने कहा, उसी के ये परिणाम हैं। इस भूल के लिए तुम्हीं जिम्मेदार हो, और कोई नहीं। इस ना समझी के फल तुम्हें भोगने ही चाहिए।" मैंने आगे कहा—"दूसरी भूल उस दिन की, जिस दिन मैं पहली वार तुम्हारे घर आई थी। उस से वह बात कहने की क्या जरूरत थी? उस दिन उसने भले ही कोई दुष्टता

की हो, पर तुम्हें किसी पुरानी बात को उस से कहने की क्या जरूरत थी ? इससे अधिक नासमझी की बात कोई नहीं हो सकती ? ऐसी बात सुनकर वह क्यों न चिढ़ती ? जब तुमने उससे साफ-साफ ही यह कह दिया कि तुम मुझ से पुनर्विवाह करना चाहते थे, तो उसके हृदय में मत्सर क्यों न पैदा होता ? नाना साहब ने जो उससे कहा, वह तो बाद की बात है, पर यदि तुम पहिले वैसा न कहते, तो नाना साहब की की बात का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। बोलो, क्या तुम ऐसा नहीं सोचते ?"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर वह बोला—"हाँ, यह गलती तो जरूर हो गयी है। मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि मैंने वह बात उससे कैसे कह दी ? पर अब क्या फायदा ? हाथ से तीर निकल चुका है। उसके फल मुझे भोगने ही होंगे।"

मैंने कहा—"अब इस विषय को फिलहाल यहीं पर खत्म कर के तुम अपनी गृहस्थी में लग जाओ। जान-बूझकर मेरी पूछताछ करने कभी मत आना। यदि मेरा पता बदल जाएगा तो पत्र द्वारा मैं तुम्हें सूचित कर दूँगी। तुम्हारी जरूरत पड़ी, तो पत्र लिखकर मैं तुम्हें स्वयं बुला लूँगी। जब तक मेरा कोई पत्र नहीं मिलेगा, तब तक यही समझना कि होस्टल में मैं कुशल-पूर्वक हूँ।"

इसके बाद वह कुछ न बोला। कुछ देर और वहाँ बैठकर, हमने फिर एक गाड़ी की और वहाँ से निकल पड़े। उसने मुझे होस्टल में छोड़ दिया और स्वयं अपने घर चला गया।

मैं दूसरे दिन से अपने नित्य के कार्य-क्रम में खो गयी।

बेचारी लीला

दूसरे ही दिन ताई मुझ से मिलने आई। चंदू ने कह दिया था कि होस्टल में आने की पुरुषों को मनाही है, इसलिए काका नहीं आये।

ताई एक-दो दिनों के बाद गाँव चली जाने वाली थी। मेरे आजाने के बाद घर में सब काम ठीक से शुरू हो गये थे। अब झगड़े-वगड़े नहीं होते थे। मेरे वहाँ रहने से घर भ्रष्ट हो गया था। इसलिए सरूबाई 'शान्त' करने के लिए कह रही थी। परन्तु अभी तक कोई धार्मिक विधियाँ नहीं हुई थीं। ताई का ख्याल था कि उन दोनों के चले जाने के बाद शायद वह होम-हवन आदि करा कर अपना घर शुद्ध करेगी।

ताई बोली—"मैं एक-दो दिन में कोंकरण चली जाऊँगी। इसलिए 'वे' तुम से मिलने तुम्हारी शाला में आयेंगे। सभी बातें कुछ ऐसी अजीब सी हो गयी हैं कि उनके कारण किसी का भी मन ठिकाने पर नहीं। चंदू ने एक बड़ी नादानी कर डाली। जो बात सिवा उसके और किसी को मालूम न थी, अपनी पत्नी से कह कर, उसने वह सर्वमुखी कर डाली है। इसका फल उसे भोगना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि सरूबाई अब अवश्य उस बात का डंका पीटेगी और उसके कारण तुम दोनों में धीरे-धीरे अलगाव होता जाएगा, इससे मुझे बड़ी खुशी होगी। बदनामी बड़ी बुरी बात है। मन की निर्मलता कोई नहीं देखता। हर व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से दुनिया को देखता है। पाप को सब पहिले देखते हैं। जहाँ पाप नहीं होता, ऐसे स्थान से भी पाप को ढूंढ़ निकालने की लोगों की प्रवृत्ति होती है। इस मामले में तो तुम्हारे शब्द ही सबूत हैं। तुम्हारे शब्द कहने की अपेक्षा चंदू के शब्द ही कहना अधिक ठीक होगा।

उसकी पत्नी ने यदि यह बात फैला दी, और लोगों ने चंदू से उसके बारे में पूछा, तो उससे वह बात काटते भी न बनेगी। न वह "हाँ" कह सकेगा, और न इंकार कर सकेगा। उसने अपने हाथ से अपनी गर्दन फँसा दी है। उसकी गृहस्थी सुख की न होगी, यह मुझे साफ दिख ही रहा है। परन्तु जो बात हो गयी है, उसके लिए अब क्या उपाय? जो प्रसंग उपस्थित हो गया है, उसके आगे गर्दन झुकाये विना अब कोई चारा नहीं।"

मैं इस पर क्या कह सकती थी? चंदू से मैंने भी यही कहा था। चंदू से मेरी जो वातें हुई थीं, उनके वारे में चंदू ने ताई से कुछ न कहा। मैंने वह सारी वात-चीत ताई को कह सुनाई। तव उसे भी वड़ी खुशी हुई। वह भी मुझसे यही कहने के लिए जानवूझकर आई थी। इससे आगे चंदू और मैं एक दूसरे से न मिलें, यही उसकी उसकी भी इच्छा थी। पर जव उसने देखा कि इसका इंतजाम मैं पहिले ही कर चुकी हूँ, तो उसे वहुत आनन्द हुआ।

होस्टल की लेडी सुपरिंटेंडेंट से मैंने ताई का परिचय करा दिया। होस्टल का सारा प्रबंध उसने देखा। सुपरिंटेंडेंट ने ताई से उस दिन होस्टल में ही भोजन करने का आग्रह किया। उनका उद्देश्य सिर्फ यही था कि ताई को यह मालूम हो जाए कि होस्टल में भोजन का कैसा प्रवंध है। मैं भी यही चाहती थी कि ताई उस प्रवन्ध को प्रत्यक्ष रूप से देख ले।

भोजन के वाद ताई चल दी। वह रात मैंने विचारों में खोकर काटी। किसी भी तरह मुझे नींद ही नहीं आती थी। मस्तक जैसे विल्कुल भन्ना उठा था। चंदू ने अपनी नासमझी से सरूबाई से जो बात कही थी उसके कारण मेरा मन वड़ा उद्विग्न हो गया था। इस समय मैं उस से इतनी चिढ़ उठी थी कि पहिले के नाते का ख्याल रखने की सभ्यता यदि मुझ में न होती, तो मैं भविष्य में उसका मुंह तक न देखती। भावना का शिकार होकर उसने मुझसे कुछ पूछा था, परन्तु यह देखकर

भी कि उस प्रश्न के कारण मेरे मन पर कितना आघात हुआ था, वह उसी बात को अपनी पत्नी से भी कह दे, इसका मुझे बड़ा दुख हुआ। मेरी वृत्ति संसारी न थी, यह वह पूरी तरह जानता था। समाज-सेवा के लिए अपना सारा जीवन अर्पण कर देने की मेरी प्रतिज्ञा उसे मालूम थी। क्या वह मुझसे कोई दूसरा नाता नहीं लगा सकता था? यदि वह यह कह देता कि मैं उसकी मानी हुई बहिन हूँ, तब भी जो बात वह चाहता था, वह हो सकती थी। बहिन के लिए भाई क्या नहीं करता? इसके सिवा ताई से मेरा नाता था ही। सिर्फ उस नाते का उल्लेख ही काफी हो जाता। यह सब होते हुए भी उसने वही एक खास बात सरू-बाई से कही। इसे मूर्खता के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

मेरा भाग्य क्या मुझे कहीं भी सुख और समाधान में नहीं रहने देगा? मैं विलायत में ही सुखी थी। वहाँ कम-से-कम इस प्रकार की करतूतें न थीं। धर्म और अधर्म के प्रश्न वहाँ कोई न निकालता। मनुष्यता के व्यवहार पर सारे काम होते। मैं कौन हूँ, आगे क्या करूँगी, इसकी कोई पूछ-ताछ न करता। प्रत्येक यही देखता कि एक विद्यार्थिनी के नाते मैं आई हूँ और विशेष प्रकार की अपनी शिक्षा पूर्ण करके हिंदुस्थान लौट जाने वाली हूँ। मेरी वह शिक्षा सर्वांगीण हो इसलिए पाठ्य-क्रम के बाहर की बातें भी मुझे हर व्यक्ति बड़ी आस्था से दिखा देता। अपनी सहेलियों के परिवारों में मैं स्वच्छंदता से रहती। उनके साथ नाटक और नृत्य के कार्य-क्रम देखने जाती। भिन्न-भिन्न दर्शनीय स्थानों को देखते समय मेरी सहेलियाँ अपने घर के सब लोगों को भी साथ ले लेती थीं। मेरी इन सहेलियों के भाई, पिता और पति विदेश में मुझे हर बात को प्रत्यक्ष रीति से बड़ी दिलचस्पी के साथ स्वयं दिखाते। पर वहाँ यहाँ जैसी गुंडागीरी किसी ने नहीं की।

हिंदुस्थान से जो विद्यार्थी विलायत पढ़ने के लिए जाते, उनके प्रति अँग्रेज समाज में कोई बहुत अच्छा मत नहीं था। कुछ ऐसे विद्यार्थी भी थे जो अपनी पढ़ाई को छोड़कर और किसी भी बात की ओर कोई

ध्यान न देते। इस प्रकार के विद्यार्थी सिर्फ कालेज जाते, घर में आकर पढ़ते, परीक्षा पास करते और फिर अपनी मातृभूमि को लौट जाते।

दूसरे प्रकार के भी विद्यार्थी थे। उनका रहन-सहन बिल्कुल भिन्न प्रकार का रहता। कालेज की पढ़ाई के साथ-साथ वे वहाँ के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण से भी परिचय कर लेते। भिन्न भिन्न समाजों में जाकर मिलते, भिन्न-भिन्न सभाओं में जाते, पार्लियामेंट का काम कैसे चलता है, यह जाकर देखते। इन सब बातों की ओर उनका ध्यान रहता। इसलिए लौटते समय बहुत-सा ज्ञान लेकर वे हिंदुस्थान की भूमि पर कदम रखते।

तीसरे प्रकार के जो थे उनकी संख्या जरा अधिक ही रहा करती। पढ़ाई के बाद गुलछर्रे उड़ाने की ओर ही उनका सारा ध्यान रहता। ये विद्यार्थी बहुधा धनी परिवारों के होते, जिनके पास पिता को एक पत्र लिखते ही तार से रुपये आ जाते। वे नाटक-तमाशे देखते, दूर-दूर के के शहरों का सैर-सपाटा करते और ऐसे स्थानों पर जाते समय अपने साथ रंगीन तबियत की अँग्रेज लड़कियों को भी ले जाते।

हर समाज में अच्छे लोगों के साथ-साथ कुछ बुरे लोग भी हुआ करते हैं। अधिक आजादी होने के कारण वहाँ भलों के साथ बुरों का फैलाव हो जाना भी स्वाभाविक था। स्वतन्त्रता का उपयोग अभिमानी और तजस्वी वृति बनाने की ओर जितना होता है उतना ही पाप की ओर प्रवृत्ति झुकाने के लिए भी होता है। वहाँ कुछ परिवार ऐसे हैं कि उन्हें अपनी उपजीविका चलाने के लिए किसी भी प्रकार का काम करने में जरा भी संकोच नहीं होता। उपजीविका चलाने का प्रश्न वहाँ इतना विकट हो बैठा है कि उसके लिए धंधा करते समय पाप और पुण्य का विचार बहुतों के मन में बिल्कुल आता ही नहीं।

वहाँ के धनिक समाज में ही यह स्वेच्छाचार मुझे अधिक फैला हुआ दिखाई दिया। आवश्यकता से अधिक पैसा होने के कारण कुछ लोगों को वहाँ यह फिक्र रहती है कि आखिर यह पैसा खर्च किस तरह किया

जाय ? और इसीलिए मैंने वहाँ देखा कि धनिक समाज की यह धारणा हो गयी है कि पारिवारिक सुख की अपेक्षा स्वेच्छाचार में ही आनन्द है। ऐसे लोग हिन्दुस्थान से वहाँ जाने वाले विद्यार्थियों को एक खिलौना मान कर उन्हें अपने हाथ में पकड़ा करते हैं।

उसी तरह गरीब समाज की कुछ दुराचारिणी स्त्रियाँ भी अपना पेट भरने के लिए ऐसे विद्यार्थियों को अपने फंदे में फँसाती हैं। हिन्दुस्थान के विशेष प्रकार के वातावरण के कारण गोरे चमड़े के प्रति उत्पन्न हुआ आदर विलायत आने पर ऐसे विद्यार्थियों के नाश के लिए कारणीभूत हुआ करता है। ऐसे विद्यार्थियों को इस बात का बड़ा अभिमान होता है कि हमारे काले होते हुए भी ये गोरे चमड़े की औरतें हमारी ओर आकर्षित होती हैं। उनके इस थोथे अभिमान से लाभ उठा कर उनसे पैसा ऐंठने वाले भी कुछ लोग होते। ऐसे लोगों के चंगुल में फँसे हुए विद्यार्थियों का आचरण देखकर मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता।

ऐसी यद्यपि सारी परिस्थिति थी, फिर भी विलायत का वातावरण यहाँ के वातावरण की अपेक्षा मुझे अधिक निर्मल प्रतीत हुआ। सदाचारी मनुष्य को उत्तेजन प्राप्त होने योग्य परिस्थिति वहाँ भरपूर थी। जिनका बुराई की ओर आकर्षण रहता उन्हें उस प्रकार की परिस्थिति भी प्राप्त हो जाती। यह किसी भी प्राणी का सहज धर्म है। वह विलायत की ही विशेषता न थी। परन्तु हिन्दुस्तान की विशेषता बेशक इसकी अपेक्षा भिन्न है, इसका मुझे अनुभव हो रहा है। जो सदाचार से रहना चाहता है, उसकी भी टाँग पकड़ कर किस तरह खींच लें, यह वृत्ति हिन्दुस्थान में जितनी दिखाई देती है, उतनी विलायत में नहीं दिखती। विलायत में हर व्यक्ति उद्योगी होता है। भरपूर काम किये बगैर पेट भर अन्न प्राप्त करना वहाँ कठिन हो गया है। हमारे यहाँ के मजदूरों की अपेक्षा वहाँ के मजदूर भी मुझे अधिक ईमानदार दिखाई दिए। हमारे हिन्दुस्तान के नौकरों को—फिर वह चाहे क्लर्क हों या घरेलू नौकर—इसी में आनन्द आता है कि काम किस तरह चुरायें ? हिन्दुस्थान के

नौकर इसी पर अभिमान किया करते हैं कि उन्होंने अपने मालिक को किस तरह धोखा दिया।

विलायत में यह बात नहीं है। वहाँ का नौकर—फिर वह पुरुष हो या स्त्री—अपने मालिक की कृपा प्राप्त करने के लिए जी जान से कोशिश करता है। उसके लिए जो नियम बना दिए जाते हैं, उनके बाहर वह एक रत्ती-भर भी नहीं जाता। अपने कार्यों को निश्चित समय पर, निश्चित पद्धति से करने में वह सदा तत्पर रहता है। इसके कारण प्रमोशन के लिए उसे मालिक के सामने गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता। कामचोर सभी जगह होते हैं। विलायत में भी हैं, परन्तु अपने काम को मन लगाकर करने वाले लोग जिस परिमाण में विलायत में दिखाई देते हैं, उसके एक शतांश भी हिन्दुस्तान में दिखाई नहीं देते।

बहुतों का यह ख्याल है कि विलायत में स्वराज्य है, स्वतन्त्रता है और इसी का यह परिणाम है। इस कथन में तथ्यांश है, इसमें शक नहीं। यहाँ का क्लर्क काम में जब ढिलाई करता है, तब उसे यह संतोष प्राप्त होता है कि मैं अपने विदेशी अफसर को धोखा दे रहा हूँ। विलायत में यह बात नहीं। वहाँ के नौकरों को यह महसूस होने का कोई कारण ही नहीं होता कि उसका अफसर विदेशी है, इसीलिए वह अपने अफसर के काम को अपना ही काम समझता है और इसी भावना से उसे करता है।

स्वराज्य के कारण वहाँ के निवासियों में जो एक स्वाभिमानी और तेजस्वी वृत्ति उत्पन्न हो गई है, वही मुझे अधिक उत्तेजक प्रतीत हुई। मैं प्रायः सभी प्रकार के समाजों में जाकर वहाँ रही थी। जिस तरह मुझे वहाँ पुण्यवान मिले, उसी तरह पापी भी मिले। पापियों से परिचय करने में भी मैं नहीं हिचकिचाई, क्योंकि विलायत के विविध समाजों का पूर्ण ज्ञान मुझे प्राप्त कर लेना था। इस रीति से सभी प्रकार के समाजों का दर्शन करा देने वाली संस्थायें भी वहाँ अनेक हैं। उन संस्थाओं की सहायता से कमल के पत्ते पर पानी की बूंद की तरह संस्कार-शून्य रहकर,

भिन्न-भिन्न प्रकार के समाजों का अवलोकन करना वहाँ असंभव नहीं था।

मैंने सब समाज देखे। भलों के साथ बुरों को भी देखा। परन्तु हिन्दुस्थान में दिखायी देने वाली वृत्ति से उन लोगों की वृत्ति की जब तुलना करती हूँ, तब मुझे अपने आप पर ही लज्जा आए बिना नहीं रहती। पुराणपंथी लोग विलायत में भी हैं, परन्तु उनके दुराग्रह में वह ऐंठन नहीं जो हिन्दुस्थान में दिखायी देती है। नाना साहब जैसे लोग वहाँ न हों, यह बात नहीं। परन्तु वे समुद्र में बूँद की तरह हैं, ऐसा मुझे लगा। दूसरों का अनुभव शायद भिन्न हो, परन्तु अपनी परिस्थिति के अनुसार वहाँ की परिस्थिति का जब मैं अवलोकन करने लगी, उस समय भी मेरे हृदय में हिन्दुस्थान के प्रति अभिमान जाग्रत था, ऐसा कहे बिना मुझसे नहीं रहा जाता।

हिन्दुस्थान के प्रति मेरा अभिमान इतना तीव्र था कि उसके कारण अपनी मातृ-भूमि के प्रति मेरे मत में अनादर उत्पन्न नहीं हुआ। हमारे देश के लोगों की वृत्ति के लिए मुझे दुख हुआ, पर उनसे घृणा नहीं हुई। हमारे लोगों की वृत्ति इस प्रकार की होने के लिए हमारी परतन्त्रता ही कारणीभूत है, यह मैं कभी न भूली। यह दोष परिस्थिति का था, व्यक्ति विशेष का नहीं था। मैंने यह निश्चय किया था कि हिन्दुस्थान लौटने पर इस परिस्थिति को बदलने का मैं अपनी अल्पशक्ति के अनुसार प्रयत्न करूँगीं।

परन्तु पहिले ही कदम पर मुझे धक्का लगा। मेरे सामने जो पहेली उपस्थित हो गई थी, वह इतनी विकट थी, कि उसे हल करने का कोई भी उपाय मेरी नजरों के सामने न आता। चन्दू के प्रति मुझे आदर था। लीला के प्रति वात्सल्य था। परन्तु दोनों के लिए कुछ करना मेरे लिए असंभव हो गया था। चन्दू ने स्वयं ही एक विलक्षण परिस्थिति में अपने भाग्य को उलझा लिया था। लीला के बारे में ऐसी बात न थी। फिर भी उस विलक्षण परिस्थिति से मुक्त करने की कोई राह मुझे नहीं

सूझ पड़ती थी। मैं चन्दू को दोष दे सकती थी, पर लीला बिल्कुल निर्दोष थी। लीला को मैं बम्बई बुलवा लेती। अपने पास ही रख लेती तो उसकी आगामी शिक्षा सुख और संतोष से हो जाती, परन्तु ऐसा करना मेरे लिए संभव न था। यद्यपि मेरी वह भतीजी थी, फिर भी कानून की दृष्टि से उस पर मेरा पूर्ण अधिकार न था। उसके पिता ज़ब तक जिन्दा थे और जब तक कानून की दृष्टि में वह बालिग नहीं हुई थी, तब तक उसके लिए कुछ भी करना संभव न था।

चन्दू की अपेक्षा लीला की उलझन मुझे अधिक विकट प्रतीत हुई। लीला के लिए मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा था। ज्ञानार्जन का शौक हो, और वह पूरा न किया जाय, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है। मेरा उदाहरण उसकी नजरों के सामने था। मेरा अनुकरण करने की उत्कंठा उसमें उत्पन्न हो गयी थी। उसे यदि मैं अपने पास रखती, तो उसकी वह उत्कंठा पूर्ण होने की अधिक संभावना थी।

वह एक बुद्धिमती लड़की थी। उसके साथ यदि मेहनत की जाती, तो उसे भी विलायत भेजना असंभव न था। जिन प्रयत्नों से मैंने अपनी विलायत जाने की इच्छा पूर्ण की, उसी प्रकार के प्रयत्न करके विलायत जाकर ज्ञानार्जन करना उसे मुझसे भी अधिक सुलभ था। क्योंकि मेरे अनुभव का लाभ उसे प्राप्त होता।

परन्तु नाना साहब की जिद के कारण वह बात आज असंभव हो गयी थी। इसका क्या उपाय किया जाए, इसी का मैं विचार कर रही थी। काका से यदि मुलाकात हुई, तो इस विषय में मैं उनकी सलाह लूंगी, ऐसा मैंने मन में निश्चय किया।

और दूसरे दिन काका से मुलाकात भी हो गई। उन्होंने चन्दू की गृहस्थी का जो हाल बताया, उसे सुनकर मैं रो पड़ी। अपने ही घर में वेचारा पराया हो गया था। घर में, जेल के कैदी की तरह थाली में जो परोसा जाए वह चुपचाप खाकर अपने काम पर चल देता। काका से भी वह ठीक से बातें न करता। इससे पहिले जब काका उसके घर आते,

तब घण्टों वह उनसे बातें करता रहता।

काका बोले—'उस पर मुझे जितना रहम आता है, उतना ही क्रोध भी आता है। अपनी गलतियों का फल वह भोग रहा है। परन्तु उसके लिए मुझ जैसों को जो अकारण यातनायें हो रही हैं, उसका क्या उपाय?

मैंने कहा, "चन्दू की बात छोड़िये। लीला के लिए क्या किया जाए? आज की परिस्थिति में मैं उसे अपने साथ यहाँ रख सकती हूँ, पर उसे लाऊँ कैसे? इसका कोई उपाय है क्या?"

काका कुछ देर सोच में पड़ गये। फिर बोले—"उसके बालिग होने तक प्रतीक्षा करने के सिवा दूसरा चारा नहीं।"

काका का उत्तर सुनकर मैं बिल्कुल निराश हो गयी।

लीला के पत्र मुझे बार-बार आते। उसने शाला छोड़ दी थी। शाला छोड़े बगैर दूसरा कोई उपाय ही न था। शाला छूट जाने के कारण वह बेचैन हो गयी थी और मुझे लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर अपनी छटपटाहट को किसी तरह हल्की करने का प्रयत्न कर रही थी।

इसी तरह कुछ महीने बीते।

उस अवधि में कोई खास बात न हुई। मैं शाला की लड़कियों का प्यार पा रही थी और इस प्यार के कारण कोई नये धागे तो निर्मित न होंगे, यह भय मुझे लग रहा था।

एक पहेली

दिन पर दिन बीतते गये और महीने भी गुजर गये। पत्र-व्यवहार के सिवा किसी आत्मीय से और किसी प्रकार का सम्बन्ध न हुआ। बीच की अवधि में लगातार दो चार दिन की छुट्टियाँ पड़ी थीं। पर इन छुट्टियों में भी मैं ताई के गाँव न गयी।

एक तरह से मैं बम्बई में थी, यह अच्छा था। हर व्यक्ति अपने-अपने काम में खोया रहता, इसलिए दूसरों के मामलों में दखल देने का उसे अवकाश ही न मिलता। एक दूसरे के पड़ोस में रहने वाले लोग भी कई दिनों तक एक दूसरे से न मिलते।

यही फायदा मुझे मिला। चन्दू भी यद्यपि बम्बई में था, फिर भी इस अवधि में मेरी उससे कभी भेंट न हुई। ताई और काका को मैं पत्र भेजा करती। लीला से भी मेरा पत्र-व्यवहार होता रहता, परन्तु एक ही स्थान में होने के कारण चन्दू को पत्र लिखने का विचार ही मेरे मन में न आता और वह विचार यदि आता भी तो मैं उसे पत्र न लिखती। पत्र सरूबाई देख लेगी, यह डर मुझे न था, क्योंकि उसे अँग्रेजी नहीं आती थी। अँग्रेजी में पत्र लिखना मेरे लिए संभव था, परन्तु मैंने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय ही कर लिया था कि चन्दू को पत्र नहीं भेजूंगी और कुछ समय तक उससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखूंगी।

दिवाली की छुट्टियाँ नजदीक आ गयी थीं। इस छुट्टियों में ताई ने बड़े आग्रह से मुझे आपने गाँव बुलाया था। जाऊँ या न जाऊँ, इसका मैं कोई निश्चय न कर पाती।

यदि गाँव जाऊँ, और गाँव वाले वहाँ फिर से काका का बहिष्कार

का मामला खड़ा कर दें, तो एक काण्ड ही खड़ा हो जाएगा। सुख और सन्तोष प्राप्त करने के लिए मैं गाँव जाऊँ और मुझे लेकर वहाँ झगड़े खड़े हो जायें, यह मुझे अच्छा न लगता। पर ताई ने पत्र में लिख दिया था कि ऐसा कोई कांड वहाँ अब उपस्थित न होगा। किस आधार पर उसने यह लिखा, इसका मैं कोई अनुमान न लगा पाती।

बहुधा मैं घूमने अपोलो बन्दर जाया करती। पर एक दिन सहज चली गयी और वहीं एक संयोग की बात हो गयी। चन्दू के साथ एक दिन मैं अपोलो बन्दर गयी थी और हम दोनों जिस स्थान पर बैठे थे, उस स्थान की ओर मैं इस समय इस तरह जा रही थी जैसे मुझे कोई खींचकर ले जा रहा हो। मैं वहाँ पहुँची, देखा तो चन्दू वहाँ बैठा था।

यह देखकर कि उसका ध्यान मेरी तरफ नहीं है, मेरे मन में आया कि चुपचाप सटक दूँ। इसी समय उसने मुझे देख लिया। मुझे देखते ही उसके चेहरे पर आनन्द चमक उठा। अब उसे टालकर सटक देना संभव ही न था।

जब मैं उसके सामने पहुँची तब वह बोला, "आखिर आज मिलीं। इस आशा से कि किसी-न-किसी दिन तुम यहाँ अवश्य मिलोगी, मैं रोज आकर यहाँ बैठता हूँ। बरसात में भी मैंने नागा नहीं किया। परन्तु तुम कभी नहीं आईं। आज मेरी आशा फलवती हुई। बताओ, क्या हाल है? तुम्हारा कैसा क्या चल रहा है?"

"मेरा क्या चलना है?" मैंने कहा, "नौकरी करती हूँ। लड़कियों को पढ़ाती हूँ, होस्टल में रहती हूँ, खाती हूँ और आराम करती हूँ। इसके सिवा मेरे जीवन में और खास बात क्या होगी?"

चन्दू क्षण-भर के लिए मेरे चेहरे की तरफ देखता रहा और बोला—"ऐसी उदास-सी बातें क्यों कहती हो? ऐसी मायूसी-भरी बातें तुम्हारे मुंह से अच्छी नहीं लगतीं। एक समय था, जब तुम्हारे शब्दों से मुझे स्फूर्ति प्राप्त होती थी। तुम्हारे सहवास से मेरे जीवन को कोई नया मोड़ मिलेगा, ऐसी मुझे बड़ी आशा थी, परन्तु मेरी वह आशा व्यर्थ सिद्ध

हो गयी।"

"तुम्हारा क्या हाल है ?" मैंने बीच ही में पूछा।

"मेरा क्या हाल होगा ?" चंदू बोला—"तुम देख ही चुकी हो। उससे कोई अधिक विशेष नहीं है। धंधा ठीक चल रहा है। आमदनी भी काफी हो रही है। परन्तु आज-कल मेरे मन में पुनः यह विचार उठ रहा है कि वकालत छोड़ कर डाक्टरी पास कर लूँ। मेरा मन क्यों वकालत की ओर झुका, यह स्वयं मैं ही नहीं समझ पा रहा हूँ। पहिले से ही मैं डाक्टर बनना चाहता था। डाक्टरी की अन्तिम कक्षा तक पहुँच भी गया था, परन्तु सिर्फ एक सनक आयी और वह कोर्स मैंने छोड़ दिया। मेरे द्वारा छोड़ दी गयी डाक्टरी मुझे अब फिर बुला रही है। जीवन में कुछ मिलना चाहिए। एक ही प्रकार का जीवन-क्रम मनुष्य को दुःसह हो जाता है। रोज अदालत में जाना, सच को झूठ और झूठ को सच बनाना और मुवक्किलों से पैसे ऐंठना, इस जीवन से अब मैं ऊबने लगा हूँ। अब लगता है कि डाक्टरी का कोर्स छोड़ कर मैंने बड़ी गलती की। यदि डाक्टर हो जाता तो चौबीसों घन्टे काम में उलझा रहता। उस पेशे में रात-दिन काम रहता है। घर आना बड़ा भयंकर लगता है और वकालत में घर आये बिना काम नहीं चलता। इसलिए डाक्टरी की अन्तिम परीक्षा में बैठ जाऊँ, ऐसा अभी कुछ दिनों से मेरे मन में आ रहा है। यदि यह इच्छा बल पकड़ती गयी तो शायद फिर परीक्षा में बैठ जाऊँगा। कालेज में भरती होने की मुझे कोई जरूरत न होगी, क्योंकि टर्म्स पहले ही भर चुका हूँ।"

उसकी बात का उद्देश्य मैं समझ गयी। घर रहना उसे दुःसह हो गया था, यह उसकी बातों से स्पष्ट दिख रहा था।

मैंने कहा -"फिर कोंकण में जाकर क्यों नहीं रहते कुछ दिन ? हमारी शाला की तरह तुम्हारे कोर्ट की भी तो काफी छुट्टियाँ रहती हैं।"

"इस साल की गरमी की छुट्टियों में जाने वाला था। परन्तु मुझे शक हुआ कि तुम शायद वहाँ गयी होगी। काका से पूछना अच्छा न

लूंगा। परंतु यह मानकर ही कि तुम वहाँ गयी हो, मैं नहीं गया।" चंदू ने कहा।

"अच्छा ! पर यहाँ अपोलो वन्दर पर मेरी वाट जोहते बैठे ही रहते हो न रोज ?"—मैंने कहा।

एक दीर्घ निश्वास लेकर वह बोला—"मैं क्या करता हूँ, यह स्वयं मैं नहीं समझ पाता। मेरी जीवननौका की पतवार टूट जाने से तूफान में वह मनमानी वह रही है। जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं। मन की गति कुंठित है। उत्तेजना देने वाला कोई आत्मीय नहीं। किस के लिए जिऊँ ? स्वयं अपने जीवन का समाधान सीमित होता है। मनुष्य किसी दूसरे के प्रोत्साहन की अपेक्षा से कार्य के लिए प्रवृत होता है। कम-से-कम जनता के प्रोत्साहन की उसे जरूरत होती है। आशा के पीछे या तो आत्मीयता होना चाहिए या फिर जनता। इसके बिना मनुष्य से कोई कार्य नहीं हो सकता। यदि किसी सार्वजनिक कार्य में लगना चाहूँ, तो मन में उतना उत्साह नहीं। उस उत्साह को पैदा करने वाली शक्ति मेरे पीछे नहीं।"

वह लगातार बातें करता जा रहा था। एक ही बात को बार-बार दोहराता था। उसकी सारी बातों का यही साराँश था कि प्रोत्साहन के अभाव में उसका संघर्ष शील जीवन पस्त हो रहा है।

विषयान्तर करने के उद्देश्य से मैंने पूछा—"अब सरूबाई का क्या हाल है ?"

उसके माथे पर एकाएक शिकनें उभर उठीं। वह बोला—"मैं तुम से इसलिए बातें कर रहा हूँ कि मुझे कुछ दिलासा मिले और ऐसे समय तुमने उसका जिक्र छेड़ दिया। मैंने इतनी बाते कीं, इससे क्या तुम कुछ भी न समझीं ? उसका क्या हाल होगा ? एक ही घर में रहने वाले हम दो व्यक्ति एक-दूसरे के लिए पराये हो गये हैं। तुम्हारे जाने के बाद से इस समय तक हम दोनों में कोई बात-चीत नहीं हुई। घर के नौकर भी यह बात जानते हैं। मुझे साफ दिखता है कि वे मुझ पर तरस खाते हैं,

परन्तु मैं लाचार हूँ। वह मुझ से घृणा करती है और मैं भी उसकी आँख से आँख नहीं मिला सकता। हम दोनों एक ही घर में रहते हैं यह सच है, परन्तु वह मेरी दृष्टि की इतनी ओट हो गयी है कि कुछ दिनों के बाद मैं उसे यह पहचान भी न पाऊँगा। अपनी जिन्दगी से मैं इतना ऊब उठा हूँ कि अगर मेरे स्थान पर कोई दूसरा होता तो ऐसी परि-स्थिति में वह आत्महत्या तक कर बैठता।"

अपोलो बन्दर जैसा खुला स्थान न होता, तो संभव है कि वह फूट-फूट कर रोने भी लगता। उसकी आँखों के कोनों में आँसू झाँक रहे थे। उन्हें पोंछ कर उसने ऐनक उतार कर रूमाल से पोंछने का ढोंग किया।

वह बोला—"विधवा हो जाने से तुम कम-से-कम सुखी हो गई हो। बेचारे पुरुषों के भाग्य में वैधव्य जैसी कोई स्थिति नहीं। पुरुषों की विधुर-दशा और स्त्रियों का वैधव्य, इन दोनों की तुलना नहीं हो सकती। स्त्री का वैधव्य पति पर होता है। पुरुषों की विधुरावस्था सापेक्ष है। पुरुष विधुर हो जाए तो कोई उस पर तरस नहीं खाता। परन्तु विधवा स्त्री को सारी दुनिया की दया प्राप्त होती है। इसीलिए मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है।" इतना कह कर वह मुँह फेर कर चुप हो गया।

आगे क्या, कहूँ यह मुझे सूझ नहीं रहा था। जब मैंने उससे कहा कि अब मैं जाती हूँ तब वह बोला—"आज कितने दिनों के बाद मिली हो, क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि कुछ देर मेरे साथ बातें करो? हमने जानबूझ कर ही अपने मिलन पर रोक लगा दी है। जब संयोग से कभी ऐसी भेंट हो जाय तभी हम मिल सकते हैं। अभी तुम से भेंट हो गई, तो क्षण भर के लिए अपने मन को हल्का करने की मैंने कोशिश की और अब तुम्हें जाने की जल्दी पड़ी है। पहिले के नाते की बात चाहे छोड़ दो, पर कम-से-कम मेरी वर्तमान परिस्थिति को देख कर भी क्या तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती?"

मैंने उत्तर दिया, "अगर दया आये, भी तो उससे फायदा क्या होगा? यद्यपि तुम से भेंट नहीं हुई थी, फिर भी मैं तुम्हारी परिस्थिति को पूरी तरह

से महसूस करती थी। मेरी सिर्फ दया से ही तुम्हारा संतोष न होगा और न कल्याण होगा।"

पुनः क्षण-भर के लिए हम दोनों चुप हो गये। बोलने से ऊब उठी थी, फिर भी लगता था कि कुछ बोलूं। पर बोलूं क्या, यही नहीं सूझ पड़ता था। आखिर वही-वही बातें फिर दोहरायी जायेंगी। वही पुराना रोना रोने से किसी का भी समाधान न होने वाला था। उलटा असमाधान ही बढ़ता।

चुप बैठे रहना मुझे दुस्सह प्रतीत हुआ और उससे बिदा लेकर उसके उत्तर की प्रतीक्षा न कर मैं एकदम वहाँ से चल दी। मैंने पीछे मुड़कर देखा। चन्दू सिर झुकाये समुद्र की लहरों की ओर देख रहा था।

मैं घर आयी। मेरा मन कहीं न लगता था। मन बिल्कुल उद्विग्न हो गया था। चन्दू का उदास चेहरा बार-बार मेरी नजरों के सामने मूर्त होकर मुझे डरा रहा था। उसके दुख को दूर करने के लिए क्या करूँ इस पर मैंने बहुत सोचा, पर कोई उपाय नजर नहीं आता था।

ताई के गाँव जाने का मैंने निश्चय किया।

दिवाली की छुट्टी होते ही मैं गाँव चली गयी। मुझे देखकर ताई को बड़ी खुशी हुई। मेरे आगमन की वह बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। काका नित्य की भाँति स्थितप्रज्ञ थे। मेरे आगमन से उन्हें आनंद हुआ भी हो, पर उन्होंने वह अपने चेहरे पर झलकने न दिया।

गाँव पहुँचते ही मुझे पहला आश्चर्य यही हुआ कि ताई ने जो लिखा था वह बिल्कुल सच निकला। मेरे वहाँ जाने के बाद काका के बहिष्कार की कोई बात ही न निकली। मुझे रहते वहाँ दो-चार दिन भी हो गये, पर गाँव वालों में काका का हुक्का-पानी बन्द करने के बारे में कोई चर्चा न हुई और न कोई आन्दोलन ही शुरू हुआ। घर में पुरोहित जी भी थे। उन्होंने भी मेरा किसी तरह कोई अपमान न किया।

जब मैंने ताई से इसका कारण पूछा, तब वह बोली, "यह फिर एक दैवी चमत्कार हो गया है। हम जब बम्बई से लौटकर आये, उस

समय फिर हमारा-हुक्का पानी बन्द करने का आन्दोलन शुरू हुआ। हमने धर्म-भ्रष्ट लोगों के साथ भोजन किया इसलिए हमारा हुक्का-पानी बन्द कर देना चाहिए, ऐसा प्रस्ताव गाँव वालों ने पास कर दिया। इसी समय हमारे पुरोहित जी को एक सनक आई। उसी समय उन्होंने गाँव वालों को एक सुझाव दिया। उन्होंने कहा, हमें अपने ग्राम-देव से इस विषय में कौल प्राप्त करना चाहिए। सब पुजारी इकट्ठे हुए और ग्राम देव से यह कौल मिला कि हुक्का-पानी बन्द न किया जाए। चूँकि कौल लेने का काम हमारे घर के पुरोहित जी ने किया था, इसलिए लोगों ने यह शंका निकाली कि अनुकूल कौल प्राप्त करने में पुरोहित जी ने कुछ हाथ की सफाई की हो। परन्तु बेचारे पुरोहित जी ने सचमुच में ऐसी कोई चालाकी नहीं की थी। यद्यपि वे हमारे आश्रित थे, फिर भी उनकी पुराण-प्रियता इतनी प्रबल कि उनकी आंतरिक इच्छा यही थी कि हमारा हुक्का-पानी बन्द हो जाय और ग्राम-देव भी यही कौल दें। संशय उत्पन्न हो जाने से दूसरे पुजारी ने देव से फिर दुबारा कौल माँगा और संयोग की बात यह हुई कि देव ने पुनः पहिले जैसा ही कौल दिया। गाँव वालों को ग्राम देव के कौल पर कितना विश्वास होता है, इसकी कल्पना शहर-वासियों को नहीं हो सकती। गाँव वालों को यही धारणा होती है कि ग्राम-देव द्वारा दिये गये कौल को मानना चाहिए। यदि वह न माना जाए तो देव नाराज हो जाता है और फिर समूचे गाँव की खैर नहीं। इस तरह हमारा हुक्का-पानी बन्द करने का प्रश्न ही अब समाप्त हो गया। लोग कहने लगे कि देव भी अब सुधारकों का पक्ष लेने लगे।

यह हाल सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। यह सिर्फ संयोग था या कि सचमुच कोई दैवी चमत्कार, यह मैं निश्चय न कर पाती थी। परन्तु यह देखकर कि प्रस्तुत परिस्थिति में मैं वहां चार दिन संतोष और सुख से रह सकूँगी, मुझे खुशी हुई।

चन्दू से मेरी जो भेंट हुई थी, उसका हाल मैंने ताई से कहा। वह बोली—"जो परिस्थिति पैदा हो गई है, उसका सामना किये बिना अब

दूसरा कोई उपाय नहीं। चन्दू लाला को अब यही समझ लेना चाहिए कि उनका विवाह ही नहीं हुआ है।" थोड़ी देर के बाद कुछ सोचकर वह बोली—"परन्तु ऐसा समझना कठिन है। यदि शादी न हुई हो, तो एक आशा मन में जाग्रत रहती है कि मुझे शादी करनी है और अब मुझे कोई योग्य वधू खोजनी चाहिए, परन्तु चन्दू लाला का जीवन अजीब-सा हो गया है। न वे पूरे ब्रह्मचारी हैं और न पूरे विधुर ! घर में पत्नी है, पर उसका मुँह नहीं देखते। घर में पति है पर पत्नी उसे स्पर्श तक नहीं करती। मेरे ख्याल से नीच जातियों में प्रचलित तलाक की प्रथा बड़ी अच्छी है। पत्नी को तलाक देकर पति दूसरी स्त्री के साथ अपनी गृहस्थी सजा सकता है। पर हमें यह भी सम्भव नहीं। जीवन इसी तरह बिताना होगा। इसके सिवा दूसरा चारा नहीं। यह पहेली हल कैसे हो ? आखिर चन्दू भी जी जान से काम करके भरे हुए घर में एक भूत की तरह बर्ताव क्यों करे ? उसे सुख मानकर क्यों न रहना चाहिए ? सरू को भी अपने मतों के अनुसार वर्ताव करके सुखी क्यों न रहना चाहिए ? सिर्फ मत-भेद को छोड़ कर दोनों के दुखी होने का और कोई कारण नजर नहीं आता। न कोई रोगी है, और न दुराचारी। दोनों दूध के धोये हैं। फिर वे यह सजा क्यों भोगें ?

"यही तो मेरा भी प्रश्न है।" मैंने कहा—"मैं जो तुम से पूछना चाहती हूँ वह यही बात है, पर मेरे प्रश्न का उत्तर देना छोड़कर, तुम मेरा ही प्रश्न मुझसे पूछ रही हो ? यह लुका-छिपी नहीं चलेगी, ताई ! मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर दो।"

"हम तुम्हारे काका से ही पूछेंगे।" —ताई ने कहा।

शाम को भोजन के बाद हम तीनों बातें कर रहे थे। शाला का बहुत कुछ हाल सुनाने के बाद मैंने काका के सामने चन्दू की बात निकाली।

काका बोले—"यह हल न होने वाली पहेली है। एक तो कोई हिन्दुस्थान में जन्म ही क्यों ले ? फिर ब्राह्मण के कुल में क्यों पैदा हो ?

और जब पैदा हो ही गया है, तो फिर मतभेद होने पर उसे एकदम हार क्यों न मान लेनी चाहिए। मेरी राय तो यही है कि चन्दू को यदि सचमुच सुख से रहना है, तो उसे अपनी पत्नी के मतों के सामने झुक जाना चाहिए। किसी अच्छे विद्वान शास्त्री को बुलाकर प्रायश्चित ले लेना चाहिए और अपने भ्रष्ट हुए घर को शुद्ध कर लेना चाहिए। इससे उसकी पत्नी को संतोष हो जाएगा और उसकी गृहस्थी सुख से चलने लगेगी।"

मैंने कहा—परन्तु प्रायश्चित का यह प्रश्न उपस्थित होने से पहिले भी वह कहाँ सुखी था ? उस समय भी तो उसे असमाधान ही था।"

काका मन-ही-मन हँसते हुए बोले—"सच है ! सच है ! पर अब परिस्थिति बदल गयी है। अब यदि वह प्रायश्चित ले लेता है, तो सरू इसे अपनी जीत मानेगी। उसे लगने लगेगा कि वह मेरे सामने झुक गया है। अब उस पर कृपा करनी चाहिए और इस कारण उसके हृदय में अपने पति के प्रति आत्मीयता उत्पन्न हो जाएगी। उस आत्मीयता के कारण वह उससे अधिक प्रेम पूर्वक वर्ताव करने लगेगी। उस प्रेम की आँच से वह भी धीरे-धीरे गलने लगेगा और फिर दोनों अपने परस्पर संबंध को धीरे-धीरे महसूस करने लगेंगे। उसे धीरे-धीरे जो हार खानी पड़ेगी, उसकी उसे आगे चलकर कोई शर्म भी न आएगी। जब वह बार-बार ऐसी हार खाने लगेगा, तो उसके कारण उसकी पत्नी के हृदय में उसके प्रति एक स्वाभाविक अभिमान उत्पन्न होगा और दोनों में आप-ही-आप स्नेह बढ़ेगा, ऐसा मेरा अंदाज है।"

इस विकट समस्या को हल करने का काका का यह तरीका सुनकर मुझे सचमुच हँसी आई। ये सिर्फ कल्पनाएँ थीं। हमारे कहने से ही हम जो चाहते हैं वह परिस्थिति पैदा नहीं हो जाएगी। हम ऐसा क्यों न सोचें कि इस तरीके से हार खाना ही रह जाएगा, पर उसका नतीजा कुछ न होगा। उसके जीवन में ऐसे आशावादी प्रसंग और कौन से आए थे जिससे कि वह आशावाद से ही चिपका रहे ! मान लो उसने प्रायश्-

चत ले लियां और उसका परिणाम वह न हुआ जैसा हम सोच रहे हैं। तो सिर्फ प्रायश्चित लेने का अपमान भर उसके पल्ले पड़ेगा। नतीजा यह होगा कि वह पहले से भी और अधिक नीति-भ्रष्ट हो जाएगा।"

जब मैंने यह साफ-साफ कहा, तब काका बोले—"यह तो तुम्हारा लॉजिक है। यह विलायती लॉजिक मुझे नहीं जँचता। मैं तो भई आशा-वादी हूँ। मैं हमेशा सोचता हूँ कि हर बात प्रयोग करके देखना चाहिए। इसीलिए तो तुम्हारे बारे में मुझे कोई लॉजिक नहीं भिड़ाना पड़ा। मेरे पहिले के आशावाद के कारण जो-जो बातें हुई, उन बातों के बारे में यदि मैं इसी तरह की शंकाएँ-कुशंकाएँ निकालता रहता, तो तुम आज जिस परिस्थिति में हो उस परिस्थिति में कभी न रहतीं। यह एक प्रयोग है और मैं सोचता हूँ कि उसे करके देखना चाहिए। प्रयोग का परिणाम यदि अच्छा हुआ तो ठीक ही है, पर उससे बिगड़ेगा कुछ नहीं। यदि तुम्हें चंदू मिले, तो उससे कह देना कि वह यह प्रयोग करके देखे। जब घर का कोई व्यक्ति मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ अंतिम साँसें लेता रहता है, तब पक्का सुधारक भी उसे मौत से बचाने के लिए ग्राम-देव के आगे बकरा काटने को तैयार हो जाता है। इसी तरह की बात है यह!"

बात यहीं तक रही, पर वह मेरे मन में भी पक्की जम गयी।

छुट्टी बिता कर मैं बम्बई लौट आई।

भगोड़ी

लीला एक दिन अचानक आ धमकी। उससे मालूम हुआ कि मेरे होस्टल का पता उसे चंदू ने बताया था। वह पूना से बम्बई आयी और सीधी चंदू के घर पहुँची। वहाँ रहना उसके लिए संभव ही न था। चंदू उस समय घर था इसलिए ठीक रहा, वरना मेरा पता लगाना उसके लिए कठिन हो जाता।

नाना साहब ने उसकी शादी करीब-करीब तय ही कर दी। उसे वह वर पसन्द न था।

वह गाँव का एक आवारा लड़का था। उसका आचरण शहर भर को मालूम था। नाना साहब भी जानते थे। इसलिए मुझे भी आश्चर्य हुआ कि नाना साहब ने लीला के लिए यह वर कैसे तय किया?

लीला की माँ भी इस संबंध के खिलाफ थी। परन्तु उस घर में नाना साहब का वाक्य ही ब्रह्म-वाक्य माना जाता। पड़ोसियों ने भी नाना साहब को इस विषय में समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु नाना साहब टस से मस न होते थे। उनका निश्चय बिल्कुल पक्का हो चुका था।

इसीलिए लीला ने यह साहस किया। उसने अपनी माँ से बम्बई तक के किराये के पैसे लिये और चुपचाप वहाँ से चल दी। यह देखकर कि इस काम में उसकी माँ की अनुमति थी, मुझे थोड़ा समाधान हुआ। मैं जो खतरा ले रही हूँ, उसमें कम-से-कम एक हिस्सेदार तो है, यही मेरे लिए एक बड़ा आसरा था।

मैं जान गयी अब कोई बड़ा झगड़ा हुए बिना नहीं रहता। होस्टल में ऐसा कोई झगड़ा हो, यह उचित न था। इसलिए लीला के आने के

दूसरे ही दिन मैंने एक घर खोजा और होस्टल छोड़कर वहाँ रहने चली गयी। तय यह हुआ था कि जब तक कोई रसोईदारिन नहीं मिलती, तब तक भोजन के लिए होस्टल में ही आएँगे।

लीला घर में बैठी रहती। चार-छः दिन बीत गये। खाली बैठे-बैठे वह ऊबने लगी। मुझे लगा, अच्छा हो यदि वह शाला में जाने लगे और मैंने उसे एक अंग्रेजी मिशन स्कूल में भरती कर दिया।

मुझे लगने लगा कि इस समय मुझे किसी दूसरे का आधार प्राप्त होने से अच्छा होगा। लेडी सुपरिंटेंडेन्ट से यह सब हाल कहना उचित न था। अपने ही घर के दोष हम दूसरों से कैसे कहें? काका और ताई इतने दूर थे कि अगर उनकी सलाह या सहायता मिलेगी भी तो ऐन मौके पर उसका कोई उपयोग न होगा।

अब रह गया चंदू। यद्यपि उससे कोई संबंध न रखने का मैं निश्चय कर चुकी थी, पर वह निश्चय मुझे तोड़ना पड़ा।

मैंने चंदू को पत्र लिखा। नियत समय पर वह मुझसे मिलने मेरे घर आया। लीला वहाँ थी ही। मैंने चंदू से सारा हाल कहा। वह सोच में पड़ गया। यह बड़े जोखिम का काम था। पर यह एक अच्छी बात थी कि वह स्वयं वकील था। मौका आने पर वकील के नाते मेरी मदद करना उसे संभव था।

पूछताछ करने से यह पता चला कि लीला की उम्र उस समय अठारह वर्ष की हो चुकी थी। कानून की दृष्टि में वह बालिग हो गयी थी।

बड़ी आशा से वह मेरे पास आयी थी। इसलिए ऐसे प्रसंग पर उसे सहायता न देनी मेरी दृष्टि में पाप होता। लीला के पूरे जीवन का प्रश्न था। जान-बूझकर गाँव के गुन्डे से अपनी लड़की की शादी करने के लिए नाना साहब तैयार कैसे हो गए, इसका चंदू को भी आश्चर्य हुआ।

चंदू के घर टेलीफोन था। उसने अपने टेलीफोन का नम्बर मुझे लिखा दिया। तय यह हुआ कि यदि जरूरत पड़ जाए, तो टेलीफोन करके उसे एकदम बुला लिया जाए। उसने अदालत का भी टेलीफोन नंबर

लिखा दिया था।

दस-बारह दिन बीत गए। पर इस अवधि में नाना साहब की तरफ से कोई गड़बड़ हुई नहीं दिखायी दी। यह बात ठंडी कैसे हो गयी, इस पर मुझे आश्चर्य हो रहा था। ऐसे मौके पर नाना साहब शांत नहीं बैठेंगे, यह मैं पूरी तरह जानती थी। जब कि वे इतने दिनों तक बिल्कुल शांत बैठे हैं, तब जरूर ही वे कोई विकट चाल चल रहे हैं, ऐसा मुझे संदेह हुआ।

और अन्त में अनुभव भी वही हुआ। एक दिन जब कि लीला शाला जा रही थी, रास्ते में उसे नाना साहब मिले और उन्होंने उसे पकड़कर जबरदस्ती गाड़ी में बैठाया और स्टेशन ले गये। मैं शाला में थी। मुझे कोई पता न चला। लीला ने होशियारी करके स्टेशन से चंदू को फोन किया। चंदू ने तुरन्त पुलिस को सूचना दे दी।

लीला के सौभाग्य से पूना की गाड़ी छूटने में काफी विलंब था। इसलिए सब लोग स्टेशन पर बैठे गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। लीला ने अपनी विशेष नाराजगी न दिखाई थी। इसलिए नाना साहब और उनके साथ आये हुए उनके दो-तीन मित्र विशेष चौकन्ने न थे।

इसी समय पुलिस वालों का एक दल वहाँ पहुँचा और लीला को अपने अधिकार में ले लिया।

नाना साहब ने स्टेशन पर ही हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया। पर पुलिस वालों के आगे उनकी कुछ न चली। चन्दू को देखते ही नाना साहब का क्रोध बहुत अधिक भड़क उठा और वे गालियाँ देने लगे। पुलिस के चले जाने पर भी वे गालियाँ बकते रहे।

मजिस्ट्रेट के सामने लीला हाजिर की गयी। उसने वहाँ अपना बयान दिया। उस बयान में उसने अपना सारा हाल बताया और यह स्टेटमेंट दिया कि वह बम्बई में अपनी चाची के पास रहना चाहती है।

मजिस्ट्रेट की तरफ से मुझे समन आया। उस समय मैं शाला में पढ़ा रही थी। मजिस्ट्रेट के समन के कारण मुझे अदालत जाना पड़ा।

यह चर्चा सारी शाला में फैल गई और वहाँ सनसनी मच गयी। जिस बात को मैं छिपाना चाहती थी वह अन्त में सब तरह फैल गयी।

मजिस्ट्रेट ने लीला को मेरे हवाले कर दिया।

मेरे घर आते ही चन्दू बोला, "इस शख्स को बाप कहूँ या कसाई, यहीं मैं नही समझ पाता। अपनी लड़की की शादी एक गुंडे से करना चाहता है, और यदि लड़की इसका विरोध करती है; तो उसे रास्ते में जबरदस्ती पकड़ कर गाड़ी में भगा ले जाता है! इसे गुंडागीरी के सिवा और क्या कहा जा सकता है? अब मुझे ऐसा पता लगा है कि उन लोगों को यहाँ आए सात-आठ दिन हो गए थे। बड़ी हिकमत से हम लोगों का पता लगाकर उन्होंने हम पर निगरानी रखी थी। जब उन्होंने यह देख लिया कि लीला रोज शाला जाती है, तब उन्होंने इस तरह भगाने का षड़यंत्र रचा। अब यह लड़की अपने बाप से जिन्दगी भर के लिए अलग हो गई है।"

लीला बोली, "अच्छा हुआ। आखिर छूट गयी उस बला से। वह तो अच्छा हुआ जो सहज ही मुझे मेरे विवाह की निमंत्रण-पत्रिका मिल गयी। उन्होंने शाला के रजिस्टर में मेरी उम्र कम दिखायी है और इसी आधार पर वे बड़े खुश थे। परन्तु एक दिन अलमारी में मैं कुछ खोज रही थी और पुराने कागजों के बीच दबी हुई मेरी जन्मपत्री मुझे दिख गयी। जब हिसाब करके देखा तो पता चला कि शाला में मेरी जो उम्र लिखायी गयी है वह गलत है। मैं यह नहीं कहती कि उन्होंने जान-बूझ कर वह उम्र गलत लिखायी होगी। पर यह जरूर सच है कि वह अन्दाज से लिखा दी होगी और वही उम्र उनके ध्यान में थी। मैंने अपनी उम्र के सबूत में मजिस्ट्रेट के सामने जब जन्मपत्री पेश की, तब उनका चेहरा कैसा हो गया था! उस चेहरे को देखकर मुझे लगा कि अब घर जाने पर वे मेरी खूब खबर लेंगे। अब जो जी में आए सो करें। मैं तो उनके फंदे से अब हमेशा के लिए मुक्त हो गई!"

जब चन्दू को मैंने धन्यवाद दिया, तब वह बोला, "अब यह फार्मेलिटी

रहने दो मथू ! मुझे धन्यवाद देने की जरूरत नहीं। यह मेरा एक पवित्र कर्तव्य है। अपने जीवन में मैंने जो भूल की उसके कारण मेरी गृहस्थी मिट्टी में मिल गयी। स्वयं अपना यह उदाहरण मैं हमेशा अपनी नजरों के सामने रखे रहता हूँ। तुम अदालत में जाकर पूछ लो, आज कल मेरे पास आने वाले प्रायः सभी मुकद्दमे इसी तरह के कुछ परिवारिक झमेले के ही होते हैं। परिवारिक संकट से व्यक्तियों को मुक्त करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है, ऐसा मुझे आज-कल लगने लगा है।"

मैंने यह सारा हाल ताई को लिख भेजा। उसी समय के लगभग मुझे एक रसोईदारिन मिल गई, जिससे हमारे भोजन की भी ठीक से व्यवस्था हो गयी। इसके कारण लीला की पढ़ाई की ओर ध्यान देना मेरे लिए संभव हो गया।

उस समय कालेज में हिन्दू स्त्रियाँ बहुत कम रहा करतीं। परन्तु कालेज बम्बई में होने के कारण लीला को विशेष त्रास न हुआ। उसके साथ की छात्रायें प्रायः पारसी अथवा इसाईनें थीं। महाराष्ट्रीय लड़कियाँ इक्का-दुक्का ही थीं, वे धनी परिवार की थीं। मध्यम श्रेणी के लोगों की लड़कियाँ उस समय शायद ही कालेज में जाती थीं।

एक दिन चमत्कार हो गया। हम शाम को भोजन का समय होते तक बैठी बातें कर रही थीं। इसी समय नाना साहब मेरे घर अचानक आ पहुँचे। मैं आश्चर्यचकित हो गयी।

वे आकर बैठे, पर बहुत देर तक कुछ बोल ही नहीं रहे थे। जब मैंने उनसे पूछा कि कैसे तकलीफ की, तब वे बोले, "-न आता, तो क्या करता? प्रसंग ही ऐसा विकट आ गया है। मैं जानता हूँ कि मेरी बात तुम्हें सच न लगेगी। मैं जो कहूँगा, उस पर तुम विश्वास न करोगी। पर प्रसंग ही ऐसा आ पड़ा है, इसलिए तुम्हें यदि मेरा विश्वास न हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर आज जो आया हूँ, सो बिल्कुल लाचार होकर आया हूँ।" ऐसा कहकर वे सिसक-सिसककर रोने लगे।

जरूर कोई विकट प्रसंग है, ऐसी शंका मेरे मन को छू गयी। पर

लीला बिल्कुल कठोर बन गयी थी। नाना साहब की मुद्रा का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा था, वह लीला की मुद्रा पर पड़ा दिखायी न दिया।

अँगोछे से आँखें पोंछकर नाना साहब बोले—"लीला की माँ मृत्यु-शैया पर पड़ी है। वह अब बचेगी नहीं। डाक्टर ने साफ कह दिया है। मैं लौटकर जाऊँगा, तब तक जिन्दी दिख जाए कि मैं सब कुछ पा जाऊँगा। सोच रहा हूँ आज रात की गाड़ी से चला जाऊँ। मैं यह नहीं कहता कि लीला को मेरे साथ भेज दो। क्योंकि मुझ पर तुम्हारा विश्वास नहीं है। मैं जैसा आया हूँ, उस तरह लौट जाऊँगा। यदि उसे अपनी माँ से अन्तिम भेंट करनी हो, तो वह मेरे साथ चले और उसकी अगर ऐसी कोई इच्छा न हो, तो न चले।"

मैं बड़े पसोपेश में पड़ गयी। सच मानूँ या झूठ इसका कोई निर्णय न कर पा रही थी। लीला तनिक भी न डगमगाई। यह सारा नाना साहब का ढोंग है, ऐसा उसका विश्वास था।

मैंने फोन करके चंदू को बुलाया। सारा हाल सुनते ही मेरी तरह जब वह भी असमंजस में पड़ गया, उस समय लीला बोली, "इस तरह पसोपोश में पड़ने की जरूरत नहीं। मैं तुम से साफ़ कह देती हूँ कि यह सारा ढोंग है। यदि मैं वहाँ गयी, तो ये मुझे किस फंदे में फँसा देंगे, यह नहीं कहा जा सकता। यदि माँ सचमुच ही बीमार होगी, तो इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझूँगी। यदि मेरी भेंट हुए बिना ही उसकी मृत्यु हो जाती है, तो मुझे इसका कोई विशेष दुःख न होगा। मेरे लिए वह वह माँ होने और न होने के बराबर ही है। उसने मुझे जन्म दिया, इसी-लिए उसे माँ कहती हूँ। बस! कभी भी उसने मुझ से प्यार नहीं किया। मुझे प्यार करना उसके लिए संभव ही न था। नाना साहब की धाक ही इतनी जबरदस्त थी। इसलिए मैं उससे इस समय मिलने गयी या न गयी, दोनों एक सा ही है।"

मेरे मन में विलक्षण हलचल मच गयी। मुझे लग रहा था, बेचारी यदि सच मुच मृत्यु-शैया पर होगी, तो बेटी से मिलने के लिए वह छट-

पटा रही होगी और ऐसे वक्त बेटी से उसकी भेंट न हो और उसकी मृत्यु हो जाए, तो इसका पाप मेरे सिर आएगा। लोग भी मुझे ही बदनाम करेंगे। लीला जो कह रही है वह लोगों के कानों में नहीं जाएगा। उस का वहाँ न जाना ही लोगों के ध्यान में रहेगा और बदनामी मेरी होगी।

चन्दू का भी यही ख्याल था। लीला को साथ लेकर पूना जाने का हम दोनों ने निश्चय किया।

लीला मुश्किल से हम लोगों के साथ पूना जाने को राजी हुई।

दूसरे दिन अदालत के काम का इन्तजाम करके चन्दू हमारे घर आया और हम तीनों रेल में जा कर बैठे। इसके थोड़ी ही देर बाद नाना साहब प्लेटफार्म पर टहलते हुए हमें दिखायी दिए। उनके साथ और भी दो व्यक्ति थे। पहिले से ही शक होनें के कारण लीला डिब्बे में चादर ओढ़ कर एक तरफ जाकर सो गयी थी।

नाना साहब को देखते ही मेरे मन में शक हुआ। यह सारा ढोंग ही होगा, ऐसा अब मुझे लगने लगा। इस विषय में मैंने चन्दू से पूछा। कुछ समय तक वह भी निश्चयात्मक रूप से कुछ न कह सका।

गाड़ी खुली और लीला बिस्तर से उठकर हमारे पास आ बैठी। हमने खिड़कियाँ बन्द कर लीं। संयोग की बात कि उस डिब्बे में हम तीनों को छोड़ कर और कोई न था।

लीला बोली—"कल्याण में उतर कर मैं बम्बई लौट जाऊँगी। आप दोनों पूना जाइए और यदि माँ सचमुच बीमार है तो मुझे तार देना मैं एकदम आ जाऊँगी। जहाँ उतरोगे, वह पता उस तार में लिख देना जिससे मैं सीधी आप के पास ही आजाऊँगी। और यदि मेरे भाग्य में उससे भेंट होना बदा होगा, तो भेंट हो जाएगी। तुम्हारा तार न आया तो मैं समझूँगी कि ठीक है।"

लीला के साहस की मन-ही-मन मैंने सराहना की। मैंने कहा, "तुम अकेली रात को कल्याण से बम्बई चली जाओगी।"

उत्तर में वह सिर्फ हँसी और बोली—"चाची! आप तो अकेली

विलायत हो आयीं और क्या मैं कल्याण से बम्बई भी अकेली सफर न कर सकूंगी ? आपने यह सोचा कैसे ?"

लीला के उत्तर से मुझे अपने आप पर ही शर्म आई।

कल्याण स्टेशन आते ही वह शाल ओढ़ कर नीचे उतर पड़ी। उस का वह स्वाँग देख कर उस परिस्थिति में भी मुझे हँसी आ गयी। चन्दू भी तब तक नीचे उतर गया था। उसने सारी ट्रेन पर एक बार नजर डाली। नाना साहब और उनके मित्र एक डिब्बे में तमाखू की थैली खोले जोर-जोर से बातें कर रहे थे। उन्होंने चन्दू को नहीं देखा।

उस डिब्बे एक फेरी वाले से फल खरीदने का बहाना कर चन्दू नाना साहब की बातें सुनता रहा। उनकी बातों के थोड़े बहुत शब्द उस के कानों में पड़े, उससे चन्दू को भी विश्वास हो गया।

वह फिर आकर अपने डिब्बे में बैठ गया। वह नाना साहब को गालियाँ दे रहा था। मैंने जब पूछा तब उसने सारा हाल कह सुनाया। वह बोला—"नाना साहब बड़ी शान से अपने मित्रों से कह रहे थे कि उन्होंने ने हमें कैसे बनाया ? मैं सोचता हूँ पूना के स्टेशन पर उतरते ही लीला को पुनः पकड़ कर भगाने का उनका इरादा होगा। इस अर्थ के कुछ वाक्य मेरे कानों में आ पड़े थे। लीला चल दी यह अच्छा ही हुआ। अब क्या हम भी लौट चलें। अगर कर्जत पर उतर जायें तो बम्बई जाने के लिए हमें रात में एक गाड़ी मिल जाएगी।"

मैं सोच में पड़ गयी। मैं भी चन्दू जैसा ही सोच रही थी। परन्तु मुझे लगा कि पूना जा कर नाना साहब को मुंह पर झूठ साबित कर देना आवश्यक है।

इस तरह मैंने चन्दू से कहा और उसे भी मेरी बात जँच गयी।

इसके बाद उस डिब्बे में फिर और कोई मुसाफिर न आया।

सारी रात मुझे नींद नहीं आ रही थी। फिर से वही प्रसंग आ गया था। वह एकान्त मुझे खल रहा था। बोलते-बोलते विचार मन में आने लगे। सच पूछो जाय तो उन विचारों को कोई आधार न था। परन्तु

कहावत है न कि मन के समान दूसरा कोई बैरी नहीं होता। इस कहावत का इस रात को मुझे अनुभव हुआ। यदि सरूबाई को इसका पता चल गया कि आधे रास्ते से ही लीला को बम्बई वापिस करके हमें दोनों पूना गये, तो इसका क्या परिणाम होगा ?

मेरे रोंगटे खड़े हो गये। डिब्बे की रोशनी गुल थी। मैं उठी और मैंने रोशनी जला दी।

अपने इस कृत्य पर मुझे अपने आप पर ही शर्म आई। रोशनी को देखते ही चन्दू भी उठ बैठा। उसे भी नींद नहीं आयी थी। क्या मेरी तरह उसके मन में भी विचार आ रहे थे ?

वह बोला—"क्या नींद नहीं आ रही ? यह गाड़ी बुरी तरह लड़खड़ाती है। और थोड़ी नींद आई भी तो स्टेशन आते ही गाड़ी एकदम खड़ी हो जाती है और इधर नींद खुल जाती है। इसीलिए मैं रात का सफर पसंद नहीं करता।"

मैंने कहा—"मेरी भी वही हालत हो गयी है। पूना पहुँचने तक बैठे-बैठे बातें ही करें।"

चन्दू बोला—'अब बातें क्या करेंगे ? जो कुछ बातें करनी थीं, वे हम कर ही चुके हैं। अब बात-चीत के लिए कोई विषय ही नहीं रहा है। लीला अगर साथ होती, तो कम-से-कम नाना साहब की ही बातें बताती।"

क्या कहूँ, यह मुझे सूझता न था और बिस्तर पर सोया भी न जाता था। उस एकान्त का मुझे संकोच लग रहा था।

फिर दिल में आया कि कर्जत पर उतर कर बम्बई ही लौट चलें। पर ऐसा करना कायरता होती। नाना साहब को झूठा साबित करना आवश्यक था।

जी कड़ा कर के मैं पुनः बिस्तर पर सो गयी। चन्दू भी सो गया और उसने सिर पर से चद्दर ओढ़ ली।

उस रात मुझे ठीक नींद न आई। सुबह गाड़ी पूना पहुँची। स्टेशन पर कार लेकर चन्दू के मित्र हाज़िर थे। हम सेकंड क्लास में बैठे थे,

इसलिए नाना साहब के अपने डिब्बे से उतर कर स्टेशन के फाटक तक पहुँचने से पहिले ही हम कार में बैठकर स्टेशन से रवाना हो चुके थे। हमारे रवाना होने तक हमने उन्हें गाड़ी से उतरते न देखा था।

हम चन्दू के मित्र के साथ सीधे नाना साहब के घर पहुँचे। दरवाजा बन्द था। हमने उसे खटखटाया, तो वह खोल दिया गया।

दरवाजे में ही लीला की माँ खड़ी थी। हमें देखते ही वह जोर से चिल्ला पड़ी—

"ओ! तुम! लीला कहाँ है?"

८

तरुण पीढ़ी

सब बातों का एकदम स्पष्टीकरण हो गया। प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि यह सब नाना साहब की झुठाई थी।

मैंने कहा, "लीला के बारे में आप कैसे पूछ रही हैं?"

वह कुछ देर तक मेरे मुँह की ओर देखती ही रही, जैसे मेरी बात को वह समझी ही न हो। मैंने फिर पूछा—"ऐसा प्रश्न क्यों किया आपने?"

वह बोली, "लीला बहुत बीमार थी न?"

"वाह! बहुत खूब!" चन्दू बोला, "उधर जाकर हमसे कहा कि तुम मृत्यु-शैया पर पड़ी हो—और यहाँ तुम से यह कहा कि लीला सख्त बीमार है—वाह भई! यह भी खूब रही! अच्छा चमका दिया नाना साहब ने।"

"मतलब? तो क्या लीला बीमार नहीं है।" उसने फिर पूछा।

हम उत्तर दे ही रहे थे कि इसी समय नाना साहब भी आ धमके। आते ही उन्होंने जमदग्नि के अवतार का ठाट बनाया। वे बड़े जोर से हम पर बरस पड़े—"मेरे घर से निकल जाओ। एक तो मेरी लड़की भगा ले गए और अब यहाँ आकर मेरी ही बदनामी कर रहे हो। बद-माश कहीं के?"

चंदू बोला, "अभी तक तो तुम्हारी बदनामी नहीं की। तुम्हें आने में यदि और देर हो जाती, तो तुम्हारी बदनामी नहीं, तुम्हारी शिकायत करता तुम्हारी पत्नी से। तुम्हारी झूठ का पर्दाफाश करता।"

नाना साहब उसी प्रकार के उग्र स्वरूप में बोले, "क्या मेरी शिका-

यत करते ? मैंने क्या भूठ किया ?"

"वही वताता हूँ ।" चंदू बोला, "तुम मथू के घर जाकर रोये थे कि लीला की माँ सख्त बीमार है, मौत की घड़ियाँ गिन रही है । यह सामने कौन खड़ी है ? क्या यह लीला की माँ नहीं है ? क्या यह मृत्यु-शैया पर पड़ी है ?"

"अच्छा, अच्छा ! कहा था ।" नाना साहब बोले "तो क्या विगड़ गया इस में ? तुम ने मुझ से चालाकी क्यों की ? स्टेशन से मेरी लड़की को क्यों भगा ले गये ?"

"ठहरो—लड़की किसने भगाई ?" चंदू बोला, "तुम्हारी लड़की अपने आप हमारे घर आई थी । तुम उसका विवाह एक गुन्डे से करना चाहते थे । इसलिए वह तुम्हारा घर छोड़कर आश्रय के लिए अपनी चाची के पास गयी । वह शाला में जाती थी । शाला जाते समय तुमने उसे जवरदस्ती पकड़कर गाड़ी में विठाया और भगाने की कोशिश की। फिर वताओ, लड़की भगाई किसने ? तुमने या हमने ? हम तो उसे पकड़कर गाड़ी में विठाकर जवरदस्ती नहीं ले गये थे ?"

नाना साहव बोलते समय हकलाने लगे । बोले, "होगा, होगा ? तुम जैसा कह रहे हो, वही हुआ था । पर याद रखो, लड़की मेरी है । मेरा उस पर अधिकार है । तुम कौन होते हो मेरे काम में दखल देने वाले ?"

"लड़की पर किसका अधिकार है, यह तो अदालत ने ही निर्णय दे दिया है ।" चंदू शान्तिपूर्वक बोला, "लड़की आपकी है, यह सच है । पर आप उसके साथ मनमाना वर्ताव करना चाहें, तो यह करना सहज नहीं आप उसे बेंच नहीं सकते । यदि वह वालिग है, तो आप उसे जवरदस्ती किसी के गले नहीं बाँध सकते । जव वह नावालिग थी, उस वक्त यदि आप उसका किसी से विवाह कर देते, तो आज का यह प्रसंग उपस्थित न न होता । जव कि उसने वालिग होने तक आपने उसे अविवाहित रखा, तो अव आपको उसकी इच्छा के अनुसार सव काम करने होंगे ।"

सीधी तरह से उत्तर देने के बजाय नाना साहव अनाप-सनाप बकने

लगे। इसका भी कोई ख्याल न कर कि पड़ोस में सभ्य लोग रहते हैं उन्होंने गंदी और घिनौनी भाषा का प्रयोग करना शुरू कर दिया। उनकी भाषा इतनी गंदी थी कि वे यह भी भूल गये थे कि वे अपनी ही लड़की के बारे में कह रहे हैं।"

मैंने चंदू से कहा, "चलो, हम लोग अब चलें।"

नाना साहब दरवाजा रोक कर खड़े हो गये। बोले, "क्यों मैं तुम्हें सीधी तरह जाने दूंगा ? मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम लोग मेरे घर में घुस पड़े हो। अभी तुम पर नालिश करके हथकड़ियाँ डलवाये देता हूँ। तुम ने मुझे समझा क्या है ? तुम्हारी बदमाशी हर अखबार में छपवाये देता हूँ। मैं कौन हूँ, यह शायद तुम लोग भूल गये। मैं चाहे जिसे बदनाम करने की क्षमता रखता हूँ। तुम पर चाहे जो झूठा अभियोग लगाऊँगा और तुम्हें जेल में ठूंसे बगैर न रहूँगा। तुम हो किस खेत की मूली ? तुम जाओगे कैसे, बच्चा जी !"

लीला की माँ को नाना साहब का यह बर्ताव अच्छा नहीं लगा। उसने हाथ पकड़कर उन्हें खींचा और जबरदस्ती घर के भीतर ले गयी और हम उनके घर से बाहर निकले।

दोपहर की गाड़ी से हम फिर बम्बई लौट आए। स्टेशन से सीधे ही घर गये। लीला शाला नहीं गयी थी। हमारी प्रतीक्षा करती हुई घर ही बैठी थी। हमें आये देख, उसने कहा, "क्यों, विश्वास हो गया न ?"

मैंने कहा, "आखिर तुम्हीं होशियार निकली। कम-से-कम पहले के अनुभव से तो मुझे सावधान हो जाना चाहिए था। परन्तु जब उन्होंने यही कह दिया कि तुम्हारी माँ के प्राण घड़ी-दो घड़ी के मेहमान हैं तो मुझे शंका हुई। मान लो, सचमुच तुम्हारी माँ बीमार होती और सिर्फ शक करके हम तुम्हें न भेजते, तो जन्म भर यह शूल हमारे हृदय में चुभता रहता। यह जरूर सच है कि हमारा वहाँ जाना व्यर्थ रहा, पर इससे हम थोड़े अक्लमंद तो हो गये।

लीला ने चाय बनाई। चाय पीकर चंदू घर जाने के लिए उठा। जाते समय उसका मुँह फीका पड़ गया। वह घर जाने के लिए कुछ हिचकिचा-सा रहा था। यह देखकर मैंने पूछा, "घर में क्या बताकर आए थे ?"

"गप्प मार दी थी।" चन्दू बोला, "झूठ बोले बिना चारा ही न था। यदि सच बोलता, तो तुम्हारे साथ पूना कैसे चल सकता ? घर में यह कह दिया है कि कल सुबह लौट आऊँगा और अगर अभी घर पहुँच गया, तो उसे शक होगा। उससे कहा है कि अदालत में ही काम है। अदालत के काम दोपहर को होते हैं। अगर मैं उससे यह कहूँ कि दोपहर से पहले मैंने काम समाप्त कर लिया और चला आया, तो यह उसे सच न लगेगा। इसलिए आज रात को मुझे कहीं रहकर कल सुबह ही घर पहुँचना चाहिए, तभी मेरी बात जम सकेगी।"

"तो फिर यहीं रह जाइए न !" लीला बोली। "अब जितना ढोंग कर चुके हैं उतना ही रहने दीजिए। यहाँ से कल सुबह जाइए जिस से सरूबाई को कोई शक न होगा।"

जो चन्दू जाने वाला था, वह फिर कुर्सी पर बैठ गया। लीला ने यद्यपि मेरे मन की ही बात कह दी थी, फिर भी उसका यह कहना मुझे अच्छा न लगा। अपने मन की इन दो परस्पर विरोधी लहरों को देख मुझे अपने आप पर ही आश्चर्य हुआ।

मैंने कहा, "अगर अभी जाकर उससे यह कह दो कि पेशी की तारीख बदल गयी है, तो क्या काम नहीं चलेगा ?"

चन्दू कुछ देर तक सिर पकड़े बैठा रहा। उसके मस्तक पर सलवटें खिच गयी थीं।

लीला बोली, "चाची, आप तो बेकार की कोई बात निकाल देती हैं। क्या हो गया यदि एक रात वे यहीं रह गये तो ? मैं तो हूँ यहाँ ?"

लीला का यह उत्तर बाण की तरह मेरे मर्म में चुभ गया। वह क्यों कहे कि "मैं तो हूँ यहाँ ?" मतलब यह कि वह भी अब समझने

लगी है। मेरा संकोच कहाँ है, इसकी कल्पना लीला को भी आ गयी थी, यह देखकर मुझे अपने आप पर शर्म आयी।

चन्दू कुर्सी पर अपना माथा रगड़ता हुआ बैठा था। झट से कोई निश्चय करके उसने सिर पर टोपी रखी और चिढ़े हुए स्वर में यह कह कर कि, "मैं जाता हूँ," वह कमरे से बाहर निकल पड़ा।

उसके दृष्टि से ओझल होने तक लीला गैलरी में खड़ी हुई रास्ते की ओर देख रही थी। वह भीतर आई और बोली, "आप सयानी हैं। मुझ से बड़ी हैं। इसलिए मुझे कुछ कहना नहीं चाहिए—परन्तु यह निरी मूर्खता है। मन यदि निर्मल है, तो दुनिया की परवाह क्यों करनी चाहिए ?"

मैंने कहा, "मन की निर्मलता का और बदनामी का कोई सम्बन्ध नहीं। मन को कौन देखता है ? हर व्यक्ति बाहरी प्रमाणों की ओर ध्यान देता है– जो वह देखता है, उसे मानता है। इसलिए दुनिया से डरना पड़ता है। और फिर जिसे सार्वजनिक जीवन बिताना होता है— जिन्हें जनता की सेवा करनी होती है, उन्हें इस बात की सावधानी बरतनी पड़ती है कि उनके आचरण पर कोई कलंक न लगे। साधारण तौर पर किसी भी जन-सेवी को बदनाम करने के लिए लोग बिल्कुल घात लगाए बैठे रहते हैं। इसीलिए ऐसे लोगों को अपनी बदनामी न हो इसके लिए दूसरों की अपेक्षा अधिक चौकन्ना रहना पड़ता है। मुझे भी लगता था कि चन्दू न जाए, परन्तु मैंने उसे आग्रह करना न चाहा।"

लीला बीच ही में बोल उठी, "यह आपकी कायरता है, चाची ! आप कैसी भी रहें, पर अगर लोगों को बदनाम करना होगा, तो वे आप को चाहे जिस तरह से बदनाम कर देंगे। मन की ओर तो कोई भी नहीं देखता। जब ऐसी बात है तो लोगों से क्या डरना चाहिए ? यदि इस डर से कि लोग मुझे बदनाम करेंगे, मैं पूना में ही रही आती तो आज जीवन-भर के लिए दुखी हो जाती। जो कुछ बदनामी होनी थी, वह हो ही गयी है। समाचार पत्रों में मेरा हाल छप गया। लोग

चार दिन चर्चा करेंगे और उसके बाद चुप बैठ जाएँगे। मान लीजिए, कल मैं कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हो गयी, तो पहिले की बात कोई निकालेगा ही नहीं। शायद उसी के लिए मेरी प्रशंसा भी करने लगेंगे। मेरे जीवन-चरित्र में उसे ही बड़ा महत्व दे देंगे। क्या आप यूं नहीं सोचती ?"

मैंने कहा, "बहुत दिन विलायत में रहने के कारण यहाँ के लोगों की मन:स्थिति मैं भूल गयी हूँ। यह बात कुछ देर के बाद मेरे ध्यान में आती है। मेरा सम्पूर्ण जीवन दुख में बीता था, इसलिए पहिले के दुख को भूल जाने का मैंने अभ्यास किया है। उसे याद करने की जान-बूझकर कोशिश करनी पड़ती है, इतनी गहराई तक मैंने उस याद को गाड़ दिया है। मेरी निन्दा भी हुई है और स्तुति भी हुई है। परन्तु निन्दा और स्तुि. की मैंने परवाह नहीं की और इसीलिए आज मैं इस तरह खड़ी हूँ। जब मुझे इसकी याद आती है तब मुझे लगने लगता है कि तुम जो कह रही हो, वह सच है।"

लीला के चेहरे पर अभिमान की मुस्कराहट चमक उठी। उसे लगा, अपनी विदुषी चाची को मैंने हरा दिया। इसलिए मैंने कहा, "सिद्धान्त की दृष्टि से तुम्हारी याद भले ठीक हो, पर सार्वजनिक दृष्टि से वह ग्राह्य नहीं होगी। मेरा ही उदाहरण लो। मुझे स्वयं अच्छा नहीं लग रहा था। तुम यहाँ हो, फिर भी मेरे मन को यह किसी तरह जँचता ही न था कि रात को चन्दू यहाँ रहे। तुम से छिपाकर क्यों रखूं ? तुम तो कल्याण से यहाँ लौट आयी और हम डिब्बे में दोनों अकेले ही थे, उस समय भी मैं बेचैन हो उठी थी। सारी रात मुझे शान्ति से नींद न आई। मन पर का यह धर्म मनुष्य को किस तरह बेचैन कर देता है इसे तुम आज बताने पर भी न समझ सकोगी। वैसी परिस्थिति आनी पड़ती है। ईश्वर करे और वह परिस्थिति तुम्हारे भाग्य में न आए। विधवा का जीवन बड़ा दुर्धर होता है।"

मेरे इन उदासीन उद्गारों को सुनकर लीला को दुख हुआ। वह बिल्कुल लज्जित होकर बोली, "माफ कीजिए चाची ! मैंने भूल की।

आपका कुंकुम देखकर 'आप विधवा हैं' यह मेरे ध्यान में ही नहीं आया।"

लीला की बात सुनकर मैंने एक प्रकार के गर्व का अनुभव किया। कुंकुम लगाने के कारण बिल्कुल मेरे आत्मीय को भी मेरे विधवा होने का विस्मरण हो गया। मुझे लगा कि मेरे प्रयोग की यह कितनी बड़ी जीत है।

लगे हाथ फिर मन में आया, कि लीला को विस्मरण हो गया, यह ठीक है। परन्तु मेरे इस कुंकुम का चन्दू की मनोवृत्ति पर क्या कोई परिणाम हो रहा है? मेरा वैधव्य वह भूल जाता है क्या? अथवा न भूल कर जबरदस्ती ही उसका उल्टा अर्थ लगा लेता है?

लीला बोली—"आप क्या सोच रही हैं, चाची?"

मैंने उत्तर दिया—'सोचने लायक बहुत-सी बातें मेरे जीवन में हुई हैं। उनकी याद कभी-कभी इस प्रकार जाग उठती है। मुझे पहिले की एक बात याद हो आई। तुम्हें मैं अंग्रेजी पढ़ा रही थी। उस समय अंग्रेजी अक्षरों से लिखी तुम्हारी स्लेट नाना साहब ने जब देखी, तब एक लात मार कर स्लेट फोड़ डाली थी। उस दिन से तुम्हें अंग्रेजी पढ़ाना मैंने बंद कर दिया था। पर मेरे विलायत जाने के बाद तुम अंग्रेजी शाला में पढ़ने जाने लगी—नहीं, नाना साहब ने खुद तुम्हें अंग्रेजी शाला में कैसे भेजा और इतना क्यों पढ़ने दिया, इसी का मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।"

"बात यह है, चाची!" लीला बोली, "यह सब केसरी आफिस का प्रभाव है। वहाँ का तूफान अब कुछ शांत हो गया है। पहिले जैसी कर्मठता अब वहाँ नहीं रही है। केसरी आफिस के बड़े-बड़े संपादकों की लड़कियाँ अंग्रेजी शाला में जाने लगी हैं। इसीलिए नाना साहब ने मुझे भी अंग्रेजी शाला में भेजा था। आजकल के वहाँ के सम्पादक भी नयी और पुरानी सीमा पर खड़े हुए हैं। उनके मतों का प्रभाव नाना साहब पर पड़ जाने के कारण मेरी किस्मत खुल गयी।"

मैंने हँसकर कहा—"इतने ही कारण से यदि लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होती हो, तो मैं यही कहूँगी कि ईश्वर करे और इसी तरह

के सम्पादक केसरी को हमेशा मिलते रहें। अब जब कि तुमने केसरी का हवाला दे दिया, तो इस विषय में अब कोई बात करने की गुंजाइश ही नहीं रही, क्योंकि केसरी का वाक्य नाना साहब के लिए वेद-वाक्य है, यह मैं जानती हूँ।"

हम बातें कर रही थीं, इसी समय चन्दू लौटकर आया। दरवाजा खटखटाया गया, तभी मेरे मन में शंका आई। इतनी रात को मेरे घर का दरवाजा और कौन खटखटायेगा ?

मैंने दरवाजा खोला और चन्दू भीतर आया।

उसका चेहरा बड़ा भयानक हो गया था। भीतर आते ही वह एक आराम कुर्सी पर बैठ गया।

मैंने कुछ भी न पूछा। उसकी उस मनःस्थिति में उससे कुछ पूछना मुझे उचित प्रतीत न हुआ।

पर वह स्वयं ही बोल उठा—"अन्त में जो होना था, वही हुआ। उसे मुझ पर शक हुआ। पुनः हम दोनों में झगड़ा हुआ। आज उसने इतनी कुत्सित बातें कहीं कि उन्हें सुनने के बाद एक क्षण के लिए भी वहाँ ठहरना मुझे उचित न जान पड़ा और मैं चला आया। उससे कह आया हूँ कि सुबह यह सुनने के बाद ही कि तुम मायके चली गयी हो मैं घर में कदम रखूंगा। यह सुनकर उसने जो उद्गार निकाले वह इतने गंदे थे कि उन्हें न कहना ही अच्छा !"

मेरे सामने कठिन पहेली उपस्थित हो गयी। जो मैं नहीं चाहती था, वही हो गया। इच्छा न होते हुए भी मैंने चन्दू को भगा दिया था, तो यह क्या मेरी गलती थी ? सुबह तक यदि वह यहीं रहा आता तो यह झगड़ा न होता। अब जो होना था, सो हो गया। और जो न होना चाहिए था, वह हुए बिना अब कोई चारा नहीं। ऐसा विचित्र प्रसंग आ धमका।

मेरे जीवन में आने वाली इन भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्यायों को देखकर मेरा मन भौचक्का हो जाता। यह कैसा योगायोग कि कभी

कोई बात सुचारु रूप से होती नहीं ?

बहुत देर तक बिना कुछ बोले हम चुप बैठे रहे। लीला के उतावले स्वभाव को वह स्तब्धता बरदाश्त न हुई। वह अन्त में बोल ही पड़ी।

"आप दोनों की अपेक्षा आखिर मैं ही अधिक होशियार हूँ। मैं आप से कह रही थी, न जाइए, पर आप चले गये। चाची ने आपको जाने के लिए मजबूर कर दिया। आप देख लीजिए कि नतीजा क्या हुआ ? दो पीढ़ियों की विचार-धाराओं में यही तो फर्क है। मुझे लगता है कि लड़के बूढ़ों की बातें मानें, ये दिन अब धीरे-धीरे लदने लगे हैं। उलटे ऐसे दिन आने लगे हैं जब कि सयानों को छोटे लड़कों के मतानुसार ही चलना होगा। मेरा ख्याल है कि ऐसे दिन आएँगे, यह आगरकर ने ही भविष्य-कथन कर दिया था। नाना साहब केसरी आफिस में है, इ। कारण हमारे घर आगरकर का नाम लेना भी अपराध है। जब मैं यह देखने लगी कि जिसका नाम लेना भी हमारे घर में गुनाह माना जाता है, वह आखिर हैं कौन ? तब आगरकर की पुस्तकें पढ़ना मैंने शुरू किया। उन पुस्तकों के पढ़ने के बाद मेरे मस्तिष्क में प्रकाश पड़ा और यही कारण है कि मेरे विचार ऐसे हो गये हैं।"

लीला लगातार आगरकर के लेखों के बारे में बोल रही थी। वह बता रही थी कि भिन्न-भिन्न विषयों पर उनके मत क्या हैं, उन्होंने स्त्री और पुरुषों की पोशाकों में भी परिवर्तन करने के क्या-क्या सुझाव दिये हैं, उनके मत ऊपरी तौर पर किस तरह विक्षिप्त-से लगते हैं। पुराण-पंथी लोगों ने उनके जीवित रहते समय, उन्हें किस तरह तंग किया और उनकी मृत्यु के बाद भी उनके लेखों का किस तरह बहिष्कार किया, ये सब बातें वह बड़े उत्साह और दिलचस्पी से सुना रही थी। मेरी उस समय की मनः स्थिति में उसकी इस बकबक से मेरे मन को थोड़ा विश्राम मिला।

चन्दू बोला—"मैं यहाँ इस कुर्सी पर ही सो जाता हूँ। उसके कुत्सित शब्दों के बाणों ने मेरे मर्मस्थान को इस बुरी तरह से छेद डाला है कि

मुझे नींद आए, यह संभव ही नहीं। पड़ा रहूँगा इसी कुर्सी पर रात-भर तड़पता हुआ। नौकर से कह आया हूँ कि सवेरे जब वह चली जाए तब आकर मुझे खबर दे। आते समय रुपये फेंक आया हूँ उसके सामने किराये आदि के लिए। मेरा विश्वास है कि वह शायद रहेगी नहीं, चली जाएगी।"

"मेरा विश्वास है कि वह नहीं जाएगी।" लीला ने स्वर में निश्चय भरकर कहा।

"तुम्हें बड़ा घमण्ड हो गया है।" लीला से चन्दू ने कहा—"तुम्हारी एक-दो बातें ठीक निकल गयीं, इसलिए यह भी ठीक ही निकलेगी, ऐसा मत समझो।"

लीला बोली, "यह तीसरी बात भी ठीक निकलनी ही चाहिए। मेरा पूर्ण विश्वास है।"

माथे पर शिकनें फैलाकर चन्दू बोला—"तुम यह नहीं जानती कि वहाँ क्या हुआ, इसीलिए ऐसा कह रही हो। खैर, छोड़ो भी!"

वह रात उसी तरह बीत गयी। लीला अलबत्ता शान्ति से सोयी हुई थी।

दूसरे दिन हम चाय पर बैठे थे। इसी समय चन्दू का नौकर आया। चंदू का चेहरा खिल उठा।

नौकर बोला—बाई साहब नहीं गयीं और कहती हैं कि जाऊँगी भी नहीं। आपको बुलाया है।

चन्दू का चेहरा गिर गया।

लीला बोली—"चाची! मिलाइए हाथ!"

सफेद साड़ी

चंदू फिर सिर पकड़कर बैठ गया। वह चली जाएगी, ऐसा उसका पक्का विश्वास था। उस झूठी आशा के कारण उसे धक्का लगा।

मुझे पहिले से ही संदेह हो रहा था, इसलिए मुझे इसका विशेष आश्चर्य नहीं हुआ।

एक लम्बी साँस खींचकर चंदू बोला, "बस, यही करना होगा! इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं। पुन: परीक्षा में बैठना होगा। कैसे मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गये थे जो डॉक्टरी छोड़कर मैं वकालत के दल-दल में आ फँसा। यदि डॉक्टर होता तो कम से-कम दवाखाने में ही अपने आपको चौवीसो घन्टे काम में व्यस्त रख सकता। डॉक्टर की गृहस्थी पर बहुधा किसी का ध्यान नहीं जाता। परन्तु वकालत का पेशा बेकारों का पेशा है। ऐसे वकील ही आपको मिलते हैं जिसके पास काम कम और फुरसत ज्यादा होती है। इस कारण शहर के लोगों की बद-नामियाँ करने के सिवा उनके पास दूसरा काम नहीं होता। अब अदालत में मैं मुँह नहीं दिखा सकता। घर न जाने का तो मेरा दृढ़ निश्चय है। अब या तो "सरदार गृह" में या "माधवाश्रम" में जाकर रहूँगा। फिर देखता हूँ वह गृहस्थी कैसे चलाती है? एक कानी कौड़ी भी न दूँगा मैं उसे। जब मालिक-मकान किराया माँगने आएगा, तब खट-से आँखें खुल जाएँगी उसकी। फिर आप ही आप झख मारकर चल देगी अपने मायके। इसके सिवा अब दूसरा उपाय नहीं। वह मुझे परेशान करती है, तो मैं भी उसे परेशान करूँगा।"

इस पर मैं क्या कह सकती थी? मुझे कुछ सूझता ही न था। यह

कहना कि मेरे घर आकर रहो, मेरे लिए संभव ही न था। यदि यह संभव होता, तो क्या मैं ही जाकर उसके घर न रह जाती ?

अपने दुख को स्वयं सहन करने के सिवा उसके पास अब दूसरा उपाय न था। यदि समाधान के भी चार शब्द कहना चाहूँ, तो उसके लिए भी मौका न था।

लीला बोली, "इसीलिए मेरे मन में आता है कि मैं विवाह ही न करूँ। कौन कैसा मिल जाये, इसका कोई भरोसा नहीं होता। जन्म भर पति-पत्नी सुख और समाधान में रहे हुए दिखायी देते हैं, परन्तु ठीक मातृ-पद की सीमा पर उनमें मन-मुटाव हो जाता है और फिर वह दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए भगवान ही बचाये विवाह से !"

चन्दू उठा और कपड़े पहिनने लगा।

मैंने कहा, "अब कहाँ जा रहे हो ?"

कुछ भी न कहकर वह कपड़े पहिन कर बाहर चल दिया। उसकी मुद्रा से यह नहीं दीख रहा था कि उसने कोई बात निश्चित की है।

मैं एक पूर्व-स्मृति को अपनी नजरों के सामने लाने लगी। वह पहिले की धीर गंभीर वृत्ति कहाँ विलुप्त हो गई ? विषम विवाह के कारण एक सीधे-सादे मनुष्य का जीवन किस तरह मिट्टी में मिल गया और अब यह पहेली हल कैसे हो ? ऐसी परिस्थिति में चंदू को क्या करना चाहिए ? मैंने बहुत से उपायों को सोचकर देखा, परन्तु प्रस्तुत परिस्थिति से जो ठीक से मेल खा जाए, ऐसा एक भी उपाय मुझे न सूझा।

लीला बोली, "क्या सोच रही हैं, चाची जी ?"

मैंने उत्तर दिया, "प्रस्तुत परिस्थिति के बारे में ही सोच रही हूँ। तुम्हीं बताओ, चंदू को अब क्या करना चाहिए ?"

"रोना चाहिए।" लीला बोली, "मनमाना रोना चाहिए। जो लोग आगे की न सोचकर विवाह के पाश में अपने आपको फँसा लेते हैं, उन पर किसी को क्यों रहम दिखाना चाहिए ? क्या महाशय मूर्ख थे ? क्या इनके आँखें न थी ? या कि इनसे पता लगाते नहीं बनता था।

लड़की कैसी है ? उसका परिवार कैसा है, परिवार के लोग किन मतों के हैं ? हमारा उसके साथ जन्म का नाता जुड़ सकेगा या नहीं ? इसका ठीक से विचार करके उसे अच्छी तरह कसौटी पर कसने के बाद ही उन्होंने अपनी स्वीकृति क्यों नहीं दी ? और अब ऐसा प्रसंग आ जाने पर दोष किसको दिया जाए ? फिर दोष देने को भाग्य है ही ! जहाँ यह कह दिया कि मेरे भाग्य में ही यह लिखा था, कि सारी पहेली आप-ही-आप सुलझ जाती है। परन्तु पहिले स्वयं ही आग में हाथ डालकर जला लेना और फिर अपने ही भाग्य पर आँसू बहाना, सो क्यों ?"

लीला के इन उद्‌गारों को सुनकर मैं शर्मिन्दा हो गई। जिसे मैं कल की लड़की समझ रही थी, वही आज मुझे अक्ल सिखा रही थी। और मैं उसे कोई उत्तर नहीं दे सकती थी। मैं मन-ही-मन उसकी सराहना करने लगी। किसी आधुनिक तत्ववेत्ता ने कहा है कि आगामी पीढ़ी पिछली पीढ़ी की जनक है और इस समय वह बात मुझे जँचने लगी।

मैं शाला गयी। लीला भी शाला गई। पढ़ाने में मेरा मन नहीं लग रहा था। चंदू का क्या हुआ होगा, यही विचार मन में बार-बार उठ रहा था। क्या वह भूखा होगा, अथवा उसने भोजन कर लिया होगा वह अदालत गया होगा या कि कहीं दूसरी जगह चल दिया होगा—अगर उसका उस दिन कोई केस होगा, तो उसने उसकी क्या व्यवस्था की होगी ? इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, बल्कि हजारों विचार मेरे मन को बरबस मथ रहे थे। शायद लड़कियों के भी ध्यान में आ गया कि आज मेरा मन पढ़ाने में नहीं लग रहा है। एक लड़की ने तो साफ-साफ मुझ से पूछा ही, "बहिन जी, क्या आज आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है ?"

मैंने अपने आपको सँभालने का प्रयत्न किया और मन के विचारों को एक ओर हटाकर, पढ़ाने में अपना मन लगाया।

शाम को जब घर आयी तो देखा कि लीला पहले ही आ चुकी थी। मुझे देखते ही उसने पहिला प्रश्न पूछा, "क्या आपको कुछ पता चला ?

मैंने गरदन के इशारे से ही 'ना' कहा और अपने कमरे में चल दी।

लीला मेरे पीछे-पीछे कमरे में आयी और बोली, "क्या मैं उनके घर जाकर पता लगा आऊं ?"

मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ। चन्दू के घर का हाल जानने के लिए मैं बुरी तरह तड़प रही थी, परन्तु मेरे मन में यह नहीं आता था कि लीला उसके घर जाए। मान लो लीला वहाँ गयी और सरूबाई ने उसका अपमान कर दिया तो ? मैं स्वयं सरूबाई का अपमान सहन कर लेती, परन्तु लीला से यह नहीं होगा। वह उसे तड़ाक-फड़ाक उत्तर दिये विना न रहेगी, ऐसा मुझे पक्का विश्वास था। यूं ही एक झगड़ा खड़ा हो जाएगा, इसलिए मन में यह तय करके कि कोई पूछ-ताछ न करना ही अच्छा, मैंने लीला से कहा, "थोड़ी देर के बाद चन्दू ही यहाँ आएगा। तब तक हम धैर्य रखें। वहाँ का हाल जानने के लिए जितनी उतावली तुम हो, उतनी ही मैं भी हूँ। परन्तु वहाँ तुम्हारा जाना मुझे उचित नहीं लगता।"

लीला बोली, "मैं जानती हूँ कि आप मुझे वहाँ जाने से क्यों रोक रही हैं ? परन्तु आप कोई चिन्ता न करें। मैं बड़ी पक्की हूँ। सरूबाई ने मुझ से यदि कुछ अनाप-सनाप कहा, फिर भी मैं उसकी कोई परवाह न करूँगी। उसे कोई उत्तर भी न दूंगी। मैं वहाँ का हाल जानने के लिए बड़ी उत्सुक हो रही हूँ। मेरे मन में न जाने क्यों भले-बुरे विचार आ रहे हैं। जब तक वहाँ जा कर अपने मन को संतोष न दे दूं तब तक मुझे चैन नहीं। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो एक बार हो ही आने दीजिए।"

मेरी इच्छा न थी। फिर भी उसकी तीव्र इच्छा देखकर मैंने उसे जाने की अनुमति दे दी ?

लीला को गए मुश्किल से दस मिनट भी नहीं हुए थे की चन्दू आ पहुंचा। उसे देखते ही मैंने पूछा, "कहो, क्या समाचार है ?"

कुछ न बोल कर वह कुर्सी पर बैठ गया और टोपी उतार कर दूर फेंकता हुआ बोला, 'अब क्या समाचार बताऊँ ? सच बताऊँ, आज दिन

भर से भूखा हूँ। एक-दो बार होटल से चाय मँगाकर पी थी। बस ! उतनी ही मेरे पेट में है। डबल रोटी और मक्खन भी मँगाया था, परन्तु जीभ इतनी सूख गई थी कि वह गले के नीचे ही नहीं उतरता था।"

मैंने कहा, "तो यहीं नहाओगे ? पानी गरम करा दूं ? मुझे भी अभी खाना खाना है, तुम भी गरम-गरम दाल-भात खा लेना तो तुम्हारा चित शान्त हो जाएगा। यूं उपवास करने से क्या होगा। जो होना था सो तो हो गया। उसके लिए अब कोई उपाय नहीं। फिर मन को व्यर्थ कष्ट देने से क्या हासिल ?"

"यही मैं चाहता था।" चन्दू पागल की तरह बोल उठा।

"तुम क्या चाहते थे ?" मैंने पूछा।

"कुछ नहीं।"

मैंने भीतर जाकर नौकरानी से पानी गरम करने के लिए कहा। चन्दू पैजामा पहने था। नहाने के बाद वह पहनेगा क्या ? यह सवाल मेरे सामने खड़ा हुआ। मेरे घर में पुरुषों के वस्त्र कहाँ से आए ? हम औरतों की गृहस्थी में धोती कहाँ मिल सकती थी ?

मैंने बाहर आ कर चन्दू से पूछा, "चन्दूजी, मेरे यहाँ धोती नहीं। यदि मैं स्नान के बाद पहनने के लिए अपनी एक सफेद साड़ी दूं तो तुम्हें कोई आपत्ति तो न होगी ? तुम अपना पैजामा धोकर सूखने तक साड़ी पहने रहना। मेरी साड़ी कोई अठारह हाथ लम्बी नहीं है, इसलिए वह तुम्हें बड़ी नहीं होगी। साड़ी पाँच गजी है, बहुत ही हुआ तो तुम ऐसे दिखोगे, जैसे नागपुरी धोती पहिनें हो।"

मेरी बात सुनकर वह हँस पड़ा, परन्तु उस की रोनी सूरत पर वह हँसी बड़ी अजीब-सी लगी। उसके कारण उसका चेहरा और भी अधिक दयनीय दिखने लगा।

मैं बेचैन हो उठी। अनाप-सनाप विचार मेरे मन में आने लगे। मेरी साड़ी वह पहने, यह कैसा योगायोग ?

वह जहाँ बैठा था वहीं सो गया। मैं भी एक पुस्तक पढ़ने लगी।

लीला अभी तक लौटी न थी। सरूबाई के घर लीला का क्या हुआ होगा, इस विचार से पढ़ने की ओर मेरा ध्यान ही न लगता था।

जब नौकरानी ने आकर खबर दी कि पानी गरम हो गया है तब मैंने चन्दू को पुकारा। उसे गहरी नींद लगी थी। मैंने दो-चार बार पुकार कर देखा परन्तु वह जागता ही न था।

मैं डर गई। मैंने उसका हाथ पकड़ कर उसे हिलाया।

वह जागा, पर मुझे अलबत्ता धक्का लगा। इससे पहिले मैंने कभी उसे स्पर्श न किया था। उस स्पर्श के कारण मेरे मन में अजीब-सी कल्पनायें मँडराने लगीं। उन कल्पनाओं में गृहस्थी का चित्र मैं देखने लगी। ऐसा लगने लगा जैसे विवाहित होकर हम दोनों ने गृहस्थी सजाई है, और मैं उसे जगा रही हूँ। कुछ ऐसा अस्पष्ट सा चित्र मेरी नजरों के सामने झूल गया और क्षण-भर के लिए मैं अपना होश खो बैठी।

चन्दू नहाने चल दिया। इसी समय लीला लौट कर आई। उसका चेहरा प्रफुल्लित था। उसे प्रफुल्लित देखकर मेरे मन का भय जाता रहा।

मैंने पूछा, "क्या हुआ लीला ?"

लीला बोली, "अजी वह औरत बड़ी नटखट है। कुछ भी पता नहीं लगने देती। उसे आप बिल्कुल बेवकूफ न समझना। मैं जब पहुँची तो उसने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया। चाय भी बना कर पिलाई। वह इस तरह बनकर बातें करने लगी जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। मैंने जब पूछा कि चन्दू काका कहाँ गए, तो बोली, "कोर्ट से अब लौटते ही होंगे।" उसका यह उत्तर सुनकर मैं दंग ही रह गई। मैं उसे यह नहीं बताना चाहती थी कि उसके घर में जो कांड हुआ है, वह मैं जानती हूँ। इसलिए जो कुछ वह कहती उसे सुनने के लिए मैं मजबूर थी। मैं उसके साथ बातें करते बहुत देर तक बैठी रही। परन्तु उस कांड के बारे में उसने एक बात भी नहीं कही। मन-ही-मन मैं उसकी तारीफ करने लगी। मैं जितना सोचती थी, उतनी भोली वह नहीं है। बड़ी पक्की है।

मैं क्यों आई, यह जानने के लिए वह मुझ से कई आड़े-टेढ़े संवाल सवाल करने लगी। परन्तु मैं भी कच्चे गुरू की चेली नहीं थी। उसी के बराबर मैं जी चंट बनी रही। जब मुझे विश्वास हो गया कि उससे कोई पता लगना संभव नहीं है तब मैं चाय पी कर वहाँ से चल दी।

लीला की बातें सुनते समय चन्दू मन-ही-मन खिन्नता से हँस रहा था। वह बोला, "अब तो तुम्हें विश्वास हुआ ?"

"कैसा विश्वास ?" मैंने पूछा।

वह यूँ ही ठहाका मार कर बोला, "यही कि वह मूर्ख नहीं, बल्कि बड़ी चंट है। अब तुम ही बताओ कि मेरी बात सच है या नहीं ?"

"वह सब सच है", मैंने कहा, "पर अब आगे तुम क्या करोगे ? क्या होटल में ही अपनी जिन्दगी बिताओगे ?"

"तो क्या यहाँ रहूँ ?" चन्दू बोला, "यहाँ भी रह जाता पर वह संभव नहीं। फिर और कहाँ जाऊँ ? बम्बई में अनाथों के लिए होटल ही एक आसरा है। आजकल जब से "माधवाश्रम" खुला है तब से मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए खाने और रहने का अच्छा सुभीता हो गया है। 'सरदार गृह' जरा मँहगा पड़ता है। इसीलिए सोचता हूँ कि माधवाश्रम में ही रहूँगा।"

थोड़ी देर सोचकर वह आगे बोला, "अब एक-दूसरा इरादा भी किया है। फिर से मेडिकल कालेज में भरती हो जाऊँगा, और डाक्टर बनूँगा।" ऐसा कह कर वह कपड़े पहनने का विचार करने लगा।

परन्तु चट से उसकी नजर पहने हुए साड़ी की ओर गई, और वह जोर-जोर से हँसने लगा। लीला की नजर भी मेरी साड़ी पर पड़ गई जिसे चन्दू पहने था, और वह भी पेट पकड़ कर हँसने लगी। सिर्फ मैं ही गम्भीर थी।

चन्दू ने कहा, "अब जब तक पैजामा नहीं सूखता तब तक मैं नहीं जा सकता। यदि धोती होती तो जल्द ही सूख जाती। पर यह ठहरा पैजामा। इसलिए अब यहीं रहे बिना दूसरा चारा ही नहीं। और पैजामा

सूखने तक इतना वक्त हो जाएगा कि फिर माधवाश्रम का दरवाजा खुला भी न मिलेगा।"

उसके मन में उस दिन मेरे घर ही रहने का विचार था, ऐसा मुझे स्पष्ट दिखाई दिया। पैंजामा सूखने का तो सिर्फ एक वहाना था, यदि पैंजामा सूख भी जाता तो वह कोई दूसरा वहाना ढूंढ निकालता।

मुझे कुछ समय पहिले की याद हो आई। मैंने उसे स्पर्श करके जगाया था। यह याद आते ही मेरे वदन में एक सिहरन-सी दौड गई थी। उसे स्पर्श करने तक मुझे कुछ न लगा, परन्तु स्पर्श करने के वाद सारी भावनाएँ एकदम जागकर खड़ी हो गई थीं। किसी भी तरह वह याद भुलाई न जाती थी।

हम लोग खाने पर बैठे। खाकर उठे। खाते समय इधर-उधर की वातें कर रहे थे, फिर भी वह याद दूर नहीं होती थी। ऐसा प्रसंग आने पर भी चन्दू उस समय वड़ा खुश दिखाई दे रहा था।

मुझे शंका हुई। उसकी खुशी का कारण भी क्या वही है? सच पूछा जाए तो लीला ने घर का जो हाल कहा था उसे सुन कर उसे चिंता होनी चाहिए थी, उसे कठिनाई महसूस होनी चाहिए थी, पर ऐसा कुछ न हो कर वह वड़ी खुशी में हँस-हँस कर गप्पें हाँक रहा था।

वार-वार मुझे यही लगने लगा कि उसकी इस खुशी का कारण वही है। और यही वात मेरे मन को अधिक चुभने लगी। पूरे जीवन में जो भूल मैंने कभी नहीं की थी वह उस दिन प्रसंगवश मुझ से हो गई थी।

चन्दू पहिले की वातें वता रहा था। उसे डायमंड लॉज की याद आ गई थी। मैं जिस समय डायमंड लॉज गई थी, उस समय की सारी वातें चन्दू लीला से कह रहा था।

मुझे भी उन वातों की याद हो आई और साथ ही उससे पहिले की भी कई वातें मेरे स्मृति पट पर उभर उठीं।

चन्दू कह रहा था कि डायमंड लॉज में ले जा कर उससे मुझे

पुरुषों में खड़ा कर दिया और अपनी स्त्री-जाति को भूल कर पुरुषों से किस तरह बर्ताव करना चाहिए, इसका पहला पाठ उस दिन उसने मुझे पढ़ाया।

इसी सिलसिले में वह बोला, "उस समय यह धर्म-भ्रष्ट होने वाली थी, ईसाई बनने वाली थी। मैं यदि इससे न लड़ता, तो मेरा विश्वास है कि यह पंडिता रमाबाई की तरह आज ईसाई हो जाती।"

मैंने कहा, "यह तुम्हारी अतिशयोक्ति है। यदि मुझे जँचता कि ईसाई होना चाहिए तो मैं उसी समय धर्मान्तर कर लेती। परन्तु धर्मान्तर न करने के लिए मुझे किस तरह झगड़ना पड़ा इसकी कल्पना किसी को भी नहीं हो सकती। विलायत में तो ऐसे प्रसंग बहुत आए थे, परंतु विलायत जाने से पहिले यहाँ हिन्दुस्तान में रहते हुए भी स्मिथबाई ने मुझे कितना लालच दिखाया था। पर मुझ पर उनका जादू न चला। आज मुझे ऐसा लगता है कि यह मेरी कहीं भूल तो नहीं हो गई ? यदि मैं ईसाई हो जाती तो मेरा क्या बिगड़ता ? मेरा मन न बदलता और देह की चमड़ी भी न बदलती और न देखने की दृष्टि ही बदलती। सिर्फ ईसाई कहने से ही कोई ईसाई नहीं हो जाता अथवा हिन्दू कहने से हिन्दू नहीं होता। नाना साहब सरीखे हिन्दू पुरुष और सरूबाई जैसी हिन्दू स्त्री देखने पर किस समझदार मनुष्य के मन में हिन्दुत्व के प्रति अभिमान जायेगा ? हिन्दू-धर्म के प्रति जाज्वल्य अभिमान रखने वाले जो कुछ लोग हैं उन्हीं में के ये दो चुनिंदा नमूने हैं। क्या हम विदेशियों के सामने इन दो व्यक्तियों को अपने हिन्दू-धर्म के नमूनों के आधार पर अपने हिन्दू-धर्म के बड़प्पन की शान बघारें ? वेद में लिखे हिन्दू-धर्म को कोई नहीं देखता। उपनिषदों से कोई परिचित नहीं। स्मृति का आधार देने के लिए हर व्यक्ति टपा बैठा रहता है। परन्तु उन स्मृतियों में क्या लिखा है, किसने लिखा है, और क्यों लिखा है ? इसका किसी को जरा भी पता नहीं। बस, मुंह से सिर्फ "हमारा हिन्दू-धर्म हमारा हिन्दू-धर्म" कहते रहते हैं। परन्तु उपनिषद-कालीन हिन्दू-धर्म के तत्व को यदि देखें तो

आज जो हिन्दू धर्म प्रचलित है उसे हिन्दू-धर्म कहें या न कहें इसी का शक होने लगता है। कैसा धर्म और कैसा अधर्म ! जहाँ मनुष्यता ही नहीं वहाँ किस धर्म के लिए लड़े ? सभी धर्मों से मुझे अब घृणा होने लगी है। किसी भी धर्म पर मेरा विश्वास नहीं जम रहा है। मुझे यह भय लगने लगा है कि मैं कहीं नास्तिक तो नहीं हो जाऊँगी। सत्य को पकड़े हुए दुनिया में ठीक न्याय से रहने की कोशिश करते हुए मेरा ऐसा छल हो, मेरे सामने पहेलियाँ उपस्थित हो, ऐसे जुल्म हों, यही क्या हमारे धर्म का अर्थ है ?"

चन्दू मुझे खिजाने के उद्देश्य से बोला, "सुन लो लीला, यह भाषण सुन लो और सावधान हो जाओ। क्या तुम नहीं सोचती कि यह भाषण बड़ा प्रभावशाली हुआ है ?"

उसकी इस बात पर मुझे क्रोध आ गया। मैं भीतर जाकर बिस्तर पर पड़ गई।

चन्दू और लीला बहुत देर तक बातें करते रहे। उनकी बातें मेरे कानों में पड़ रही थीं। पर मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। पड़े-पड़े मुझे नींद लग गई।

गुस्सा

दूसरे दिन सुवह हम चाय पी रहे थे। इसी समय एक अकल्पित घटना घट गई।

सरूवाई अचानक हमारे दरवाजे में आकर खड़ी हो गई। मैं चाय पी रही थी। उसे देखा तो आश्चर्य से दंग रह गई। लीला ने अपना प्याला नीचे रखा और वह उठकर खड़ी हो गई। लेकिन चन्दू पर उसके आगमन का कोई प्रभाव पड़ा हो ऐसा दिखाई न दिया। वह शान्ति से चाय पी रही था।

दरवाजे में कदम रखते ही सरूवाई वोली, "हाँ तो यह वात तो मैं पहिले ही जानती थी। क्या इसीलिए आप ये सव ढोंग कर रहे थे ? क्या यही है आपका पूना ? क्या यहीं आप मुकद्दमा लड़ रहे हैं ? और क्या इसीलिए आप मुझे मायके भगा देना चाहते हैं ?"

उसकी वातें सुनकर चंदू मन-ही-मन हँस रहा था। यह देखकर कि उसके हंसने के कारण सरूवाई की गलत-फहमी और अधिक वढ़ रही है, मैं वेचैन हो उठी। यद्यपि यह सच था कि हम लोग पूना गए थे, फिर चंदू की हँसी के कारण उस पर लगाया गया ढोंग का आरोप सिद्ध हो रहा था।

सरूवाई वोली, "मुझे सव पता था। होंगे आप वड़े वकील और खूव कानून लड़ाते होंगे अदालत में। अदालत में जज की आँखों में धूल झोंकना आसान है, परन्तु औरतों की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश करते हो तो आप अभी तक यह नही जानते कि उस समय के लिए औरतें अपनी आँखें वन्द कर लिया करती हैं। यह सच है कि मैं घर में आँखें

खोलकर रहती हूँ। पर उस समय आपका ढोंग देखकर मैंने कुछ समय के लिए अपनी आँखें बन्द कर ली थीं। आपने मुझे यहाँ का पता तक न लगने दिया। पर अब देख लिया आपने कि मैंने आखिर आपको खोज ही लिया न। जनाव, आप को मालूम होना चाहिए कि मुर्गे को ढाँक दें, फिर भी सवेरा हुए विना नहीं रहता। आप कोई विदेश नहीं चले गए थे। वम्वई में ही थे, गिरगाँव में कितनी देर छिपे वैठेंगे? अव आप के ये ढोंग काफी हो चुके। उठिए और चुपचाप चलिये मेरे साथ।"

चन्दू कुछ भी न वोला। मैंने कहा, "यूँ दरवाजे में क्यों खडी हैं, सरूवाई! भीतर आ जाइये न।"

उसने मेरी वात को सुनकर अनसुनी कर दी और पुनः चन्दू को लक्ष्य कर वोलने लगी, "मैं क्या कहती हूँ, यह आपके कानों में पड़ रहा है न? अव आपको साथ लिए वगैर मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी। जव तक आप नहीं उठेंगे तव तक इसी देहली पर धन्ना देकर खड़ी रहूँगी। स्वयं यहाँ से नहीं हटूँगी और न किसी दूसरे को यहाँ से निकलने दूँगी। यदि यह चाहते हो कि मैं यहाँ से हटकर दरवाजा छोड़ दूँ तो आप चुपचाप वाहर आकर मेरे साथ घर चलिये। आपकी ये चालबाजियाँ अव मैं हरगिज न चलने दूँगी।"

चन्दू विल्कुल शांत भाव से वोला, "आखिर कितने दिनों तक खड़ी रहोगी इस द्वार पर?"

"अव यह अनुभव करके ही देख लीजिए न!" सरूवाई ने उत्तर दिया।

हर क्षण मैं अत्यन्त वेचैन हो रही थी। लीला भी कुछ सोच रही थी, पर उसकी मुद्रा से ऐसा दिखता था जैसे उसे भी कुछ सूझ नहीं रहा था कि इस समय क्या किया जाए?

स्वस्थ था तो सिर्फ चंदू। उसे किसी भी वात की चिंता नहीं हो रही थी। उसकी मुद्रा से स्पष्ट झलक रहा था कि उसने मन-ही-मन कुछ तय किया है और यह निश्चय कर लिया है कि वह अपने निश्चय से

टस से मस न होगा।

वह बोला, "लीला, जाकर नौकरानी से कह दो कि बाई साहब के लिए पानी गरम करें।"

दरवाजे से सरूबाई कड़क उठी, "क्या आप नहाकर के चलियेगा ?"

इसका कोई उत्तर न देकर चंदू बाथरूम की ओर चल दिया।

लीला ने सरूबाई से भीतर आकर बैठने का बार-बार आग्रह किया, परन्तु उसने उस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। सब्जी वाली दरवाजे आकर खड़ी हुई तो उसने मुझे या लीला को सब्जी खरीदने के लिए भी दरवाजे के बाहर न निकलने दिया।

सब्जी वाली के सामने कोई तमाशा न खड़ा हो, इसलिए मैंने बिना सब्जी खरीदे ही उसे चली जाने के लिए कह दिया।

मैं लीला को साथ लेकर भीतर गई, फिर भी वह द्वार पकड़ कर खड़ी ही थी।

मैंने लीला से कहा, "अब क्या करना चाहिए ? मुझे लगता है कि वह दरवाजे से सचमुच नहीं हटेगी। हमें शाला भी नहीं जाने देगी और अगर मैं शाला न गई तो व्यर्थ ही यह बात सब जगह फैल जाएगी।

लीला बोली, "इसका इन्तजाम मैं किए देती हूँ। मैं ही जाकर चंदू काका से कहती हूँ। आप आराम से बैठिये चाची ! आप अगर बाहर जाकर बैठ जाएँगी तो उसे कोई शक न होगा।"

मैं बाहर आकर अपने लिखने की मेज के पास बैठ गयी और शाला की कापियाँ जाँचने लगी। सरूबाई उसी तरह दरवाजे में खड़ी थी। उसके निश्चय के प्रति मेरे मन में सराहना के भाव भर गए। कैसा है यह दृढ़ निश्चय ! यही यदि किसी योग्य कार्य के बारे में होता तो इसका कितना अच्छा परिणाम होता। इस दृढ़ निश्चय से यदि वह मेरे साथ पेश आती तो मैं आनन्द से चन्दू के घर रहती।

परन्तु उसके मन पर संशय का भूत सवार था। पाप की नजर को छोड़कर दूसरी कोई भी नजर उसकी आँखों में न थी।

कुछ समय के बाद चंदू बाहर आया और कपड़े पहिनने लगा। मैंने पीछे मुड़कर भी न देखा। सोचा, कहीं इतने से ही उसकी पत्नी के मन में संशय न आ जाए।

चंदू ने कपड़े पहने। हाथ में छड़ी ली और उसके देहली के पास पहुँचते ही सरूबाई भी दरवाजे से दूर हो गई।

जैसे चंदू बाहर निकला और जाने लगा वैसे वह भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

यह देखते ही कि सरूबाई चली गई है, लीला बाहर आई और फिर हम दोनों गैलरी में खड़े होकर देखने लगीं। चंदू आगे आगे चल रहा था और सरूबाई उसके पीछे-पीछे जा रही थी। उन दोनों की दृष्टि से ओझल होते ही हम फिर भीतर आईं। यह देखने के लिए कि क्या हम उसे देख रही है, सरूबाई ने एक बार भी पीछे मुड़कर न देखा। जाने क्या उसे यह भय लगा कि इतने से ही चंदू कहीं खिसक जाएगा।

हम जब भीतर आकर बैठीं तब लीला बोली, "कम-से-कम यहाँ तक तो मेरा उपाय ठीक चला।

"तुमने चंदू से क्या कहा था ?" मैंने पूछा।

वह बोली, "मैंने चंदू-काका से कहा कि आप कपड़े पहिन कर बाहर जाइए जिससे कि वह आप-ही-आप आपके पीछे-पीछे जाएगी। आप चाहें तो अपने घर जाएँ और चाहें तो न जाएँ, परन्तु शाला जाने का हमारा समय होने तक इस तरफ हरगिज न लौटिए। हमारे शाला जाने के बाद आप फिर चाहे जो कीजिए। अगर कम-से-कम आज का ही यह संकट टल जाए, तो हम समझेंगी कि हम बहुत कुछ पा गईं।"

कुछ समय तक के लिए मुझे समाधान मालूम हुआ। परन्तु फिर एक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि अगर शाम को वह यहाँ आया और उसके साथ वह भी आई, तो हम क्या करेंगी ?

लीला बोली, "मैं सोचती हूँ कि चंदू काका जरूर इसका कोई उपाय निकालेंगे। प्रसंग बड़ा विकट उपस्थित हो गया है, इसमें संदेह

नहीं। वे जहाँ-जहाँ जायेंगे, वहाँ-वहाँ उनके पीछे-पीछे यदि वह भी जाने लगी, तो उससे पिंड कैसे छुड़ाएँ इसकी उन्हें भी बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी। मेरा ख्याल है कि उन्हें अपने घर जाने के लिए ही आखिर मजबूर होना पड़ेगा। परन्तु जाते समय वे मुझ से यह कह गए हैं कि जब तक उनकी पत्नी अपने मायके नहीं चली जाती तब तक वे अपने घर नहीं जाएँगे। मैं सोचती हूँ कि वे सीधे कोर्ट जायेंगे। जायेंगे कहने की अपेक्षा यह कहना ठीक होगा कि जाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु अगर यह चुड़ैल उनके पीछे-पीछे कोर्ट में भी जाने लगी, तब वे क्या करेंगे? यह कुछ कहा नहीं जा सकता। मुझे विश्वास है कि वह कोर्ट में जाने से भी नहीं झिझकेगी।"

कापियाँ जाँचने के बाद मैं क्षण-भर के लिए आराम कुर्सी पर चुपचाप पड़ी रही। मेरा मस्तक बिल्कुल भन्ना उठा था। यह प्रसंग यद्यपि प्रत्यक्ष 'मुझ पर' नहीं आया था, फिर भी 'मेरे कारण' उपस्थित हुआ था, इस कारण मैं यह महसूस कर रही थी कि इस की जिम्मेदारी मुझ पर है और इसीलिए मेरा मन इस प्रकार अस्वस्थ हो उठा था।

मन में आया कि मैं बम्बई छोड़कर अन्यत्र चली जाऊं। मुझे पता चला था कि मेरे साथ पढ़ने वाली कुछ छात्राएँ कलकत्ते के शिक्षा-विभाग में उच्च पद पर हैं। मुझे लगने लगा कि कलकत्ता जाऊँ और उनकी मदद से वहीं की किसी शाला में नौकरी कर लूँ।

परन्तु फिर मन में आता कि ऐसा करना मेरी कायरता होगी। मैंने जीवन में अभी तक कभी कायरता न दिखाई थी। जो बात मेरे मन को जंच जाती उसे निर्भयता से करने के सात्विक मनोबल पर ही मैं आज तक इस दुनिया में खड़ी रही हूँ। यदि केवल इसी एक बात के कारण मैं अपनी इस निर्भयता को छोड़ दूँ, तो अपने मनोबल पर से मेरा विश्वास उठ जाएगा और फिर दुनिया में आने वाले आगामी संकटों का सामना करने के लिए मैं अयोग्य हो जाऊँगी।

फिर भी मैंने कहा, "लीला, अगर हम दोनों बम्बई छोड़कर कलकत्ता

चलें और अपना शेष जीवन वहीं बिताएँ तो इस बला से हमारा पिंड हमेशा के लिए छूट जाएगा। बोलो, तुम्हारी क्या राय है ?"

"और चंदू भी वहाँ पहुँच गया, तो ?" लीला ने कहा, "और उस के पीछे-पीछे यह बला भी वहाँ पहुँच गई तो उस समय आप क्या करेंगी ? यदि ऐसा हो गया, तो बम्बई और कलकत्ता एक ही है। इसलिए व्यर्थ डरकर भाग जाने की क्या ज़रूरत ? इससे कोई लाभ न होगा। ऐसी परिस्थिति में क्या आप यह नहीं सोचतीं कि जो संकट हमारे सामने उपस्थित हो गया है उसका डटकर सामना करना ही अधिक श्रेयस्कर है ?"

यह देखकर कि लीला के विचार ठीक मेरे विचारों जैसे ही हैं, मुझे कुछ धीरज बंधा। इस समय लीला का साथ है, इसका मुझे सन्तोष हुआ। यदि मैं अकेली होती, तो मेरा मन व्याकुल हो उठता। और उस एकाकी जीवन के कारण बम्बई छोडकर कलकत्ता चल देने का मेरा विचार बल पकड़ लेता। आज मेरे साथ लीला जैसी निर्भीक एक लड़की है, इसी को मैंने अपना बड़ा भाग्य समझा। इसलिए इस दुख में लीला का साथ मुझे बड़ा सुखमय प्रतीत हुआ।

लीला बोली, "तो क्या आप कलकत्ता भाग जाएँगी, चाची ?

मैंने उत्तर दिया, "नहीं लीला ! वैसा विचार क्षण-भर के लिए मेरे मन में आया जरूर था, परन्तु चन्दू और सरूबाई मेरा पीछा वहाँ भी नहीं छोड़ेंगी। केवल यही नहीं, बल्कि मेरा मन मुझ पर कायरता का आरोप न लगाए, सिर्फ इसीलिए मैंने वह विचार अब छोड़ दिया। पद-पद पर जो संकट आ रहे हैं, उनसे यह तो साबित हो ही गया है कि मेरे भाग्य में सुख नहीं। उन संकटों का सामना किये बगैर दूसरा कोई चारा नहीं। जब कि मेरे भाग्य से संकट ही बँधे हैं तो मैं जहाँ रहूँगी वहाँ भी वे आए बिना न रहेंगे। इसलिए यहाँ से भागकर अन्यत्र जाकर भगोड़ी क्यों कहाऊँ ?"

"हाँ ! यह बात कही है आपने चाची।" लीला ने हँसते-हँसते कहा।

सन्तान के वात्सल्य का उबाल क्या होता है इसका मुझे इस समय पता चला। लीला को मैंने अपने नजदीक खींच लिया, उसे सहलाया और उस पर चुम्बनों की वर्षा कर दी।

मेरे गालों पर अपने दोनों हाथ रखकर मेरी ओर देखती हुई लीला बोली, "चाची, मुझे ऐसा लग रहा है कि इस क्षण से मैं आपको चाची न कहकर माँ कहूँ। मेरा इतना जीवन बीत गया, परन्तु इतना वात्सल्य-पूर्ण हाथ मेरी माँ ने भी कभी मुझ पर नहीं फेरा था। माँ का हाथ मुझे लगता था सिर्फ उस समय जब कि वह मुझे मारती। मैं इसी मातृ-प्रेम से परिचित रही। शाला में माँ की महिमा के पाठ मैंने बहुत पढ़े थे, परन्तु उनमें माँ के बड़प्पन और वात्सल्य का जो गुणगान किया था वह मुझे कभी नहीं जँचा। मुझे यही लगा करता कि ये लेखक लोग चाहे जो लिख मारते हैं। पुस्तक में जो लिखा था उस पर से मेरा विश्वास बिल्कुल उड़ चुका था। परन्तु माँ क्या होती है यह मैंने इसी क्षण महसूस किया।" ऐसा कहकर वह सिसक-सिसक कर रो पड़ी।

पुनः मेरे हृदय में आनन्द का ज्वार आया और मैंने उसे कसकर अपने हृदय से लगा लिया। सन्तान के प्रेम का वह आसरा मुझे भगवान के आशीर्वाद की तरह प्रतीत हुआ। उस समय मुझे यही लगा कि भगवान ने मुझे एक लड़की दे दी है। भगवान ने मुझ पर दया की है और संकट के समय उसने मुझे नहीं छोड़ा।

वह प्रसंग ऐसा था कि मेरे हृदय का हिमालय जैसा धैर्य का पर्वत भी लड़खड़ाकर गिर पड़ता। ऊपरी तौर पर वह प्रसंग मामूली दिखता था, पर वह एक बड़ी विकट समस्या थी। परन्तु अब मुझे इस समस्या का कोई भय न लगता। मुझे एक लड़की मिल गई, ऐसी लड़की जो मेरे दुख से दुःखी होती, मेरे सुख से सुखी होती और मेरे सुख के लिए तड़पती रहती।

अब लगता कि मुझ पर चाहे जितने संकट आ टूटें, मुझे उनकी परवाह नहीं, इतनी हिम्मत मुझ में आ गई।

मेरा आनन्द उस दिन उमड़-उमड़कर वह रहा था। मेरी वृत्ति उस दिन बिल्कुल उल्लासित हो गई थी। शाला की लड़कियों ने भी यह ताड़ लिया। एक लड़की ने तो पूछा भी "वहिनजी, आज क्या आपको प्रमोशन मिला है ?"

मुझे लगने लगा कि यदि मेरी यही वृत्ति बनी रही तो मेरा शिक्षा-कार्य अत्यन्त सफल रहेगा। उस नई भावना के उद्रेक से मुझ में नई जीवन-शक्ति का संचार हो गया। प्रसव वेदना के दुख का अनुभव हुए विना सन्तान प्रेम की प्रेमाद्रकता का जो स्रोत उस दिन वह उठा, उसने मेरे जीवन में क्रान्ति कर दी।

शाम को शाला से जव घर पहुँची तो देखा कि चंदू वहाँ पहिले से ही आकर बैठा था। मैंने इधर-उधर देखा, कहीं सरूवाई भी तो नहीं आई है, पर दूसरा कोई न था। लीला भी शाला से नहीं लौटी थी।

मुझे आई देखकर चन्दू बोला, "घवराओ नहीं। वह नहीं आई है। कोर्ट तक उसने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। पहले मैं एक ईरानी होटल में गया। सोचा धर्म-भ्रष्ट होने के डर से वह दूकान की सीढ़ी न चढ़ेगी। दूकान में तीन-चार दरवाजे थे। चाय पीकर अगले द्वार से सटककर उसे चकमा देने का मैंने विचार किया था। चाय पीने में भी मैंने यथा संभव देर लगा दी थी। तव तक वह फुटपाथ पर मेरी टोह में खड़ी रही। चाय पीकर उठा और ईरानी को एक नोट निकालकर दिया। ईरानी ने वाकी पैसे लौटाये। उन्हें लेकर मुड़ा और द्वार से वाहर जाने लगा, तो देखा कि वह भी मेरे साथ-साथ दूकान की सीढ़ियाँ उतर रही है। दूकान के सब लोग मेरी ओर लगातार देख रहे थे। फुटपाथ के पास एक विक्टोरिया गाड़ी खड़ी थी। मैं चट से कूदकर उसमें वैठ गया और ड्राइवर से जल्द चलने के लिए कहा। परन्तु ताज्जुव है कि चलती विक्टोरिया में वह भी कूदकर मेरे पास बैठ गई। फुटपाथ पर जो लोग थे वे इस दृश्य को देखकर हँसने लगे। मैं शर्म से गड़ गया। ड्राइवर ने पूछा, "साहब कहाँ ले चलूं?"

उस समय मेरे मुंह से एकदम निकल गया—"अपोलो बन्दर।" मैं वहाँ उतरा। वह भी मेरे साथ उतर पड़ी। मैं जाकर कटघरे पर बैठ गया। वह भी आकर मेरे पास बैठ गई। मेरा मन बिल्कुल बेचैन हो उठा। धूप चढ़ रही थी, इस कारण वहाँ बैठना करीब-करीब असंभव हो गया था। फिर भी मैं निश्चय करके, वहाँ डटा ही रहा। दस बजकर ४५ मिनट तक मैंने राह देखी। मैंने उससे कोई बात न की और वह भी चुप रही। करीब ११ बजे मैंने एक विक्टोरिया बुलाई और उसमें बैठा। पहले की तरह वह फिर चलती विक्टोरिया में चढ़कर मेरे पास बैठ गई। मैं स्माल कॉज कोर्ट के पास आया। गाड़ी से उतरा तो वह भी मेरे साथ उतर पड़ी। मैं कोर्ट में जाने लगा। वह भी मेरे पीछे-पीछे आने लगी। उस समय बेशक मेरे छक्के छूट गये। क्या करूँ, कुछ सूझ नहीं पड़ता था। एक परिचित वकील साहब मिले, उनसे उस दिन के मेरे मुकद्दमे का प्रबन्ध कर देने के लिए कहा और फिर जाकर गाड़ी में बैठा। वह मेरे पास बैठी थी। ड्राइवर से गाड़ी चलाने को कहा। पर गाड़ी कहाँ ले जाए, यह उससे कुछ कह न सका। वह मनमाना गाड़ी ले जा रहा था, पर उसने मुझसे एक भी बात न की—कोई सवाल न किया। उसका हठ देखकर मैं दंग रह गया। पर छुटकारा कैसे पाऊँ, यही मुश्किल मेरे सामने खड़ी हो गई। फिर घर लौट। वह नहायी नहीं थी। धूप में लगातार घूमने के कारण मैं भी पसीने से तर-बतर हो गया था। जब मैंने नौकर से स्नान के लिए पानी गरम करने के लिए कहा, तब वह मेरी ओर देखकर हँस पड़ी। पानी गरम होने तक मैं कुर्सी पर बैठा था और वह भी दरवाजे पर खड़ी थी। एक क्षण सोचकर वह बाहर गई और उसने दरवाजा बाहर से लगा दिया। कुंडी चढ़ा दी। नौकर के पानी लाते ही मैं बाथरूम में गया और वहाँ से स्नान करके बाहर निकला। इस अवधि में वह भी अपने स्नान से निपट चुकी थी। धोती पहन कर जब मैं बाहर आया, तब वह भी धुली साड़ी पहिने तैयार थी। उसकी इस फुर्ती की मैं मन-ही-मन सराहना करने लगा। यह जानकर

की यह वला अब मेरा पीछा नहीं छोड़ेगी, मैंने नित्य के कामों में व्यस्त हो जाने का निश्चय किया। रोज मेरे भोजन कर चुकने पर वह मेरी थाली में भोजन करती थी, परन्तु आज उसने मेरे साथ ही अपनी थाली भी लगाने के लिए रसोइया से कहा। यह देखकर कि मैं जल्दी-जल्दी खा रहा हूँ, वह भी जल्दी-जल्दी खाने लगी। में भोजन करके उठा, तो मेरे साथ ही वह भी भोजन समाप्त करके उठ गयी। मैं नल के नीचे हाथ धो रहा था, तो उसका हाथ भी वहीं था। उस परि-स्थिति में भी मुझे हँसी आ गई। इसके वाद मैं कमरे मैं आकर विस्तर पर लेट गया। वह भी मेरे विस्तर के नजदीक एक कुर्सी पर वैठ गई। मैं लगातार यह कोशिश कर रहा था कि मुझे कहीं नींद न लग जाए, साथ ही उसे मेरे इस इरादे का पता न चल पाये, इसलिए मैं अपनी आँखों को बन्द करने के लिए वाध्य था। वीच-वीच में आँखें अध-खुली करके उसकी ओर देख लेता था। देखते-देखते उसे नींद लग गयी और वह कुर्सी पर हाथ धरे वहीं सो गई। जरा भी आवाज न करके मैं उठा और कपड़े पहिन कर घर से वाहर निकल पड़ा। घर का दरवाजा वाहर से वन्द था। नौकर से उसे खुलवाया और अव मैंने वह वाहर से बन्द कर दिया।" इतना कहकर चन्दू ठहाका मारकर हँसने लगा।

वह आगे वोला, "अव वह कुंडी किसी ने खोली होगी या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु अभी तुम्हारी नौकरानी ने मुझ से कहा कि कुछ समय पहिले वह यहाँ आयी थी। इतनी देर तक मैं विक्टोरिया में सारी वम्वई में घूम रहा था। जो हुआ था सो तुम से कह दिया। अव चलता हूँ। इसके आगे माधवाश्रम में रहना तय किया है। जव तुम मुझसे मिलना चाहो, तो अपनी नौकरानी को भेजकर मुझे वुलवा लिया करना।" इतना कहकर मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न करके वह चल दिया।

उसका यह विलक्षण हाल सुनकर, हँसू या रोऊँ, यही मैं न समझ पाती थी।

इसी समय लीला शाला से लौटी।

खीझ की पराकाष्ठा

लीला को शाला से आने में देर हो गयी थी। एक सहेली के साथ वह उसके घर चली गई थी।

चन्दू द्वारा बताया गया सारा हाल जब मैंने उससे कहा, तब वह पेट पकड़-पकड़ कर हँसने लगी। मुझे उसकी हँसी पर क्रोध हो आया। जब मैंने उसे डाँटा, तब वह बोली—"इस बात पर किसे हँसी न आएगी? यदि कोई देखता कि छाया की तरह वह चन्दू काका के पीछे-पीछे घूम रही है, तो क्या कहता। मैं सोचती हूँ सड़क पर चलने वाले लोगों ने यह तमाशा जरूर देखा ही होगा। क्या ही अजीब औरत है? इतना सब करने के बाद भी आखिर धोखा खा ही गयी। बेचारी को नींद ने धोखा दे दिया।"

मैंने कहा—"यूं ही जोर-जोर से क्यों बोल रही हो? शायद वह फिर आ जाए। अब यह विषय ही बन्द करो। तुम जाकर बैठो और अगर इच्छा हो तो बाहर जाकर थोड़ा घूम आओ। मैं आज बाहर नहीं जाऊँगी। वह पुनः आए बिना न रहेगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है। उसे व्यर्थ का कोई शक न होना चाहिए।"

लीला बोली—"उसके आने पर क्या तमाशा होता है, यह मैं देखना चाहती हूँ। बाहर तो मुझे जाना था, पर अब मैं नहीं जाऊँगी। मुझे बुरा इसी बात का लगता है कि विश्रान्ति के समय मुझे जबरदस्ती पढ़ना होगा।"

ऐसा कहकर वह पुस्तकें लेकर पढ़ने के लिए बैठ गयी।

मैं काम कर रही थी, पर मेरा सारा ध्यान सड़क की ओर लगा

हुआ था। जासूसी उपन्यासों में पढ़ने को मिलते हैं कि, यह पता लगते ही कि कोई गुनहागार अकस्मात किसी स्थान पर आने वाला है, तो डिटे-क्टिव्ह जिस तरह उसकी प्रतीक्षा करता हुआ किसी दूसरे काम में लगा रहता है, उसी तरह मैं बैठी थी।

मेरा अन्दाज ठीक निकला। कुछ समय के बाद वह आयी। पर दरवाजे में ही खड़ी रही।

मैंने पीछे मुड़कर देखा। उसकी आँखों से मेरी आँखें टकराईं। पहिले तो मेरे मन में यह आया कि उससे कोई बात न करूँ। परन्तु शिष्टता मुझसे छोड़ी न गयी।

मैंने कहा—"दरवाजे में क्यों खड़ी हैं, सरूबाई! भीतर आकर बैठिए न!"

वह सिर्फ हँसी और इधर-उधर देखने लगी। मैंने जब पुनः भीतर आकर बैठने के लिए आग्रह किया, उस समय दरवाजा बन्द करके, उसकी कुंडी लगाकर वह भीतर न आयी। उसके ऐसा करने पर मुझे कुछ ताज्जुब-सा हुआ।

उसने बाजू के परदे को हटाकर भीतर देखा। भीतर के कमरे में नजर दौड़ाई। जाकर रसोईघर में देख आई। फिर बाहर आकर कोचों और मेजों के नीचे भी देखा। तब मैंने कहा—"अब बाथरूम और संडास भर रह गये हैं। जाकर उन्हें भी देख आइए।"

मेरी बात पर उसे क्रोध आ गया। फिर भी वह बाथरूम और संडास दोनों देख आई। उसके ड्राइंगरूम में पुनः आते ही मैंने कहा—"अब तो आपको विश्वास हो गया?"

उसने गर्दन के इरादे से 'न' कहा। उसे अभी भी शक था। ये सब बातें होने पर भी लीला ने पुस्तक पर से न अपनी नजर हटाई और न पीछे मुड़कर देखा।

सरूबाई को जाने क्या शक हो हुआ। वह जाकर लीला के सामने खड़ी हो गयी। कुछ समय तक वह लीला की ओर टकटकी लगाये सिर्फ

निहारती रही। परन्तु लीला ने अपनी नजर ऊपर न उठायी।

वह लीला से बोली, "अजी लीलाजी, अब तुम्हारी पढ़ाई काफी हो गई। मैं ये सब ढोंग जानती हूँ। मेरा विश्वास है कि तुम सब कुछ जानती हो। कहाँ हैं वे ?"

"वे कौन ?" लीला बोली।

"मेरे पतिदेव !" सरूबाई ने उत्तर दिया।

उसकी आँखों में आँख डालकर लीला बोली, "आपके पतिदेव कहाँ गए, यह मैं क्या जानूँ ? जिस औरत से अपना पति सँभालने नहीं बनता उसे विवाह ही क्यों करना चाहिए था ?"

मुझे लीला पर बड़ा क्रोध आ गया था। परन्तु उस समय उसे डाँटना या उससे कुछ कहना संभव न था।

सरूबाई बोली, "क्या तुम सोचती हो कि मैं पति को अपने कब्जे में नहीं रख सकती ? वैसे मैं बड़ी पक्की हूँ। यदि मैं इतनी पक्की न होती, तो तुम न जाने कब की उन्हें फुसला लेती। उसे अपने साथ भगा ले जातीं। मैं लगातार उन पर और तुम लोगों पर नजर रखे हूँ, इसीलिए अभी तक ठीक चल रहा है।"

उसकी इस बात पर मन-ही-मन मुझे हँसी आयी और उसका आवेग इतना तीव्र हो गया कि वह मुँह के द्वारा बाहर निकलना चाहता था, परन्तु बड़ी कठिनाई से मैंने उसे रोक लिया। मुझे स्पष्ट दिख रहा था कि लीला को अपनी हँसी रोकना कठिन हो रहा था। सरूबाई गुस्से से जल रही थी, इसलिए उसके ध्यान में वह बात न आयी।

लीला पुनः पढ़ने लगी। यह देखते ही सरूबाई ने उसके हाथ से पुस्तक छीनकर एक तरफ फेंक दी और उसका हाथ पकड़ कर उसे खींचा।

लीला उसकी तरफ सिर्फ टकटकी लगाए देखती रही।

सरूबाई बोली, "अब ये बहाने काफी हो गए। बताओ—कहां है मेरा पति ?"

लीला गम्भीरतापूर्वक बोली, "जब मैं कुछ जानती ही नहीं, तो कैसे बताऊँ कि वे कहाँ हैं ? पुलिस में जाकर रिपोर्ट लिखा दीजिए। वे लोग खोज देंगे।"

सरूबाई झल्लाकर बोली, "तुम क्या समझती हो ? पुलिस में भी जाकर रिपोर्ट करूँगी। तुम सब को अदालत के सामने खड़ी करूँगी। तुम्हारी खूब बेइज्जती करूँगी। मैं अँग्रेजी नहीं पढ़ी हूँ या न तुम्हारी तरह विलायत ही हो आयी हूँ। इसलिए यह न समझना की मैं किसी तरह कच्ची हूँ ?"

"मैं कहाँ गयी थी विलायत ?" लीला बोली।

सरूबाई के बोलने का भावार्थ मेरे ध्यान में आ गया। प्रत्यक्ष मुझ से बोलना उसके लिए असंभव हो गया था, इसलिए वह मुझ से जो कहना चाहती थी, वह लीला से कह रही थी। यह नहीं कि लीला के ध्यान में यह बात न आयी हो, परन्तु जान-बूझकर वह यह मान रही थी कि सब कुछ उसी से कहा जा रहा है और उससे वाक्युद्ध कर रही थी।

सरूबाई हाथ नचाकर बोली, "तुम न गयी होगी, पर तुम्हारी चाची तो गयी थी विलायत ! और विलायत जाने की ही क्या जरूरत ? यहाँ की अँग्रेजी शालाओं में जो तमाशे चल रहे हैं, वे कौन किसी कदर कम हैं। वे कहने को तो शाला जाती हैं, पर शहर-भर चक्कर काटती रहती हैं। कौन जाने शाला जाती हैं या कहाँ जाती हैं ? अब सीधी तरह से मुझे उनका पता बता दो जल्दी।"

"नहीं तो क्या करेंगी आप ?" लीला ने गुस्ताखी से पूछा।

वह हड़काये हुए कुत्ते की तरह बोली, "क्या करूँगी ? क्या करूँगी और क्या नहीं करूँगी, यह कहने की जरूरत नहीं। पहिले तो चुपचाप मुझे उनका पता बता दो—नहीं तो · "

लीला शान्ति से बोली, "जब मैं जानती ही नहीं, तब बताऊँ क्या ?"

"तुम जानती हो ! तुम जानती हो !" कहती हुई वह उसे दोनों

हाथों से पकड़कर बुरी तरह झकझोरने लगी।

अब मुझ से चुप न रहा गया। मैं बोली, "सरूबाई! आप मनुष्य जैसा बर्ताव कीजिए। सभ्यता से पेश आइए।"

"मैं मनुष्य नहीं!" सरूबाई बोली, "मैं डायन हूँ! शेरनी हूँ! एक एक को फाड़ खाऊँगी!—"

वह बके जा रही थी। परन्तु वह लीला को जिस तरह झकझोर रही थी, वह मुझसे देखा नहीं जाता था। मुझसे चुप न रहा जाता था। लीला कोई प्रतिकार नहीं कर रही थी।

मैं आगे बढ़ी और लीला को उसके हाथ से छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। मेरे यह करते ही वह आप-ही-आप जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ी और गला फाड़-फाड़कर रोने लगी।

इस औरत को अब घर से बाहर कैसे निकालूँ, यही एक बड़ी विकट समस्या मेरे सामने खड़ी हो गयी थी।

वह रोते-रोते चिल्ला रही थी, "मारो मुझे! ले लो मेरे प्राण। मैं मर जाऊँगी, तो तुम्हें मजे से पुनर्विवाह करने का मौका मिल जाएगा। मेरी मौत के लिए ही तो तुम रुकी हुई हो। परन्तु याद रखो, जब तक मैं जिंदा हूँ, मैं तुम्हारी एक न चलने दूँगी।"

वह इतनी गंदी भाषा में बोल रही थी, कि उसका उल्लेख न करना ही अच्छा। उसके उस बर्ताव से मुझे घृणा होने लगी।

पर सिर्फ घृणा होने से क्या होना-जाना था? मेरे सामने प्रश्न यह खड़ा था कि इस बला को घर से बाहर किस तरह निकाला जाए? एक बार मन में आया कि लीला को माधवाश्रम भेजूँ और चन्दू को बुलवा लूँ। परन्तु यदि वह आता तो हम पर झूठा होने का आरोप सिद्ध हो जाता। इसलिए हमने एक बार जो कह दिया था, उसी पर अड़े रहने के सिवा हमारे पास कोई दूसरा चारा न था।

मैंने लीला को आँख से इशारा किया और वह अपनी पुस्तक लेकर फिर पढ़ने लगी। मैं भी उठी और अपनी मेज पर गयी और कापियाँ

जाँचने लगी।

उसकी वकवास लगातार जारी थी। यह देखकर की हम दोनों उसकी ग्रोर कोई ध्यान नहीं दे रही हैं, वह दौड़ती हुई मेरी मेज के पास ग्रायी ग्रौर मेज के पास रखी कापियों को क्रोध से इधर-उधर फेंकने लगी। ग्रपने ग्राप को रोकना मेरे लिए ग्रब ग्रसंभव हो गया। मुझे लग रहा था कि हाथ पकड़कर उसे घर से वाहर निकाल दूँ। रसोईघर से नौकरानी भी दौड़कर ग्रा गयी।

एक ग्रौर दर्शक मिल जाने से उसे ग्रधिक जोश चढ़ा ग्रौर उसकी उन्मत्तता का पारा ग्रौर ग्रधिक वढ़ने लगा।

वह जो वक रही थी, उसे वह स्वयं भी समझती थी या नहीं, इसी का मुझे शक था। लीला विल्कुल सोंठ खाए-सी वैठी थी। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि चाहे जो हो, वह चाहे जो वकती रहे, उसके वदन को हाथ न लगाऊँगी। लीला से यद्यपि स्पष्ट रूप से यह कहने का मौका मुझे न मिला, फिर भी ग्रंदाज से वह मेरा उद्देश्य ताड़ गयी थी।

हमारी सहनशीलता के कारण उसे ग्रधिकाधिक जोश चढ़ रहा था। पड़ोसी ग्राकर दरवाजा खटखटाने लगे, तव वेशक मैं ग्रसहाय हो गयी।

मैंने हाथ जोड़कर उससे कहा, "माफ करो, वाई! यह रोना-चिल्लाना वन्द कर दो। मैं कुछ भी नहीं जानती कि चन्दू जी कहाँ हैं। ग्राप का यह रोना-चिल्लाना वेकार है। जव मैं जानती ही नहीं, तव ग्रापको वताऊँ क्या ?"

मैंने जाकर दरवाजा खोला। पड़ोसी महाशय भीतर ग्राए। वोले, "यह क्या हो रहा है। क्या ग्राप यह नहीं जानतीं कि हम गृहस्थ लोग पड़ोस में रहते हैं ? हमारे घर में वहू-वेटियाँ हैं। ग्राप लोगों ने यह क्या तमाशा मचा रखा है ?"

मैंने कहा, "इस ग्रौरत का दिमाग विगड़ गया है। इसी कारण वह इस तरह रोती-चिल्लाती है।"

मेरे इन शब्दों को सुनते ही वह विल्कुल वेकावू हो गयी। वड़ी बुरी

तरह उखड़ पड़ी और जो मुँह में अनाप-सनाप आता, बकने लगी। उसकी इस बकवास में बार-बार एक ही बात कही जाती—यह रांड मेरे पति को भगाकर ले जा रही है।"

मैंने पड़ोसी महाशय से कहा—"अब तो आप को विश्वास हो गया न ? मैं लाचार हो गयी हूँ। इसे किस तरह इसके घर पहुँचाऊँ, यही कठिनाई मेरे सामने उपस्थित हो गयी है।"

पड़ोसी महाशय का समाधान हो गया और वे चल दिए। वह भी रोती-चिल्लाती उस महाशय के पीछे दौड़ गयी।

यह देखते ही कि वह चली गयी है, मैंने दरवाजा वंद कर लिया।

दरवाजा वन्द करने की आवाज उसके कानों में पड़ते ही वह फिर पीछे लौट पड़ी और जोर-जोर से दरवाजा खटखटाने लगी।

मैं विल्कुल वेचैन हो उठी। यदि कोई दूसरी होती तो मैं पुलिस बुला लेती। परन्तु नाता भूल नहीं सकती थी और क्या करूँ यह भी नहीं सूझ पड़ता था। यदि यह इसी तरह दरवाजा खट-खटाती रही तो

मैं लीला के पास गई और धीरे से उससे पूछा, "अव क्या करना चाहिए लीला ?"

लीला वोली, "मैं आपका उद्देश्य समझ गई। अव हम कुछ नहीं कर सकते। जो होगा उसे चुपचाप देखना चाहिए। समय ही ऐसा विकट आ गया है। और यह तो वम्वई है। अगर कहीं भी थोड़ा-सा खट्ट हुआ कि यहाँ उसकी नगारे की तरह आवाज होती है। मेरा सिर तो भन्ना उठा है। जी में आता है कि उसे पकड़कर उसकी अच्छी तरह मरम्मत कर दूँ।"

"चुप-चुप, वह सुन लेगी ? ऐसी कोई नासमझी मत कर वैठना। हम चुपचाप वैठी रहें। पर यह ससुरी चुप भी कहाँ वैठने देती है ? पड़ोसिओं को तो इसने जगा ही दिया है। उन्हें ही कुछ दया आ गई और उन्होंने जाकर पुलिस में खवर दे दी तो मेरे पीछे का यह संकट दूर हो जाएगा !"

मैंने पड़ोसी से जो यह कहा कि उसका दिमाग बिगड़ गया है, वह सिर्फ इसलिए था कि किसी भी तरह उन महाशय का समाधान हो जाए। परन्तु उसका वर्ताव देखकर अब बेशक मुझे ऐसा लगने लगा कि कहीं वह सचमुच ही तो पागल नहीं हो गई है। वह लगातार दरवाजे पर कूद-फाँद रही थी। मुझे यह शक हुआ कि वह दरवाजे पर कहीं अपना सिर तो नहीं पटक रही है।

पड़ोसी लोग फिर दौड़कर आए और उन्होंने उसे डाटा-फटकारा। उसे यह भी धमकी दी कि वे उसे पुलिस के सुपुर्द कर देंगे।

मुझे लगा कि उनकी धमकी का उस पर कुछ असर हुआ, क्योंकि वह कुछ समय के लिए स्वस्थ रही।

पड़ोसी चले गये और उसकी उठा-पटक भी बंद हो गई। बहुत देर तक सन्नाटा रहा। मैं जाकर दरवाजा खोलकर देख आना चाहती थी, परन्तु लीला ने मुझे पीछे खींच लिया और धीरे से कहा, "दरवाजा मत खोलिए चाची! शायद वह अभी बाहर ही होगी। भीतर घुसने के लिए चुप रह कर हमें धोखा देने का प्रत्यन करती होगी। कुछ भी हो, पर हमें दरवाजा नहीं खोलना चाहिए।"

साँझ हुई। काफी अँधेरा हो गया। नौकरानी ने आकर दीये जला दिये। पुनः एकबार मैंने आहट लेकर देखा। बाहर कोई होगा ऐसा मुझे नहीं लगा। हमारे दरवाजे की तरफ बाहर की ओर खिड़की न होने के कारण छिपकर देखना भी असम्भव था। लीला मुझे दरवाजा नहीं खोलने देती थी।

कुछ समय और बीता। हम खाने पर बैठीं। जल्दी से खाना खाकर पुनः बैठकखाने में आकर बैठ गईं।

अभी तक सन्नाटा था। अब वह जरूर चली गयी होगी, ऐसा मुझे लगा। मैं दरवाजा खोलने जा रही थी, परन्तु लीला ही आगे बढ़ी और उसने तनिक भी आवाज न करते हुए दरवाजे की कुंडी निकाली और एक छोटी-सी संद में से बाहर देखा और फिर से दरवाजा बन्द कर

लिया।

पैर की तनिक भी आवाज न कर वह मेरे पास आयी और धीरे-से मेरे कान में बोली, "अभी वह बाहर ही बैठी है।"

मैं चुपचाप नीचे बैठ गयी। क्या करूँ, यह मुझे सूझ न पड़ता था। चन्दू की पत्नी बाहर भूखी-प्यासी बैठी रही और मैंने खाना खा लिया, यह बात मेरे हृदय में चुभने लगी। मुझे लगा कि दरवाजा खोलकर उससे भीतर आकर खाना खाने का आग्रह करूँ। जब मैंने अपना यह विचार लीला पर प्रकट किया, तब वह बोली, "कितनी पगली हैं आप, चाची! क्या आप सोचती हैं कि वह आपके घर खाना खाएगी? आप ने उसके घर में कदम रखा था, तब वह दिन-भर भूखी रही थी। तो क्या वह अब आपके घर खाएगी? खाने की बात तो छोड़ दीजिए। रात-भर फिर वह दरवाजे के पास आकर शोर मचायेगी और पड़ोसियों को तंग करेगी। देखें तो उसका निश्चय कितना पक्का है! हम अब अपने-अपने काम में लग जाएँ। आप मुझे ये कविताएँ समझा दीजिए। यदि हम चुप रहेंगी, तो वह समझेगी, कि हम उसकी आहट ले रहे हैं। हमें कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। बोलते रहना चाहिए।"

मैंने लीला को कविताएँ समझाना शुरू किया। उसे पढ़ाते समय मुझे अपने मन को बड़ा पक्का कर लेना पड़ा था। भीतर बेचैनी थी, पर ऊपर जबरदस्ती से स्वस्थता खींचकर लानी पड़ रही थी। मुझे यह दु:खद हो रहा था, परन्तु इसका कोई उपाय न था।

करीब एक घन्टे तक मैंने उसे पढ़ाया। और जब पढ़ाई खत्म की, तो उसी समय धीरे-से किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी।

मैंने सोचा शायद सरूबाई चल दी होगी और चन्दू आया होगा। दरवाजा खटखटाया नहीं गया था, बल्कि धीरे से उस पर दस्तक दी गई थी।

लीला ने मुझे रोक लिया और दरवाजे के पास जाकर आहट ली। वह लौटकर आई और मुझसे बोली, "अजी, वही बाहर खड़ी है।

उसकी चूड़ियों की खनखनाहट मैंने सुनी। हमें धोखा देने के लिए ही उसने दरवाजे पर धीरे-से दस्तक दी। उसे लगा, हम समझेंगी कि चन्दू काका आये हैं।"

मैं आँखें बन्द करके चुपचाप एक आराम कुर्सी पर पड़ रही। मुझे कुछ भी नहीं सूझ पड़ रहा था। एक औरत घन्टों तक बाहर खड़ी है और उसकी जरा भी परवाह न कर हम अपने काम मजे में कर रहे हैं, इस पर मुझे शर्म आयी।

परन्तु इसके लिए कोई उपाय न था। जो निश्चय एक बार कर चुकी थी, उस पर दृढ़ रहने के लिए मजबूर थी। यह तो गनीमत थी कि नौकरानी रात को काम पर नहीं आती थी, वरना उसके लिए दरवाजा खोलना जरूरी हो जाता।

बहुत देर तक हम पढ़ती बैठी रहीं और फिर बिस्तर लगाकर रोशनी बुझा दी। दस्तक पहले ही बन्द हो चुके थे। आहट लेने के लिए लीला पुनः दरवाजे के पास गयी और पहले जैसा ही धीरे-से संद में से झाँककर देखा। बाहर कोई दिखाई नहीं दिया।

धीरे-धीरे दरवाजे को थोड़ा-थोड़ा खोला और बाहर झाँककर देखा। यह देखकर कि बाहर कोई नहीं दिख रहा है, दरवाजा पूरी तरह से खोल दिया। लीला बाहर जाकर अच्छी तरह से देख आयी।

सखूबाई चली गयी थी।

रोग का निदान

दूसरे दिन सुबह दरवाजा खोलते समय हमें डर लग रहा था। कौन कह सकता है, शायद सरूवाई बाहर खड़ी हो ! लीला ने कल की तरह ही दरवाजा आधा सा खोलकर देखा और यह विश्वास होने पर कि बाहर कोई नहीं है, उसने वह पूरा खोल दिया।

मुझे संतोष न होता था। मुझे लगता कि दरवाजा बन्द कर रखना ही अच्छा है और मैंने यह बात लीला से कही।

करीब आठ बजे चन्दू आया। उसे देखते ही मेरा कलेजा धक-से हो गया। यह आ गया है और इसी समय अगर वह भी आ गई तो ? मैंने उससे पहिले भीतर के कमरे में जाकर बैठने के लिए कहा।

लीला ने दरवाजा बन्द कर लिया और नौकरानी से भी कह दिया कि जब तक कोई अपना नाम न बताए तब तक वह दरवाजा नहीं खोलेगी।

चन्दू से मैंने जब सारा हाल कहा, तब वह मुंह ढाँक कर रोने लगा। वह आँखें पोंछ कर बोला, "मेरे कारण तुम्हें इतने कष्ट सहन करने पड़े, इसका मुझे कितना दुख है, यह शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस बला से मेरा कैसे छुटकारा होगा ? यह बला यदि सिर्फ मेरे ही पीछे रहती तो मैं उसे चुपचाप सह लेता, परन्तु मेरे कारण तुम्हें कष्ट हो रहे हैं, यही मेरे लिए बड़ा कठिन हो रहा है।"

लीली बोली, "मैं सोचती हूँ कि हमें यह घर बदल देना चाहिए। यदि दूसरा घर मिलता हो तो हमें आज ही इस घर को छोड़ कर नये घर में चल देना चाहिए।"

लीला का यह विचार मुझे भी पसन्द पड़ा। मैं बिल्कुल घबरा गई थी। मैं नहीं चाहती थी कि सरूबाई पुनः आकर शोर मचाए और पड़ोसिओं के सामने एक तमाशा खड़ा हो, इसलिए मैंने चन्दू से दूसरा घर खोजने के लिए कहा। घर कैसा भी मिले कोई हर्ज नहीं, पर आज यह घर बदलना ही चाहिए।

चन्दू उसी समय घर की खोज में निकल पड़ा। हम खाना खा कर उठ ही रहे थे कि इसी समय वह लौट कर आया।

घर मिल गया था और अच्छा घर मिल गया था। मैं शाला गई। परन्तु लीला घर ही रही। तुरन्त ही घर बदल देने का निश्चय हुआ। तय यह हुआ कि सारा सामान शाम तक दूसरे घर में ले जाया जाए और शाला की छुट्टी होते ही लीला मेरे पास आए और मुझे अपने साथ नये घर में ले जाए।

घर बदल देने के कारण मन को एक प्रकार का समाधान हो रहा था। पिछले दिन के मानसिक उद्वेग के कारण, मेरी मनःस्थिति शाला की लड़कियों को भी दिख पड़ी थी। मैंने निश्चय किया था कि आज ऐसा नहीं होना चाहिए। फिर भी बीच-बीच में मेरा मन ठिकाने पर न रहता।

शाम को जब नये घर मैं आई तो सचमुच मुझे बड़ा आनन्द हुआ। घर अच्छा था। यद्यपि किराया वही था, फिर भी पहिले घर की अपेक्षा इनमें दो कमरे अधिक थे। उतनी ही स्वतन्त्रता भी थी। यह सोच कर कि कम-से-कम आज तो हमें डर नहीं, हम निश्चित थे।

चन्दू माधवाश्रम में ही रहता था। ऐसा दिख पड़ा कि सरूबाई को उसका पता न लगा था। चन्दू ने अपना एक मित्र भेज कर सरूबाई का अन्दाज लेने के लिए कहा। इस मित्र से उसे यह मालूम हुआ कि सरूबाई को किसी का भी पता नहीं लगा था। सरूबाई ने उस मित्र से बेधड़क कह दिया कि चन्दू कोंकण गया है। सरूबाई ने अभी तक अपना घर नहीं छोड़ा था।

मेरी शाला का भी उसे पता न चला होगा। वरना मैं सोचती हूँ

कि वह वहाँ भी आ धमकती।

बहुत से दिन गुजर गए। इस अवधि में कोई घटना नहीं घटी।

आगे छुट्टियाँ शुरू हुई। उन छुट्टियों में हम दोनों ने कोंकण जाने का निश्चय किया। हमने अपना यह इरादा जान बूझकर ही चन्दू को नहीं बताया था। अभी कुछ दिनों से उसने वकालत छोड़कर पुनः मेडिकल कालेज में जाना शुरू कर दिया था। इस वर्ष वह परीक्षा में बैठा था। और इसी महिने में परीक्षा का रिजल्ट भी खुलने वाला था। उसे पास होने का शक था। बहुत दिनों से उसकी पढ़ाई की आदत छूट गई थी और वे विषय भी भिन्न प्रकार के थे। इस कारण उसे विश्वास न होता था कि वह पास ही हो जाएगा।

कोंकण पहुँचने तक काका और ताई को यहाँ का कोई हाल नहीं मालूम था। हमने उन्हें जो पत्र भेजे थे उनमें इस का कोई जिक्र न किया था। वहाँ पहुँचने पर हमने जब यहाँ का सारा हाल कहा तब काका बिल्कुल स्तंभित हो गए। ताई की आँखों में तो आँसू ही आ गये।

ताई बोली, "तुम इस संकट से कैसे पार हुई होगी सो तुम ही जानो, मैं होती तो बिल्कुल पागल ही हो जाती। मुई का कैसा दुष्ट स्वभाव है! ऐसी औरतों के घर की सीख भी कैसी होती है, कौन जाने? ये सब बातें देखकर ऐसा नहीं कह सकते कि वह मूर्ख है। परन्तु यह बेशक साफ दिखाई देता है कि वह अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कर रही है।"

काका बोले, "यह है हमारा समाज! हमारे सामज के रीति-रिवाज के कारण ही ऐसी बातें होती हैं। अब उसका क्या हुआ होगा? मान लो, किसी दिन अकेली ही वह अपना घर छोड़ कर मायके चल दे और घर उसी तरह खुला पड़ा रहे तो रसोईया और नौकर क्या करेंगे। चन्दू दूसरी जगह रहने चला गया है। उस का पता वे लोग नहीं जानते। कल अगर रसोईया और नौकर भी घर खुला छोड़कर चल दें, तो क्या होगा? मुझे चन्दू की इस कायरता पर बड़ा आश्चर्य होता है। कैसे वह अपनी पत्नी को कब्जे में नहीं रख सकता?"

मैं बीच ही में बोल पड़ी, "इसके लिए कम-से-कम मैं तो उसे कोई दोष न दूंगी। मैंने प्रत्यक्ष अनुभव से देख लिया है कि उस औरत को कब्जे में रखना बिल्कुल असंभव हो गया है।

"अच्छा ! तुमने आते समय क्या चन्दू को कोई खबर नहीं दी थी ?" काका ने पूछा।

"अभी कोई चार दिन से वह हमारे घर नहीं आया था। मैंने भी जान-बूझ कर उसे बुलाना टाला। हमारी नौकरानी भी अपने गाँव चली गयी है। घर में ताला पड़ा है। उसे देख कर यदि वह यह अन्दाज कर ले कि हम यहाँ आ गए हैं, तो मैं सोचती हूँ कि शायद वह यहाँ भी आ जाएगा। उसे जान-बूझ कर कोई खबर देना मुझे उचित न जान पड़ा। सभी बात की तो चोरी थी ! उस औरत के डर से हमें किस तरह रहना पड़ता था, इसे यदि मैं कहूँ, फिर भी आपको उसकी पूरी कल्पना न हो सकेगी। उसके आगे हमने अपने हाथ बिल्कुल टेक दिये। विलायत की मेरी सारी डिग्रियाँ उसके सामने व्यर्थ हो गयीं।"

मेरी बातें सुनकर लीला हँसने लगी। ताई बोली—"हँसती क्यों हो ? ये बातें क्या हँसने की हैं ?"

लीला ने ताई से कहा—"ठहरिए ! मैं आपको थोड़ा-सा नमूना दिखाती हूँ। मैं कोई चाची पर नहीं हँस रही थी। मुझे सरूबाई की उस दिन की याद हो आयी और हँसी आ गयी। अब आप ही देखिए।" ऐसा कह कर, उसने सरूबाई द्वारा किये गये उस दिन के तमाशे की कुछ हूबहू नकलें करके दिखायी। उन्हें दिखाते समय उसे मेरी मदद लेनी पड़ी थी। मैंने भी वह अभिनय पुनः करके दिखाया।

वे नकलें देखकर ताई हँस रही थी—पर काका बिल्कुल गम्भीर थे।

वे बोले—"सचमुच यदि उसने ऐसा मेरे आगे किया होता, तो मैं उस पर अच्छे कोड़े बरसाता। मैं सहनशील हूँ। परन्तु सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। मैं सोचता हूँ कि चन्दू यदि थोड़ी अक्ल से काम लेता, ऐसा कोई प्रयोग करता, तो यह संगीत सुर पर आ जाता।"

ताई बोली—"सुन लो मधू ! ये सुधारक हैं। औरतें पैर की जूती होती हैं, यह विचार इनके मस्तिष्क से अभी तक नहीं निकला है।"

"ऐसा मैं कहाँ कहता हूँ ?" काका बोले— ईंट का जवाब पत्थर से दिये बिना इस दुनियाँ में काम नहीं चलता। वह औरत है, इसलिए मैं यह उपाय नहीं बतला रहा हूँ। लड़का होता और यदि वह इसी तरह पेश आता, तो उसके लिए भी मैं यही उपाय बताता। मारना स्वयं मुझे भी पसन्द नहीं। लड़कों को पीटना पशुता का लक्षण है, ऐसा मैं कहता हूँ। पर मैं सोचता हूँ कि इस तरह पेश आने वाले लोगों के लिए चाबुक को छोड़कर और दूसरा कोई उपाय नहीं है। मेरा ख्याल है कि सरूबाई हिस्ट्रिक है। हिस्टीरिया का इलाज है चाबुक। वह दवा है–सजा नहीं।"

मैंने कहा—"दवा होगी। पर वह इन्सानियत की नहीं है। स्त्री हो या पुरुष— किसी को भी चाबुक से पीटना मनुष्यता का लक्षण नहीं। कम-से-कम मेरा तो यही ख्याल है। संताप का यह अतिरेक मनुष्य को बेकाबू कर देने के लिए कारणीभूत होता है। चाबुक के उपाय से हानि ही अधिक होगी। इसका सच्चा उपाय केवल एक ही है— पर वह अपने हाथ में नहीं।"

"कौन सा उपाय ?" ताई ने पूछा।

मैंने उत्तर दिया—"जिन दो व्यक्तियों की परस्पर पटती नहीं है, उनको केवल विवाह हो जाने के कारण जबरदस्ती से एक ही स्थान में रहने के लिए मजबूर करना अन्याय है। ईश्वर के दरबार में यह न्याय नहीं कहा जायगा। मनुष्य के घर में शायद वह अन्याय न समझा जाता हो। मनुष्य के सारे व्यवहारों में हमेशा पूर्ण मनुष्यता होती ही है, यह नहीं कहा जा सकता। इसी का यह एक उदाहरण है। Cruelty to animals— के लिए कानून बना है। जानवरों के साथ यदि निर्दयता से बर्ताव करते हैं, तो इस निर्दयता के लिए मनुष्य को सजा दी जाती है। परन्तु जो मनुष्य मनुष्य के साथ निर्दयता से बर्ताव करता है उसको दण्डित करने के लिए कोई भी कानून नहीं है। पिता अगर अपनी

पुत्री को मारता है, तो शिकायत कौन करे ? पति यदि पत्नी को मारता तो शायद उसके मायके के लोग पत्नी की तरफ से पति पर मुकदमा चला दें और पति को सजा भी हो जाय, परन्तु जब पत्नी ही पति का इस दुष्टता से छल करती है, तब पति क्या करे ? कोई पति पत्नी को मारता है तो उस समय वह कानून से अपराधी सिद्ध होता है। पर पत्नी पति को विना मारे उसे इस दुष्टता से तंग करती है, तब यह बात किसी भी कानून के अन्दर नहीं आती। ऐसी परिस्थिति में पति की रक्षा कौन करे, यह बड़ा विकट प्रश्न है। कानून में इसके लिए यदि कोई आधार न हो तो कानून बदल देना चाहिए। यह उदाहरण देखकर मुझे ऐसा लगने लगा है।"

"सच है ! सच है !" काका बोले—"तुम्हारा एक-एक अक्षर सत्य है। मुझे अब बात जँच गयी। चन्दू का सारा हाल सुनकर मेरा मस्तिष्क भन्ना उठा था, इसीलिए मैंने चाबुक का उपाय सुझाया था। परन्तु मैं अब स्वीकार करता हूँ कि वह मेरी भूल थी। तुमने जो बताया, वही इसका उपाय है। परन्तु वह उपाय आज के कानून में विद्यमान नहीं। भविष्य में भी इस प्रकार का सुधार कानून में कोई करेगा, यह तुम कभी सोचना भी मत।"

ताई ने कहा, "तो अब चन्दू लाला को क्या करना चाहिए ? इस संकट से उनका छुटकारा कैसे हो ?"

"यह सोचकर कि पूर्व-जन्म के फल भोग रहा है, उसे चुप बैठना चाहिए, बस !" काका बोले—"पूर्व-जन्म का आधार समाधान के लिए बहुत अच्छा होता है। परन्तु सिर्फ उतने ही समाधान से मनुष्य चुप नहीं बैठता। चन्दू ने कायरता दिखायी है, इसमें कोई शक नहीं। उसे क्या करना चाहिए, यह यद्यपि निश्चित रूप से आज मैं नहीं कह सकता, फिर भी मेरा ख्याल है कि उसे आज की अपेक्षा अधिक पुरुषार्थ दिखाना था। उसने कहीं-न-कहीं भूल कर दी है, बिल्कुल पहिले जैसी ही भूल की है।"

परन्तु बात इस हद तक पहुँच जाएगी, यह कल्पना पहले मुझे नहीं

थी। नाना साहब ने चिनगारी न फेंकी होती, तो यह आग निश्चित ही इतनी न भड़कती। सिर्फ धुंधवाती रहती और वह भी धार्मिक विषय में।"

वह विषय यहीं समाप्त हो गया। उस सम्बन्ध में आगे और कुछ कहने के लिये रहा ही न था।

गाँव में आने के बाद मैं लोगों से मिलने-जुलने की थोड़ी कोशिश करने लगी। ग्राम-देव का कौल प्राप्त हो जाने के कारण अब मुझे कोई दोष देने के लिये तैयार न था, इसका मैंने लाभ उठाया। पुराने लोगों ने पुनः एक बार-पुराण पर मेरा प्रवचन सुनना चाहा।

पुरानी स्मृति के कारण मुझे वह सूचना उचित प्रतीत न हुई। नई शिक्षा के कारण मुझे नई दृष्टि प्राप्त हो गई थी। विलायत जाने से पहिले स्वयं अपनी बुद्धि के बल पर मैंने पुराणों पर प्रवचन किये थे। उस समय मेरी दृष्टि व्यापक नहीं हुई थी। उस समय लोगों ने मेरे प्रवचन बड़े पसन्द किये। वे उन्हें मेरी संकुचित बुद्धि के प्रभाव के कारण ही अच्छे लगे, ऐसा मुझे कभी-कभी लगा करता। पर अब मुझे जो नवीन दृष्टि मिली थी उस दृष्टि का उपयोग करके, यदि मैं प्रवचन करूँ तो उसका क्या प्रभाव होता है यह जानने की जिज्ञासा से ही मैंने पुराने मित्रों के आग्रह को स्वीकार कर लिया।

पुनः मन्दिर में मेरा व्याख्यान हुआ। मैंने व्याख्यान इसलिये कहा कि जिसे लोगों ने प्रवचन का नाम दिया था वह मेरी दृष्टि से व्याख्यान था। पहिले श्लोक के बाद श्लोक कहकर मैं उन पर टीका-टिप्पणी किया करती थी, उस तरह, इस समय नहीं किया। इस समय एक ही श्लोक लेकर उसी पर पूरी चर्चा की। उदाहरण के लिये बीच-बीच में पुराणों की कथाएँ लेकर उन्हें नवीन दृष्टि से—याने भक्ति भाव को छोड़ कर—केवल वास्तविकता की दृष्टि से—मैंने कहना शुरू किया।

श्रोताओं पर मेरी लगातार नजर थी। उन्हें जितनी बात जँचे उतनी ही बताना, यही मेरी इच्छा थी। इस इच्छा के कारण मुझे सब

श्रोताओं की नाड़ी पर जैसे हाथ रखकर ही भाषण देना पड़ता था।

प्रवचन समाप्त होने पर जो चर्चा हुई उसमें पहिले के श्रोताओं में से बहुत से लोग थे। शहरों में जब व्याख्यान होते हैं, तब उनके समाप्त होने के बाद सभा-गृह में फिर उस व्याख्यान पर चर्चा करने के लिए कोई नहीं बैठता। गाँव की स्थिति ऐसी नहीं होती। गाँवों के लोगों की जिज्ञासा तीव्र होती है। भाषण अथवा कथा समाप्त होने पर उस भाषण-कर्ता अथवा कथावाचक से चर्चा करने की उन्हें रुचि होती है। उस रुचि के अनुसार बहुत लोगों ने दिल खोल कर चर्चा की। उनकी शंकाओं का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेचन करके समाधन किया। पुराणों की कथाएँ कहते समय उनमें का अतिशयोक्ति पूर्ण और लाक्षणिक भाग मैंने छोड़ दिया था। यही नहीं, बल्कि ऐसे भाग का वास्तविक दृष्टि से विशदीकरण किया था। बहुत से बूढ़ों को वह अच्छा न लगा यह सच है, परन्तु प्रवचन के बाद जो चर्चा हुई उसमें मैंने पुनः प्रत्येक बात का विश्लेषण करके जिस समय बताया, उस सम्मय सभी को समाधान हो गया ऐसा मुझे दिखाई दिया।

शहरी श्रोताओं की अपेक्षा गाँव के श्रोता अधिक सहृदय होते हैं, ऐसा मुझे उस समय अनुभव हुआ। वे सिर्फ अधिक सहृदय ही नहीं, बल्कि अधिक जिज्ञासु और अधिक प्रमाणिक होते हैं। यूँ ही किसी की हँसी उड़ाने की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। शहर में यह प्रवृत्ति अधिक जोरों पर होने के कारण किसी विषय को समझ लेने की अपेक्षा सिर्फ हँसी उड़ाने की रुचि शहर के लोगों में अधिक दिखाई देती है।

गाँवों में खिल्ली उड़ाने वाले न रहते हों यह बात नहीं। पर उनकी संख्या शहरों की तुलना में अत्यन्त अल्प है, ऐसा मुझे अनुभव हुआ।

चर्चा में बहुत से वृद्ध लोग भी रहा करते। उनके मत पक्के बन चुके थे। फिर भी नये ढंग से पुराणों की पुरानी कथाओं का मेरे द्वारा किया गया विवेचन उन्हें रुचे बिना न रहा। यही नहीं, बल्कि उस प्रकार से विवेचन करने के कारण जो एक नई दृष्टि उन्हें प्राप्त हुई उससे वे

पहिले बिल्कुल अपरिचित थे, ऐसा स्वीकार करने में भी उन्होंने संकोच न दिखाया।

यह अनुभव प्राप्त करने के लिए मुझे बहुत मौका मिला। आस-पास के गाँवों से मुझे पुराण पर प्रवचन करने के लिए रोज निमन्त्रण आने लगे। हर दिन कहीं-न-कहीं मेरा प्रवचन न हुआ हो, ऐसा एक भी दिन नहीं गया। लीला हमेशा मेरे साथ रहा करती और मेरे प्रवचन करने की पद्धति का ध्यान पूर्वक अवलोकन किया करती।

किसी भी गाँव में जाती तो एक सा ही अनुभव होता। प्रवचन समाप्त होने पर श्रोतागण अपनी शंकायें पूछने के लिए उत्सुक रहते और उन की शंकाओं का समाधान करने में मुझे बड़ा आनन्द आता।

भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक प्रश्नों के अनुरोध से पुराणों में से कथा-वस्तु चुन कर मैं ये प्रवचन किया करती। समाज सुधार के प्रश्न के रूप में यदि मैं उनके सामने भाषण देती, तो उन्हें सुनने के लिए सभा स्थल पर एक भी श्रोता हाजिर न रहता। परन्तु पौराणिक कथाएँ कहते हुए उन्हीं सामाजिक प्रश्नों को हल करने का जब-जब मैंने प्रयत्न किया तब-तब वह बड़ा सफल रहा।

यह एक नया शस्त्र मुझे मिल गया है ऐसा मुझे लगा। मुझे सब प्रकार की अनुकूलता होती तो नौकरी छोड़कर मैं अपना सारा जीवन इसी कार्य में लगा देती, यह विचार आने लायक आत्म-विश्वास इन प्रवचनों के कारण मेरे मन में उत्पन्न हो गया। ऐसी परिस्थित आने पर नौकरी की बेड़ी तोड़ कर सारा जीवन इसी कार्य में लगा दूं ऐसा मैं अपने मन में निश्चित करने लगी।

जिस समय काका से मैंने अपना यह विचार कहा उस समय उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। यह उनकी अत्यन्त प्रिय कल्पना थी। गाँवों में प्रचार कार्य सुशिक्षित स्त्रियों को ही करना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा थी।

सुशिक्षित स्त्रियाँ जिस समय किसी गांव में सामाजिक प्रश्नों की चर्चा करती है उस समय वे इस प्रकार की भाषा का उपयोग करती

है जिससे पूर्व संस्कारों में सिर से पैर तक डूबे हुए ग्रामीण लोगों के मन पर आघात होते हैं और इसी का दुष्परिणाम होता है। यह भूल मैंने नहीं की, यह देख कर काका को आनन्द हुआ।

मेरे सभी प्रवचनों में वे हाजिर थे यह बात नहीं। पर प्रत्येक प्रवचन का हाल उनके कानों में रोज पहुँच जाता। प्रवचन का हाल यदि मैं स्वयं उन्हें सुनाती तो उनके मन पर शायद उतना प्रभाव न पड़ता। परन्तु मेरे प्रवचनों का हाल श्रोताओं के मुख से सुनने के कारण उनके मन पर अधिक प्रभाव पड़ता। श्रोताओं द्वारा की गई स्तुति को सुन कर वे चुप न रहते, वल्कि मैंने क्या कहा? वे क्या समझे? प्रवचन के वाद उस ने किन-किन प्रश्नों पर चर्चा की और उसके कारण सुनने वालों का कैसा समाधान हुआ? इस प्रत्येक बात की वे बड़ी बारीकी से पूछ-ताछ करते। इस पूछ-ताछ से जो सारांश निकलता, उसके अनुरोध से मुझ से पुनः चर्चा करके वे नये-नये विचार दिया करते।

पहिले के दुःखी जीवन के बाद यह समय बड़े आनन्द में गुजरा। लीला भी बड़े उत्साह से मुझे हमेशा प्रोत्साहन दिया करती। यदि यह कहूँ कि उसे पुराणों की कथाओं के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था, तो भूल न होगी। मैंने उस से पुराणों को पढ़वाना शुरू किया और रोज उसे उपनिषदों का अर्थ समझाने लगी। वह भी मन लगाकर इस पढ़ाई की ओर ध्यान देने लगी। इसके कारण उसे पढ़ाने में मुझे एक प्रकार का नशा आने लगा।

आनन्द के इस समय में एक दिन अचानक चन्दू आ पहुँचा।

जन्मभूमि में

चन्दू आएगा, यह आशा मुझे पहले से थी ही। इसलिए उसके आने पर मुझे बिल्कुल आश्चर्य न हुआ।

पर उसे आया देखते ही काका और ताई को बेशक असमाधान-सा हुआ। उसके आने से उन्हें किसी प्रकार का कष्ट होगा, ऐसा वे नहीं समझते थे। परन्तु उन्हें असमाधान हुआ था उसके स्वास्थ को देखकर।

उसका स्वास्थ्य विल्कुल गिरा हुआ दिख रहा था। आँखें भीतर धँस गयी। गालों में गढ़े पड़ गये थे और बहुत से वाल सफेद हुए दिख रहे थे। इतने थोड़े दिनों में वह बूढ़ा कैसे हो गया, इसका मुझे भी ताज्जुव हुआ।

उसने जो हाल सुनाया वह भी अजीव था। सरूवाई ने अन्त में उस का पता लगा लिया था और वह माधवाश्रम में धन्ना देकर बैठ गयी थी। इसके परिणाम स्वरूप उसे माधवाश्रम छोड़ देना पड़ा, क्योंकि उन दिनों माधवाश्रम में पति-पत्नी साथ नहीं रहते थे। इस दंपति के वहाँ रहने के कारण अन्य लोगों में चर्चा शुरू हो गयी।

चन्दू का कालेज जाना जारी था। यद्यपि परीक्षा हो चुकी थी, फिर भी वह अस्पताल "अटेंड" किया करता था। इस की कोई जरूरत न थी, पर उसने स्वयं ही जवरदस्ती से यह काम अपने ऊपर ले लिया था। किसी न किसी बहाने सरूबाई से अधिक समय तक दूर रहने का उसका उद्देश्य था।

पत्नी के जबरदस्ती सहवास के कारण उसे बहुत त्रास होने लगा। एक दिन उसने एक उपाय निकाला।

माधवाश्रम छोड़कर उसने एक दिन स्टेशन का रास्ता पकड़ा। पत्नी भी उसके साथ चल पड़ी। दोनों के टिकट खरीद कर वह पूना के लिए रवाना हुआ। अपना सामान उसने स्टेशन पर ही रख दिया था। सिर्फ अपनी पत्नी का सामान लेकर वह उसके साथ उसके मायके पहुँचा। वह भी उसके साथ अपने मायके गयी।

दोनों आये देखकर उसके ससुर को आश्चर्य हुआ। अपने ससुर को उसने यह न दिखने दिया कि पति-पत्नी के बीच किसी तरह का कोई मन-मुटाव हो गया है।

इस समय बेशक सरूबाई धोखा खा गयी। मायके आ जाने पर चन्दू पर कड़ी निगरानी रखना उसे असंभव हो गया। दोनों में झगड़ा हो गया है, यह उसे बताना न था, क्योंकि इस सम्बन्ध में चन्दू ने भी कुछ नहीं कहा था। दोपहर को घर पहुँचने के कारण सरूबाई घर के काम में लग गयी। यह देखकर चन्दू वहाँ से एकदम खिसक दिया। स्टेशन से उसने अपना सामान उठाया और एक ताँगा करके वह खंडाला गया। वहाँ से दोपहर की गाड़ी से बम्बई आकर वह अपने एक मित्र के घर रहा और दूसरे दिन सुबह उठ कर बोट से गाँव आ गया।

अभी भी वह डर रहा था। वह सोच रहा था कि उसके जाने के बाद घर में गड़बड़ी मच गयी होगी, सरूबाई और उसके पिताजी उसे खोजने स्टेशन पर आये होंगे। उन्होंने हर गाड़ी बारीकी से देखी होगी।

सरूबाई इतने पर ही नहीं रुकेगी। वह बम्बई जाकर पूछ-ताछ करेगी, पता लगाएगी और पता न लगने पर अन्दाज से इस गाँव में आजायेगी। ऐसी शंका हम सब को आये बिना न रही।

काका बोला, "यहाँ आ कर वह कितना ही शोर मचाये, मुझे उस का कुछ न लगेगा। अपना घर काफी बड़ा है। नजदीक कोई पड़ोसी भी नहीं हैं। गाँव में मेरा प्रभाव है। जिस तरह यहाँ का जमींदार हूँ, उसी तरह पुलिस के कुछ अधिकार भी मुझे प्राप्त हैं। अधिक गड़बड़ करेगी, तो उसे उठाकर रत्नागिरि के पागलखाने में बन्द कर दूँगा।"

काका की इस बात से यद्यपि हमारा धीरज बँधा, फिर भी उतना ही बुरा लगा। हम खुद अपने ही आदमी को अपने हाथ से पागलखाने में बन्द कराने के लिए ले जाएँ, इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या हो सकता है।

मुझे अपने ही उद्‌गारों की याद हो आयी और स्वयं मुझे बुरा लगा। बम्बई में मेरे पड़ोसी जब पूछ ताछ करने आये थे उस समय मैंने उनसे भी यही कहा था कि सरूबाई का दिमाग विगड़ गया है। उसका ऊधम देखकर उन्हें भी मेरी बात पर विश्वास हो गया था। इसलिए काका के इस विचार की मैंने भी मन-ही-मन सराहना भी की।

अन्त में वह प्रसंग आ ही धमका। वह आई और उसका वाप भी आया।

घर बड़ा होने के कारण चन्दू को एकांत मिलना असम्भव न था। वह एक कोने के कमरे में जाकर भीतर से कुंडी लगाकर बैठ गया था। जो भी बातें हुई, वे काका और सरूबाई के पिता के बीच हुई।

काका ने मुझे बुलाया और बम्बई का सारा हाल यथातथ्य सरूबाई के पिता से कहने के लिए कहा। उसके पिता को भी वहाँ के उस हाल की कोई जानकारी न थी।

सरूबाई द्वारा वंबई में मचाये गये ऊधम का हाल जब उसके पिता ने सुना तब उन्हें भी अपनी बेटी की वह हरकत अच्छी न लगी, परन्तु अपनी वेटी का अभिमान उनसे छोड़ा न जाता था। थोथे वहाने और कारण उत्पन्न करके उसने अपनी वेटी के उस वर्ताव का समर्थन करने का प्रयत्न किया। उस समय काका बोले, "ऐसा हठ करने से क्या लाभ है? दोनों में पटती नहीं है। दोनों एक दूसरे से बातें नहीं करते। ऐसी परिस्थिति में दोनों यदि एक साथ रहें, तो इसमें क्या फायदा? जिस वात के कारण किसी को भी सुख नहीं, उस बात को करने का दुराग्रह आप क्यों करते हैं? आपको मेरा सुझाव कठोर प्रतीत होगा। पर मैं साफ-साफ आपसे कहे देता हूँ कि कानून से यह संबंध भले ही तोड़ा न

जा सकता हो, पर व्यवहार से उसे तोड़ देने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं। आप उसे अपने घर ले जाइए। उसकी परिवरिश का भार मैं अपने पर लेता हूँ। आप जो रकम निश्चित कर दें, वह रकम मैं हर महीने आपके पास भेज दिया करूँगा। आपके मित्र के नाते आपको सलाह देने का मुझे जो अधिकार है उसके आधार पर मैं आपसे कहता हूँ कि उसे किसी अच्छी शाला में भरती कर दीजिए, अच्छी शिक्षा दीजिए और उसे अपनी उपजीविका स्वयं चला सकने के लिए समर्थ बना दीजिए।"

सरूबाई के पिता ने कहा, "जब आप ही ऐसा कहने लगे तो अब मैं क्या कहूँ? लोग यह कहकर कि मैंने खुद पति के पास से बेटी लाकर अपने घर रख ली, मुझे बदनाम करेंगे। एक अधिकारी के नाते गाँव में मेरा प्रभाव है। यदि ऐसी बदनामी हुई तो लोग मुझे ही दोष देंगे। मेरी बेटी को दोष नहीं देंगे। परन्तु भालचन्द्र पंत इस दोष से मुक्त हों जाएँ, यह बिल्कुल संभव नहीं। जो कुछ करना है वह उन्हें ही करना चाहिए—आपको नहीं।"

"आप भूल रहे हैं।" काका बोले, 'मैं उसका बड़ा भाई हूँ। मेरे जीवित रहते तक जो भी व्यवहार होगा वह मेरे हाथ से ही होना चाहिए। उसने अपनी शिकायत मेरे सामने रखी और मैं उसका फैसला इस तरह करता हूँ।"

सरूबाई के पिताजी विवश हो गये। बहुत देर तक वे काका से दलीलें लड़ाने की कोशिश करते रहे, पर काका ने किसी भी विषय में उनसे हार न मानी। अंत में उन्होंने पागलखाने का भय दिखाकर जब धमकी दी, तो वे चुपचाप बातें करने के लिए तैयार हो गए।

क्या करना है, यह काका ने लिखकर उन्हें दे दिया और उन्हें क्या करना है यह भी उनसे लिखवा लिया। इसके आगे चन्दू और उसकी पत्नी का एक दूसरे से जो संबंध था वह टूट गया और उसकी पत्नी सिर्फ परवरिश की हकदार रही। इसके सिवा सरूबाई का चन्दू से कोई संबंध न रहा।

दूसरे दिन सरूबाई को साथ लेकर उसका बाप चला गया। जाते समय सरूबाई ने बड़ा उपद्रव मचाया, बड़ी उठा-पटक की, खूब शोर मचाया। जब वह अपना सिर दीवाल पर मारने लगी, तब उसके बाप के छक्के छूट गये।

उसका यह ऊधम उसने पहिले कभी देखा न था। जब प्रत्यक्ष देखा तब उसका विश्वास हो गया। काका ने जो धमकी दी थी वह ठीक थी, ऐसा जिस समय उसे लगा, उस समय उसने जैसे-तैसे उसे समझाया और वहाँ से प्रस्थान किया।

हम सब निश्चित हो गये। चन्दू को लगा कि जीवन की एक खतरनाक बला से वह मुक्त हो गया। काका थे, इसीलिए यह मामला इस तरह चुपचाप तय हो गया, वरना स्वयं चन्दू इस मामले में कुछ न कर सकता।

इसके बाद चन्दू वहाँ एक प्रकार से एकांतवास में ही रहा करता था। आते समय वह अपने साथ बहुत-सी पुस्तकें ले आया था। उन्हें पढ़ने में वह खो गया था। वे पुस्तकें उसके कोर्स की न थीं। सभी उपन्यास थे। और वे भी बिल्कुल मामूली दर्जे के उपन्यास थे। यह देखकर कि उसकी मनःस्थिति इतनी बिगड़ गयी थी कि साहित्य की दृष्टि से महत्व-हीन पुस्तकें वह पढ़ने लगा था, मुझे बड़ा दुख हुआ।

वह किसी से भी न बोलता था। इसलिए मैं भी जानबूझ कर उस से बोलना टालती थी। ताई ने एक-दो बार उससे बातें करने की कोशिश की, परन्तु उसने बड़ी रुखाई से उसे उत्तर दिये, यह देखकर वह भी चुप रही। अगर कभी बोलता, तो केवल काका से ही बोलता और कानून पर ही उनकी बातें होतीं।

पुराणों पर मेरे प्रवचन हो ही रहे थे। पुनः पहले का प्रसंग उपस्थित हो गया। मेरे मायके के गाँव से मुझे निमंत्रण आया।

मैं फिर संकट में पड़ गयी। अपने मायके जाऊँ और अपने घर न उतरूँ, यह जन-दृष्टि से कैसा लगेगा।

काका बोले, "इसकी चिंता न करो। पहिले की तरह तुम गोपाल भट्ट जी के घर ही ठहरना। अपने मायके के निमंत्रण को अस्वीकार कर देना किसी भी तरह उचित न होगा। तुम विलायत हो आयी हो, इस कारण तुम में क्या फर्क हुआ है, यह जानने की सब लोगों के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है। वे लोग तुम्हारे प्रवचन पहिले सुन चुके हैं और विलायत से लौटने पर तुम्हारे प्रवचन कैसे होते हैं, यह उन्हें देखना है। तुम केवल यही बात अपने ध्यान में रखो, बस !"

अपने मायके के गाँव जाना मेरी जान पर आ गया था। पहिले की तरह अब मैं लड़की नहीं रही थी। विद्वता की विलायती छाप मुझ पर लग चुकी थी। दूसरे मन में यह भी आता, कि गोपाल भट्टजी के घर भी कैसे उतरूँ ? मैंने प्रायश्चित नहीं लिया था। मेरे कारण व्यर्थ उन्हें भी त्रास क्यों हो ?

दूसरे दिन गोपाल भट्टजी ही स्वयं हमारे गाँव आए। उस गाँव के लोगों को यह संदेह हो गया था कि शायद मैं उनका निमंत्रण अस्वीकार कर दूँगी, इसलिए उन्होंने मुझे ले आने के लिए भट्टजी को जान-बूझकर मेरे पास भेजा था।

मैंने अपनी कठिनाइयाँ उनके समक्ष उपस्थित कीं। उस समय वे भी सोच में पड़ गये।

मैंने कहा, "किसी धर्मशाला में या कहीं अन्यत्र ठहरना मुझे अच्छा नहीं लगेगा। कुछ भी हो, आखिर आपका गाँव मेरा गाँव है। अपने ही गाँव में मैं किसी चौराहे पर पड़ी रहूँ, यह उचित न दिखेगा। आपके घर अगर मैं ठहरी, तो बाहर बरामदे में पड़ी रहूँगी। लीला मेरे साथ आएगी। परन्तु मेरा ख्याल है कि वह यदि आपके घर में रहे, तो आप के घरवालों को कोई आपत्ति न होगी। इसके लिए आपको संकोच करने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि मैं यह नियम स्वयं ही अपने लिए बना रही हूँ। बस, इतनी बात आप ध्यान में रखिये।"

मेरा सुझाव गोपाल भट्ट जी को भा गया। दूसरे दिन हम उस गाँव

के लिए रवाना हो गये ।

उस समय वनी ससुराल गयी थी । उससे भेंट न हो पायी, इसका मुझे दुख हुआ । मेरे तीन भाई और पैदा हुए हैं, ऐसा मुझे पता चला । परन्तु पहले की तरह ही मेरी माता जी मुझे अपना दर्शन देने गोपाल भट्ट जी के घर नहीं आयीं ।

पिताजी से सबने खूब आग्रह किया कि वे जाकर मुझ से मिलें, पर उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया । वे मेरे पिता हैं, यह मैं किसी भी तरह नहीं भूल सकती थी । मैंने उन्हें एक विनय भरा पत्र लिखा और सिर्फ एक क्षण के लिए आकर मिलने की उनसे प्रार्थना की ।

उन्होंने मेरे पत्र का कोई उत्तर न भेजा । जिसके हाथ मैंने पत्र भेजा था, उसने आकर मुझसे कहा, "कोई उत्तर नहीं ।"

मेरे मायके जाकर मेरे पिता की गृहस्थी देख आने की तीव्र इच्छा लीला के मन में उत्पन्न हो गयी थी । पर मैंने उसे वहाँ जाने से रोक दिया । मैंने ही उसे जान-बूझकर भेजा है, ऐसा वे लोग समझते, यही अधिक संभव था ।

उस दिन रात को मेरा प्रवचन हुआ । श्रोताओं की बड़ी भीड़ थी । प्रवचन करते समय मेरी नजर सब ओर थी । पिता भी जरूर आएँगे, ऐसा मुझे यूँ ही लग रहा था ।

श्रोताओं की मुद्राओं पर से ऐसा लग रहा था कि मेरा प्रवचन उन्हें सच रहा है । दूसरे गाँवों में मैंने प्रवचन किए थे सही, पर इस स्थान पर मुझे इसके बारे में कुछ विषेश लग रहा था । मैं हर शब्द मैं नाप-तोल कर बोल रही थी ।

पर मुझे कुछ अप्रिय बातें कहनी थीं । किसी का भी मन न दुखे और बहुजन समाज को मेरी बातें जँच जाएँ, इस तरह विषय का विवेचन करना बड़ी टेढ़ी खीर थी, पर मेरा मन मुझ से कह कहा था कि इस कठिन परीक्षा से मैं सफलता-पूर्वक पार हो रही हूँ ।

मेरी आँखें हर चेहरे को देख रहीं थीं । चट-से मेरी नजर भीड़ में

बैठे हुए मेरे पिता की ओर पहुँची।

मैं मंच पर बैठकर बोल रही थी। बोलते-बोलते मैंने विषयों को इस तरह प्रवाहित किया कि उस प्रवाह के साथ मैं उठकर खड़ी हो गयी। और भाषण के अनुरोध से मैं श्रोताओं से धीरे-धीरे कुछ प्रश्न पूछने लगी। बहुत से लोग उत्तर देने लगे।

प्रश्न शुरू हुए। प्रश्न पूछते और उत्तर देते हुए मैं किसी कथा-वाचक की तरह आगे-आगे बढ़ने लगी। पिता की हलचल पर मेरी दृष्टि थी ही।

मैंने बोलते-बोलते मौके से लाभ उठाया और चट-से जहाँ पिता जी बैठे हुए थे वहाँ पहुँच कर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

एकदम उनका कंठ भर आया। 'मथू ! मथू !' कहकर जोर-जोर से चिल्लाते हुए वे मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगे।

श्रोताओं की भीड़ एक ओर हट गयी। पिता जी ने उठाकर मुझे खड़ा किया और कहा, "बेटी मुझे क्षमा कर दे। मैंने भूल की। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। मुझसे भेंट के लिए तेरा हृदय टूट रहा था और मैं तुझ से नहीं मिला। इसका मुझे बड़ा दुख हो रहा है। थोथे अभिमान का मैं शिकार हो गया था। आज तेरा प्रवचन सुना। मेरे मन को संतोष हो गया। मेरी बेटी इतनी असाधारण विद्वान निकली, यह देखा। पर यह देखने के लिए जिसे होना चाहिए था, वह नहीं।" उनका हृदय भर आया था और वे सिसक-सिसकर रो उठे।

मेरा शब्द बाहर नहीं निकल रहा था। लगता था कि बोलूँ, पर जीभ जैसे बेकार हो गई थी।

पिता जी बोले, "आज मेरी कोख सार्थक हो गयी। मैंने तेरी विद्वत्ता सुनी। काशी तक मैं घूम आया हूँ। वहाँ के पंडितों के वाद-विवाद भी मैं सुन चुका हूँ। पर अप्रिय लगने वाली बातें आज तूने जिस अधिकार-पूर्ण वाणी से हमें सुनाई हैं वह सामर्थ्य उन शास्त्रियों और पंडितों में भी नहीं। विलायत के लोगों को तूने दंग कर दिया, वह मैंने सुना था। मुझे वह पहिले सच नहीं लगता था। परन्तु आज प्रत्यक्ष मेरा विश्वास

हो गया। यही समाधान हुआ कि ऐसी विदुषी, ऐसी तेजस्विनी ऐसी दृढ़ निश्चयी टेक वाली लड़की मेरी बेटी है ! ईश्वर तेरा कल्याण करे।"

उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखा। मेरा शरीर रोमांचित हो गया।

वह प्रसंग अपूर्व था। जिस तरह मेरे लिए अपूर्व था, उसी तरह दर्शकों के लिए भी अपूर्व था। प्रवचन अधूरा ही रह गया था, पर इसके लिए किसी को कुछ न लगा। पिता जी ने हाथ पकड़कर मुझे पुनः मंच पर बिठाया और स्वयं पास बैठ गए।

मैंने प्रवचन करने का पुनः प्रयत्न किया, पर मेरे मुँह से शब्द ही नहीं निकलता था। जब सब लोगों ने चिल्लाकर कहा, "अब रहने दीजिए ! अब रहने दीजिए !" तब मैंने पोथी को नमस्कार करके सर्व-श्रोताओं को साष्टांग प्रणिपात किया।

श्रोता गण चल दिए और सिर्फ हम घर के लोग ही उस स्थान पर बच रहे। मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गयी। अब कहाँ जाऊँ ? पिता जी ने मुझे माफ कर दिया था। इसलिए अब अपने घर जाना आवश्यक था। गोपाल भट्ट जी के मन में भी शायद यही विचार खड़ा हुआ और वे उसी उद्देश्य से मेरे मुँह की ओर देख रहे थे।

मैंने पिता जी से कहा, "क्या मैं घर चलूँ ?"

पिता जी बोले, "नहीं ! वह घर नहीं है। श्मशान है। गृहिणी है, बाल-बच्चे हैं, घर में देव-धर्म सब कुछ है—पर वह अब श्मशान हो गया है। वहाँ समाधान का एक शब्द नहीं – सुख की साँस भी वहाँ सुनाई न देगी। ऐसे स्थान पर क्यों चलती हो ? मैं स्वयं रात को गोपाल भट्ट जी घर आ जाऊँगा।" ऐसा कहकर मुँह घुमाकर वे चल दिए।

मेरे आनन्द की सीमा न रही। मैं गोपाल भट्टजी के घर आई। मैंने द्वार पर आते ही भट्टजी के चरणों पर अपना माथा टेक दिया। उन्होंने मुँह भर कर मुझे आशीर्वाद दिया।

मैंने कहा, "भट्टजी महाराज ! आपके उपकारों से मैं किस तरह उऋण होऊँ ? आपकी कृपा से आज मुझे मेरे पिता जी फिर से मिल

गए। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया। अब दुनिया मुझे चाहे जो कहती रहे, मुझे उसकी परवाह नहीं।"

रात को पिता जी आए। हम सब लोग बैठे और बातें शुरू कर हुई। जब से पिता जी से मैं अलग हुई थी तब से लेकर आज तक का सारा हाल मैंने उन्हें कह सुनाया।

चन्दू का हाल सुनते हुए वे बिल्कुल बेचैन हो उठे थे। हाल समाप्त होते ही वे बोले, "बिल्कुल यही! ठीक यही! मेरी भी ठीक यही स्थिति हो गयी है। यही समझ लो कि चन्दू की जगह मैं हूँ, बस! जाने मेरी अक्ल पर किस तरह पत्थर पड़ गये थे जो मैंने पुनः विवाह किया! क्या जरूरत है पुत्र की? तेरी जैसी एक लड़की पैदा हो गयी, तो कई पीढ़ियों का उद्धार हो जाएगा—ऐसी रत्न जैसी लड़की को दूर रखकर मैं दुराग्रह से आज तक तुझे साथ रखने से वंचित रहा। आज वह सब मैंने छोड़ दिया है। तू जब बम्बई जाएगी, तब मैं तेरे घर आकर रहूँगा। तू ही मेरा पुत्र है! अभी मेरे बेटे छोटे हैं—अज्ञान हैं। यह थोथी आशा लिये कि बड़े होने पर वे मेरा दैन्य—मेरी गरीबी दूर करेंगे मैं यहाँ क्यों बैठा रहूँ? प्रायश्चित! तुझे प्रायश्चित की क्या आवश्यकता? तुझे प्रायश्चित देने का अधिकार है किसे? संस्कृत की व्याकरण भी जो नहीं समझते, क्यों वे वेदों के अक्षरों को अपने मुँह से भ्रष्ट करके तुझे प्रायश्चित दें! तू जब विलायत गयी थी, तब मुझे बड़ा डर लग रहा था। कोई-कोई मुझ से कह रहे थे कि तू अपना धर्म छोड़कर ईसाई हो गयी है। विलायत में हो रही तेरी प्रशंसा मैं समाचार-पत्रों में पढ़ता था। परन्तु मेरी यह धारणा होने के कारण कि तूने अपना धर्म छोड़ दिया है, मुझे तेरे प्रति अभिमान होने के बजाय दुख ही होता था—" आगे का आत्मस्तुति का भाग मेरी लेखनी से नहीं उतरेगा। दुनिया वह सब हाल जानती है। अपनी लेखनी को व्यर्थ क्यों दूषित करूँ?

दूसरे दिन हम फिर काका के गाँव आए। मैं खुशी से पागल हो गयी थी। वह सारा हाल मैं ठीक से कह भी नहीं सकती थी। तब लीला

मेरी सहायता के लिए दौड़ पड़ी और उसने सारा हाल काका को कह सुनाया।

यह हाल सुनते समय चन्दू रो रहा था। अपने विषय में मेरे पिता जी के उद्गार जिस समय उसने सुने उस समय तो वह फूट-फूटकर रो उठा।

मुझे लगा, अब दिन बदल रहे हैं। दुख के दिन बीत गये।

मैंने ताई से कहा, "स्वर्ग इससे अच्छा और क्या होगा? स्वर्ग प्राप्ति से भी अधिक आनन्द आज मुझे हो रहा है। इस क्षण यदि मुझे मौत आ गई तो उसे मैं स्वर्ग की ही समझूँगी।"

"चुप! चुप!" ताई बोली, "आनन्द के प्रसंग पर मृत्यु की अमंगल बात क्यों कहती हो?"

उस आनन्द के ज्वार में मेरी आँखों में रात भर नींद कहाँ? मैं अपने बचपन से लेकर आज तक के सारे प्रसंग सिनेमा की तरह अपनी नजरों के सामने से सरका रही थी। उन सब चित्रों में आनन्द का इतना बड़ा प्रसंग और कहीं न दिखायी दिया।

परिवर्तन

दो दिन के बाद बम्बई जाना निश्चित हुआ था, इसलिए पिताजी भी काका के गाँव में हमारे साथ ठहरे रहे। प्रायश्चित न लेते हुए भी मैं सारे घर में घूम रही थी। परन्तु पिताजी ने इसका कोई विरोध न किया और न किसी प्रकार से अपनी कोई नापसंद ही दर्शायी।

भोजन करते समय हम सब एक पँक्ति में ही बैठा करते। पहले दिन पिताजी की थाली हमारी पँक्ति से कुछ दूरी पर अलग लगा दी गयी थी। काका मेरे साथ पँक्तियों में बैठे थे। उस रात पिताजी के मन में जाने क्या आया। संध्या समाप्त करते ही वे उठे और उन्होंने अपनी थाली हम लोगों की पँक्ति में ही रख दी और पीढ़ा लेकर भोजन करने हम लोगों के साथ ही बैठ गये।

चन्दू की वृत्ति जैसी थी वैसी ही रही आयी। वह हमारे साथ बंबई नहीं जा रहा था। उसका रिजल्ट खुलने के लिए अभी समय था। रिजल्ट खुलने तक बम्बई न जाने का उसने निश्चय कर लिया था। यदि वह पास हो गया, तो दवाखाना किस तरह खोला जाय आदि बातों का विचार काका कर रहे थे। दवाखाना खोलने के लिए चाहे जितनी रकम देने को काका तैयार थे। यह देखकर चन्दू को भी आनंद हुआ।

दो दिन के बाद हम बम्बई के लिए रवाना हुए। सब लोग हमें पहुँचाने दाभोल के बन्दरगाह पर आए थे। ताई तो थी ही, पर पिताजी भी आये थे, यह एक विशेष आश्चर्य की बात थी! गाँव के कुछ प्रमुख-प्रमुख लोग भी मुझे विदा करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए थे।

बंदरगाह पर आये अन्य लोगों के लिए वह एक समारोह-सा लगा।

लोगों की दृष्टि में मैं एक "बड़ा आदमी" हो गयी थी। इसलिए मेरी विदा समय इतना बड़ा समारोह होना उनकी दृष्टि में आवश्यक था।

कोंकण में बाहर के "बड़े लोग" बहुत ही कम आते हैं। इसलिए जब ऐसा कोई मनुष्य आ जाता है, तो गाँव के लोगों में बड़ा उत्साह आ ज़ाता है। बंदरगाह पर इसीलिए हर आदमी मेरी ओर अँगुली दिखा कर अपने साथी से कानाफूसी कर रहा था।

एक महाशय के उद्‌गार तो मुझे स्पष्ट सुनाई पड़े। वह कह रहा था—"वह देखो शास्त्री जी ! मथू विलायत से पंडिता होकर आयी है। वहाँ उसने जो परीक्षाएँ पास की हैं वे अभी तक किसी पुरुष ने भी पास नहीं की। फिर भी देखो, उसने विलायती चोचले नहीं अपनाये। सब बातें पुराने ढंग की हैं। यही अगर कोई बम्बई या पूना की लड़की होती और विलायत जाकर आती, तो साड़ी फेंककर साया पहिनने लगती। परन्तु हमारे कोंकण का पानी ही ऐसा है—अपनी मूल बात कभी न छोड़ना !"

उसकी ये बातें जारी थीं परन्तु उसके अभिमान के भीतर की मध्यमवर्ती कल्पना याने कोंकण के प्रति उसका अभिमान देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। मन-ही-मन मैं उसकी सराहना करने लगी। मैं अपने आप से ही पूछने लगी। क्या कोंकण की होने के कारण ही मैं विलायत जाने के बाद भी पुराने ढंग की बनी रही ? यदि कोंकण के जन्मजात ढंग मुझ में न होते, तो क्या मुझमें फर्क हो जाता ? अन्य स्थानों की औरतों ने विलायत जाकर लौटने के बाद अपनी वेष-भूषा में कोई परिवर्तन किया है क्या, इस विषय में पता करने का मैंने निश्चय किया।

जानबूझ कर दुराग्रह से अथवा कोंकण के प्रति अभिमान से मैंने अपनी भूल वेष-भूषा कायम रखी हो, यह बात न थी। जो वेश-भूषा मेरी थी उसमें कोई परिवर्तन किया जाय, यह मुझे अच्छा न लगा। बस, इतनी ही बात थी। जब विलायत में थी उस समय मैंने अपनी वेष-भूशा में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर लिये थे जो बहुत कम थे।

बम्बई आने पर वे आप-ही-आप छूट गये। बम्बई के जलवायु में बूट और स्टाकिंग्ज़ की मुझे कभी जरूरत न पड़ी। विलायत में ठंड से बचाव करने के लिए मैं आँचल से सिर ढाँकती थी। ऊपर से ओवरकोट भी पहनती थी। परन्तु भारत आने पर विशेष ठंड न होने के कारण ओवर कोट फेंक देना पड़ा और सिर पर आँचल की भी जरूरत नहीं रही।

विलायत जाकर वहाँ से लौटकर आयी हुई महाराष्ट्रीय स्त्रियाँ उस समय बहुधा कोई थीं ही नहीं। एक आनंदीबाई जोशी का उदाहरण था। परन्तु विलायत से लौटने पर वे अधिक दिन जिन्दा न रहीं, इस कारण उनकी विशेष जानकारी भी लोगों को न हो पायी। उनका यदि जीवन-चरित न लिखा जाता, तो उनका नाम भी किसी को याद न रहता। दूसरी पंडिता रमाबाई थीं। परन्तु वे ईसाई हो गयी थीं, इस लिए उनकी ओर देखने की लोगों की दृष्टि बदल गयी थी।

उस महाशय ने विलायत से लौटने पर वेश-भूषा बदलने की जो बात कही थी, वह पुरुषों को लक्ष्य करके कही होगी, ऐसा मुझे लगा। विलायत से लौटे हुए कुछ पुरुष उस समय थे। उन्होंने अपनी वेश-भूषा बदल दी थी। इसीलिए विलायत से लौटी हुई होने के कारण मेरी भी वेश-भूषा में भी परिवर्तन होना चाहिए, ऐसी साधारण लोगों की जो अपेक्षा थी, वह झूठा सिद्ध हो जाने के कारण उस महाशय ने मेरी इतनी सराहना की होगी, ऐसा मुझे लगा।

हम दोनों को सभी ने प्रेम से विदा दी। हमारे बोट पर चढ़ने के बाद दृष्टि से ओझल होने वाले बंदरगाह की तरफ लीला लगातार देख रही थी। वह पहिली बार ही कोंकण आई थी। बोट से सफर करना भी उसके लिए एक नई बात थी। बम्बई से कोंकण आते समय वह बोट के सफर में बहुधा सोयी हुई ही आई थी, पर इस समय उसे हिम्मत आ गई थी और वह बोट के खुल जाने पर भी खड़ी होकर देखने लगी।

बोट छोटी नहीं थी। मैं बिस्तर पर जाकर बैठ गई थी। लीला मुझसे बोली, "बैठी क्या हो चाची? आकर जरा यहाँ खड़ी होकर

देखो न ? समुद्र की लहरें कितनी मजेदार दिख रही हैं !"

मैंने कहा, "समुद्र का यह सारा दृश्य मैंने कई बार देखा है। उससे मैं काफी परिचित हूँ। तुम पहिली बार ही देख रही हो, इसलिए तुम्हें उसमें विशेष मजा आ रहा है। दो-चार बार जब समुद्र से सफर कर चुकोगी तब तुम्हें भी इसका कुछ विशेष न लगेगा।"

लीला बोली, "कौन कह सकता है, फिर मुझे यहाँ आने मिलेगा या नहीं ?"

"ऐसा क्यों कहती हो" मैंने कहा, "अब तुम हमेशा मेरे साथ ही रहो। जब यह निश्चित ही हो चुका है कि तुम मुझे छोड़कर नहीं जाओगी और मैं भी तुम्हें नहीं जाने दूँगी, तब जब-जब मैं कोंकण जाऊँगी तब-तब तुम्हें भी मेरे साथ आना ही पड़ेगा।"

वह कठघरे से उठकर मेरे पास आकर बैठ गयी और बोली, "सच चाची, क्या मैं बिल्कुल तुम्हारे पास ही रहूँगी ? आप मुझे कभी पूना वापिस तो नहीं भेज देंगी ?

वह बिल्कुल गिड़गिड़ा कर बोल रही थी।

मैंने कहा, "नहीं, कभी नहीं। इन थोड़े दिनों में मुझे दो लाभ हुए। पहिले तुम मिली। सन्तान प्रेम क्या होता है इसकी मुझे कोई कल्पना न थी। उस दिन—याद है तुम्हें वह दिन ? उस दिन मुझे लगा, मुझे एक बेटी मिली गई। परसों पिताजी से जब मेरी पुनः भेंट हुई उस समय वह पहेली हल हो गई। वात्सल्य कुछ और ही चीज है इसमें शक नहीं। मेरे पिताजी का स्वभाव कितना निश्चयी है, यह तुम नहीं जानती। इतने वर्ष बीत गए पर उन्होंने मेरा मुंह भी न देखा था। कई लोगों ने कई प्रकार से प्रयत्न करके देखा परन्तु पिताजी ने अपना हठ नहीं छोड़ा। उन्हें संतान हो इसलिए उन्होंने दूसरा विवाह किया, लड़के भी हुए। पर तुमने भी तो सुना था न ? दूसरी पत्नी अथवा लड़कों का उन्हें कोई सुख नहीं मिला। बड़ी आशा लिए उन्होने पुनः अपनी गृहस्थी सजाई थी, परन्तु वह आशा सफल नहीं हुई। अब वे बूढ़े हो रहे हैं। जीवन

की इस सांध्यवेला में कहीं भी किसी का आधार मिले, ऐसा मनुष्य को लगने लगता है। उन्हें लड़के हुए हैं पर वे छोटे हैं। उनसे उन्हें कोई आधार प्राप्त हो यह असम्भव है। सन्तान के आश्रय के लिए तड़पने वाला उनका मन बहुत दिनों के बाद मुझे देखते ही फिर जाग उठा। बचपन में मेरे प्रति उनका जो प्रेम था वह पुनः तरुण हो गया। उन्हीं ने मुझे बनाया था। आज यदि मेरी कुछ प्रशंसा हो रही है तो उसका पहिला श्रेय सर्वांश में उन्हीं को है। बचपन से ही यदि उन्होंने मुझे उपनिषद और पुराण न पढ़ाए होते तो मेरे आगामी जीवन में क्रांति कभी न होती। उस पुराने साहित्य के अध्ययन को काका ने नई मोड़ दी। नई दृष्टि से देखना सिखाया। परन्तु मूल में ही यदि पिताजी मुझे कुछ न सिखाते तो काका भी क्या कर सकते थे? मैं तो विधवा हो जाने से यंत्रणाओं में पड़ी थी। मेरा स्वभाव भी बड़ा हठीला याने निश्चयी है। पहिले से ही पिताजी की यह शिक्षा न मिलती तो मैं एक दूसरी सखूबाई बन जाती। पिताजी को बेटी के नाते मेरे प्रति जितनी आत्मीयता लगी, उसकी अपेक्षा अपनी शिष्यों के नाते वह अधिक महसूस हुई। इतने वर्षों के वियोग के बाद भेंट होते ही ये दोनों प्रकार के वात्सल्य एकदम दुगने होकर लहलहा उठे। इसीलिए उस कर्मठ ब्राह्मण ने उस दृष्टि में लगने वाले मेरे सारे अपराधों को माफ कर दिया। उन्होंने यह न पूछा कि विधवा होकर भी मैं कुंकुम क्यों लगाती हूँ, और न प्रायश्चित लेने की ही कोई बात निकाली। यही वह वात्सल्य है! उनका वह पहिले का दृढ़ निश्चय आज क्यों भंग हो गया—क्यों टूट गया? —जानती हो तुम?"

लीला बोली—"मैं कुछ-कुछ समझ रही हूँ। अभी आपने जो यह कहा कि वृद्धावस्था में मनुष्य को कुछ आश्रय चाहिए वही उन्हें लगता होगा। उन्हें कोई आधार न होने से उन्हें ऐसा लग रहा होगा।"

"बिल्कुल ठीक है।" मैंने कहा, "उसी तरह मुझे भी लग रहा है। मैं यद्यपि बूढ़ी नहीं हुई हूँ, फिर भी मुझे बुढ़ापा आगे दिख रहा है। उस आने वाले बुढ़ापे के कारण मेरी स्थिति पिताजी के समान हो गयी

है। उस दिन सरूबाई आई थी और उसने जो ऊधम मचाया था, उस समय तुम थीं, इसीलिए उस संकट से मैं पार हुई। उसी समय मेरे हृदय में वात्सल्य का ज्ञान पहले उत्पन्न हुआ। माँ का मन क्या होता है, इसका उसी समय मुझे पता चला। सन्तान की दृष्टि से मैं तुम्हें देखने लगी। छोड़ो भी, इस समय उन बातों की क्या जरूरत ? सब कुछ अब ठीक हो गया है। अब आगे किसी प्रकार का कोई त्रास न हो, तो इसे भाग्य समझेंगे।"

बोट जैसे-जैसे समुद्र में प्रवेश करने लगी, वैसे-वैसे अधिक हिलने के कारण लीला चद्दर ओढ़कर बिस्तर पर सो गयी। मैं भी बिस्तर पर लेट गयी।

लीला से इस समय मेरी जो बातें हुई थी उन्हीं के बारे में मैं लगातार सोच रही थीं। मनुष्य के जीवन में प्रेम के सहवास की चाह होती है। विवाह शायद इसीलिए होता होगा. ऐसा विचार मेरे मन में आया। विषय-वासना की भावनाएँ क्या होंगी, वे हों—उनकी मुझे कोई कल्पना भी न थी, परन्तु स्नेहपूर्ण हृदय के सहवास की संसारी मनुष्य को अत्यन्त आवश्यकता है, उनके बिना संसार के सुख-दुख का अनुभव नहीं पड़ताला जा सकता।

रेव्हरेंड तिलक[1] की इस कथिता का मुझे स्मरण हो आया—'मज माता भगिनी किंवा भार्या देई[2]—'

उस कविता का गंदा अर्थ करके एक समालोचक ने उस पर जो आलोचना की थी, वह भी मुझे याद हो आई। मुझे लगा कि वह आलोचक मनुष्यों से ठसाठस भरे हुए परिवार का व्यक्ति होगा। मुझ जैसा एकाकी होता, तो ऐसी अनुदार आलोचना उसकी लेखनी से न निकलती।

पिताजी को लड़के की आवश्यकता महसूस होती थी। लड़की याने

---

१. श्री नारायण वामन तिलक—मराठी भाषा के एक स्वर्गीय प्रसिद्ध आधुनिक कवि आप ईसाई हो गये थे।

२. मुझे माता, भगिनी या पत्नी दीजिए—

परायी, दूसरे के घर जाने वाली पराये का धन— ऐसी पारमार्थिक कल्पना होने के कारण बुढ़ापे में पुत्र की चाह उन्हें अत्यन्त तीव्रता से महसूस हुई थी। पुत्र और पुत्री में किसी विशेष परिस्थिति में भेद नहीं रह सकता, यह विचार उनके मन में आने के लिए कोई मौका ही न था। परन्तु आज सर्वत्र अपनी कीर्ति का ध्वज फहराने वाली, किसी बड़े अफसर के बराबर का वेतन प्राप्त करने वाली पुत्री मेरी सन्तान के रूप में विद्यमान है, यह जब उन्हें दीख पड़ा, तब उनका वह पुत्र-मोह विलुप्त हो गया। पुत्र और पुत्री का भेद परिस्थिति के कारण आप-ही-आप जाता रहा। पुरुषार्थी हो, द्रव्यार्जन करने वाला हो, कुटुम्ब का नाम बढ़ाने वाला हो, इसीलिए पुत्र की आवश्यकता है, ऐसा मनुष्य को लगता रहता है, परन्तु इन सब आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली स्वतन्त्र परिस्थिति में रहने वाली यदि कोई लड़की हो, तो उस पिता को पुत्र की आवश्यकता मालूम होने का कोई कारण न रहेगा।

यही पिता जी ने महसूस किया होगा और इसलिए वे बम्बई आकर मेरे पास रहने के लिए राजी हो गए।

हम बम्बई पहुँची और फिर अपने नित्य के व्यवसाय में लग गयीं।

चन्दू की परीक्षा का रिजल्ट खुला और अचम्भे की बात यह कि वह पास हो गया। उसकी बुद्धिमत्ता की कसौटी का इस कारण ही पता चल गया। डाक्टरी परीक्षा कोई अन्य परीक्षाओं की तरह मामूली परीक्षा नहीं होती। अन्तिम वर्ष में ही क्यों न हो— पर वह पढ़ाई उसने छोड़ दी थी। बीच की अवधि में उसने एक भिन्न ही प्रकार का व्यवसाय याने वकालत शुरू कर दी थी। उस व्यवसाय को बीच में ही छोड़कर बिल्कुल थोड़े दिनों में उसने पहले की पढ़ाई को दोहराया था। उस थोड़े से दोहराने से ही उसे जो यह सफलता मिली इसका मुझे भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

रिजल्ट खुलने के तीन-चार दिन बाद चन्दू कोंकण से बम्बई आया। अब मुझसे मिलने की उसे कोई चोरी न थी। इसलिए जब आया तब

सीधा आकर मेरे ही घर उतरा।

दवाखाना खोलने का सारा प्रबन्ध काका ने कर दिया था, परन्तु इतनी जल्दी दवाखाना खोलने की चन्दू की इच्छा न थी। उसने यह निश्चय किया था कि कुछ महीने किसी अच्छे डाक्टर के दवाखाने में काम करेगा और बाद में अपना निजी दवाखाना खोलेगा।

चन्दू का एक सहपाठी था। वह चन्दू से एक-दो साल पहले डाक्टरी पास हो चुका था और उसने अपना निजी दवाखाना खोला था। उसे प्रेक्टिस करते दो साल हो चुके थे। चन्दू ने अपने इसी मित्र के दवाखाने में कुछ महीने काम करने का निश्चय किया था। डायमंड लॉज में जिस समय पहिले मैं एक बार गई थी, उस समय मुझसे प्रश्न पूछने में जो विद्यार्थी अगुआ था, वही यह डॉक्टर था।

डॉक्टर मनोहर के दवाखाने में काम शुरू करने के बाद चन्दू सरदार-गृह में रहने लगा। कभी-कभी वह मुझसे मिलने आ जाता। परन्तु एक वार जो फर्क हो चुका था वह उसी तरह बना रहा। उल्हास की रेखाएँ उसके चेहरे से हमेशा के लिए मिट गई थीं।

लीला इस समय कॉलेज में जाने लगी थी। उसकी पढ़ाई की ओर मैं स्वयं ध्यान दिया करती। इस कारण कॉलेज में उसकी प्रगति भी अत्यन्त सन्तोषजनक हो रही थी। पढ़ने में तेज पुरुष-विद्यार्थियों से भी वह आगे बैठी हुई थी। उसे केवल पढ़ाई की ही रट लगी हुई थी। पढ़ाई को छोड़कर उसे और कुछ न सूझता था।

परन्तु मुझे उसकी यह वृत्ति अच्छी न लगी। कालेज की पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी उसे मन लगाना चाहिए ऐसा मेरा आग्रह था। मैंने अपना वही पुराना उपाय शुरू किया। और उससे वेद और उपनिषद् पढ़वाने लगी। मैक्समुलर, डायसन के ग्रंथ मैं जान-बूझ कर ले आई और उसे पढ़ने को दिये। साथ ही आधुनिक लेखकों के ग्रंथ भी मैंने उससे पढ़वा लिए थे। जिसे ललित-साहित्य कहते हैं उस साहित्य की ओर भी विद्यार्थियों को ध्यान देना चाहिए यह बात अपने विलायत

के अनुभव से मुझे जँच गई थी । इसीलिए जिसकी पढ़ाई कालेज में संभव नहीं थी ऐसे ललित-साहित्य को मैं उस से घर पढ़वा लिया करती।

हमारा सारा समय विद्या के अध्ययन में बीत जाता था। दिन-प्रति दिन लीला का स्नेह मेरे प्रति तीव्रता से बढ़ रहा था। मुझे भी उसके बिना चैन न पड़ता।

यह योगायोग सचमुच बड़ा ही विचित्र था। जिस महाशय ने पहिले दिन से मेरा छल करने के अतिरिक्त और कोई भी विचार अपने मन में प्रवेश न होने दिया, उसी महाशय की लड़की मेरे सुख के लिए अपने प्राण देने के लिए भी तैयार थी। यह परिस्थिति सचमुच बड़ी विचार करने योग्य थी। नाना साहब ने मेरा जो छल किया था—मुझे जो यंत्रणाएँ दी थीं, उनके कारण लीला का मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। मत्सर में से, द्वेष में से, प्रेम का उद्रेक हुआ। मनोभावना परिशीलन का यह एक विचारणीय समीकरण था। हम दोनों एक-दूसरे में इतनी उलझ गई थीं कि दोनों के जीवन में रत्ती भर भी भेद न रहा था। जो एक का सुख था वही दूसरी का था। जो एक दुःख था वही दूसरी का दुःख था। हम दोनों में खून का कोई नाता न था। फिर यह आत्मीयता उत्पन्न कैसे हुई ?

जब लौटकर पीछे देखा तब वही दिखाई दिया। प्रत्यक्ष बाप— उस ने मेरी उपेक्षा की और जिसे मुझसे द्वेष करना चाहिए था वह मेरी सौतेली लड़की मेरे लिए मेरे माँ के समान हो गई। अपने जीवन की घटनाओं के ये परस्पर विरुद्ध उदाहरण देखकर मैं स्वयं आश्चर्य में डूब जाती।

एक दिन एक विलक्षण घटना घटित हुई। पुनः नाना साहब हमारे घर आ धमके। हमारा पता उन्हें कैसे मिला इसका मुझे आश्चर्य हुआ। इस कारण हमेशा वे हमारी हलचल पर बारीकी से ध्यान देते होंगे ऐसा हमें विश्वास हो गया।

लीला के विवाह की बातें करने से लिए वे पुनः आए थे। इस समय

उन्होंने अपना पहिले का उग्र स्वरूप धारण नहीं किया था। लीला के लिए उन्होंने इस समय जो लड़का देखा था वह एक डाक्टर था। हमें बाद में पता चला की चन्दू उस लड़के को जानता था। नाना साहव ने हम से कहा कि लड़के में कोई दोष नहीं है और हम लोग उसके वारे में शौक से पूछताछ कर सकते हैं।

वे वोले, "इस समय मैं वड़ा सतर्क रहा हूँ। बड़ा वढ़िया लडका मैंने खोज निकाला है। लीला को उसने बचपन से देखा है। शायद लीला उसे न जानती हो। वह यहाँ पढ़ रही है, आप जैसी विदुषी के साथ रहती है इसीलिए वह उसे पसंद करने के लिए तैयार हुआ है। ऐसा मौका खोजने से भी न मिलेगा। इसलिए मैं जानवूझ कर यह वताने आया हूँ। ऐसी वातें समय पर हो जाने से अच्छा होता है। लड़की का विवाह कभी-न-कभी होना ही चाहिए। इसलिए जव उत्तम वर सामने आकर उपस्थित हो गया है तव इस आशा से कि आगे चल कर और भी अच्छा वर मिलेगा तथा लीला की पढ़ाई पूरी हो जाने पर और भी अच्छे वर के मिलने का मौका है, इस वर को छोड़ देना कम-से-कम मुझे तो उचित नहीं जान पड़ता। आप को यदि यह उचित लगता हो, तो मैं कुछ नहीं कहना चाहता। अदालत ने लड़की को आपके हवाले कर दिया है। अव उस पर मेरा अधिकार नहीं। मैं नहीं सोचता कि उस में इतनी योग्यता है कि वह अपना विचार स्वयं कर सके। मेरा विश्वास है कि मेरी यह योजना आप पसंद करेंगी।"

मुझे लगने लगा कि सभी दिन पलट गये हैं। नाना साहव की वृत्ति में भी इतना विलक्षण फर्क हुआ देखकर मुझे सचमुच ही धक्का लगा। यह मनुष्य इतना सीधा कैसे हो गया। परिस्थिति की उलझन कें कारण या कानून के डडे के कारण ?

लड़की की शादी के वारे में नाना साहव बहुत उतावले हो गये थे यह स्पष्ट दिख रहा था। परन्तु स्वयं लीला से पूछे बिना इस विषय में मैं अपनी कोई राय न दूँगी, यह मैंने भी निश्चय कर लिया था। उससे

जो पूछना है उसे अचानक पूछना ठीक नहीं होगा ऐसा सोचकर मैंने नाना साहब से दो दिन मेरे घर रहने का आग्रह किया।

आश्चर्य की बात यह कि वे राजी हो गये। प्रायश्चित का प्रश्न एकदम कैसे ठंडा हो गया, यह मैं नहीं कह सकती थी। मेरे घर रहते समय भोजन के लिए हमारी पंक्ति में वे मजे से बैठते थे। इसमें उन्हें कोई सकोच होता हो, ऐसा मुझे दिखाई न दिया।

मैंने तार करके काका को बुलाया। स्वयं अपने ऊपर जिम्मेदारी लेने की अपेक्षा काका ही इस मामले का निर्णय करें तो अच्छा, ऐसा मैंने नाना साहब से कहा और उन्हें भी यह बात जँच गयी।

दूसरे ही दिन काका आ पहुँचे।

संसार

मेरे एकदम बुलाने के कारण काका थोड़े घबड़ा गये थे। उन्हें शक हो गया था कि कहीं सख्बाई का मामला फिर से तो नहीं खड़ा हो गया। मैंने उनसे नाना साहब का हाल जब विस्तारपूर्वक कहा, तब एक तरह से उन्हें समाधान हुआ, परन्तु दूसरी तरह से उन्हें यह जिम्मेदारी अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हुई।

वे बोले, "मनुष्य के जीवन का यह अत्यन्त प्रिय प्रश्न है। पहले जो विवाह हुआ करते थे, उस समय की बात दूसरी थी। बाहर ही बाहर से वधूपक्ष वरपक्ष के बारे में जानकारी हासिल कर लेता और वरपक्ष यह देखने से पहले कि लड़की कैसी है, इसी पर ध्यान देता कि दहेज कितना मिलेगा। आज के जमाने के वर-वधू दोनों समझदार होते हैं, सुशिक्षित होते हैं। ऐसी परिस्थिति में बुजुर्गों को विवाह के मामले में सलाह देने के सिवा अधिक जिम्मेदारी अपने पर न लेनी चाहिए। लड़के प्रौढ़ और सुशिक्षित होने पर भी गलतियाँ कर सकते हैं। बुजुर्गों के सिर्फ अपने अनुभव का फायदा तरुणों को देते रहना चाहिए। इससे अधिक वे और कोई जिम्मेवारी अपने आप पर न लें, यही मैं कहूँगा। तुम देख रही हो कि लीला एक समझदार लड़की है। कभी-कभी उसी की सलाह मुझे माननी पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में उसके मामले में यदि हम हस्तक्षेप करने लगें, तो यह किस तरह उचित कहा जा सकता है? सच पूछा जाए तो नाना साहब को इस विषय में तुमसे न पूछकर लीला से ही पूछना चाहिए था।"

थोड़ी देर सुनकर ताई बोली, "अब उन्हीं के साथ हम इस विषय

की बातें कर लें ।"

नाना साहब बाहर गये थे । वे लौटकर आये । काका को आए देख वे जरा डरे-से मालूम हुए, फिर भी उन्होंने अपनी मुद्रा में कोई परिवर्तन न होने दिया ।

विषय का आरम्भ मैंने कर दिया, उस समय नाना साहब बोले, "पहिली बार मुझसे गलती हो गयी थी, यह मैं स्वीकार करता हूँ । अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं । अब हमारे 'केसरी' की नीति भी बदल गयी है । समाज-सुधार के बारे में भी केसरी अब पीछे नहीं है । जो केसरी की नीति वही हमारी नीति, यह बिल्कुल ब्रह्म-वाक्य है । हमारा देव-धर्म जो भी है, केसरी है । केसरी ने कहा कि ऐसा करो, और हम वही करते हैं । दिन बदल गए हैं, यह भी जानने लगे हैं, इसीलिए मैं जान-बूझकर मथू भाभी से मिलने आया । पहिले हमारे हाथ से कुछ गलतियाँ हो गयी होंगी, हमने छल भी किया होगा, वह सब अब भूल जाइए और अपने घर का यह पहला मंगल कार्य धूम-धाम से सम्पन्न कीजिए—यही मेरी प्रार्थना है ।"

काका मन-ही-मन हँसकर मेरी ओर एक निगाह फेंककर बोले, "पहिले जो भी बातें हुई हों, उनकी चर्चा की इस समय क्या जरूरत ? गड़े मुर्दे उखाड़ने से लाभ क्या ? जो बातें हो गयीं, सो हो गयीं । आगे अच्छा होना चाहिए जिससे हम समझें कि हमारी बुजुर्गी सार्थक हो गयी । इस विषय में मेरा अपना मत यह है कि हम बुजुर्गों को इस झंझट में न पड़ना चाहिए । हमें इतना ही देखना चाहिए कि लड़की को जो लड़का हम दिखा देते हैं, वह उसके लिए योग्य है, यह हमें जँच गया है या नहीं ? इतना हो जाने पर बाकी की सारी जिम्मेदारी उस लड़के और लड़की पर डाल देनी चाहिए ।"

काका लीला को लक्ष्य कर बोले, "लीला, आओ । इधर आकर हमारे सामने बैठो । तुमने ये सब बातें सुन लीं न ? बताओ तुम क्या कहना चाहती हो ?"

नाना साहब एकदम उबलकर उठ रहे थे, पर थोड़ा आत्म-संयम से बोले, "उस छोकरी से इस विषय में आप क्या पूछ रहे हैं, भास्कर राव ?"

"आप भूलते हैं, नाना साहब !" काका बोले, "अब उसी से पूछना चाहिए। आजकल का मेरा अनुभव यह है कि जब-जब कोई विकट समस्या हमारे सामने उपस्थित हुई, तब-तब लीला की सलाह से ही हम उसे हल कर सके। चालू व्यवहार की दृष्टि से लीला मेरी अपेक्षा अधिक चतुर है। पुराने जमाने में हम होशियार थे। हमें लगता था कि हम होशियार हैं। उस समय हमारे जेठे-सयाने हमारी होशियारी से फायदा नहीं उठाते, ऐसा हम सोचते थे। उन पर हमें क्रोध आता था। यह भूल जाने से काम नहीं चलेगा। हमें हमारी युवावस्था में जैसा लगता था, उसी तरह आज के युवक-युवतियों को भी लगेगा, यह अपने अनुभव से हमें ध्यान में रखना चाहिए। इसीलिए कहता हूँ कि लीला ! बताओ, इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ?

काका के इस भाषण से नाना साहब विवशता के कारण ही क्यों न ही—स्वस्थ बैठे। लीला भी उत्तर देने से पहले कुछ देर ठहरी। जब काका ने उससे पुनः पूछा, तब वह बोली, "मुझे नहीं लगता कि अभी मैं विवाह करूँ। मैं अन्य लड़कियों की तरह सिर्फ मूर्ख का तरह यह नहीं कह रही हूँ। चाची की परिस्थिति को मैं बचपन से देख रही हूँ। चन्दू काका की पत्नी की स्थिति को भी मैंने प्रत्यक्ष देखा है। खुली आँखों इन बातों को देख कर भी मैं कोई नासमझी करूँ, ऐसा मैं कभी नहीं सोचूंगी। जब तक स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति मुझ में नहीं आ जाती, तब तक मैं गृहस्थी की झंझट में नहीं पड़ूंगी, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है।"

नाना साहब तनिक क्रोध के आवेश में बोले, "याने क्या तू विवाह ही नहीं करना चाहती ?"

लीला शान्ति से बोली, "ऐसा मैंने कहाँ कहा ? मुझे अपने आग

पर विश्वास हो जाना चाहिए।"

नाना साहब बोले, "फिर अभी जो वर तय किया है, उसका क्या करूँ ?"

यह देखकर कि लीला को इस प्रश्न का उत्तर देने में कठिनाई महसूस होगी, काका आगे बढ़े और बोले, "यह वर यदि अच्छा हो, तो वह आकर एक बार लीला को देख जाए। सिर्फ देख लेने से ही बहुत सी बातें हो जाती हैं। स्वभाव मालूम होने से पहले सिर्फ देखना—आँखें चार होना, भी महत्वपूर्ण होता है। और कभी-कभी कोई कारण न होते हुए भी मनुष्यों को देखते ही उससे घृणा हो जाती है अथवा यूँ ही उसके प्रति मन-मुटाव का भाव मन में उत्पन्न हो जाता है। इसीलिए पहले एक दूसरे को देखना आवश्यक होता है। दोनों एक दूसरे को देख लें, एक दूसरे से परिचय कर लें और यदि उस वर को यह लगे कि जब तक विवाह करने के लिए लीला तैयार नहीं होती, तब तक वह ठहरेगा, तो यह विवाह आप ही आप हो जाएगा।"

नाना साहब बोले, "तो आपका मतलब यह हुआ कि विवाह होने से पहले ही दोनों एक दूसरे से मिलते-जुलते रहें ?"

"तो इस में हर्ज क्या है ?" काका बोले, "हम बुजुर्ग लोग बैठे हैं। यह मथू यहाँ पर है। हम बुजुर्गों की नजर उन पर रहेगी ही। लड़के पर भी हमें थोड़ा विश्वास रखना चाहिए। संशय से संशय बढ़ता है, उसी तरह विश्वास से विश्वास बढ़ता है। यदि हम अपने लड़के-लड़कियों पर विश्वास रखें, तो मेरा ख्याल है कि कभी भी हमारा विश्वासघात नहीं करेंगे। और विश्वासघात करने की प्रवृत्ति यदि उनमें दिखायी दी, तो समझना चाहिए कि वह उनका आनुवंशिक गुण है।"

काका के द्वारा ली गयी चिकोटी नाना साहब को महसूस हुई। वे एकदम उबलकर बोले, "तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं विश्वासघाती हूँ ?"

"मुझे यह बिल्कुल नहीं कहना है।" काका बोले, "लीला जब तक

विश्वासघात नहीं करती तब तक आप के बारे में किसी को शक करने का कोई कारण नहीं। अपने मन पर से ही हमें अपने लड़के-लड़कियों के मन पहचानने चाहिए। यदि वे गलती करते हैं तो हमारी शिक्षा का दोष है, यह हमें स्वीकार करना चाहिए। मैं कहता हूँ कि मुझे लड़के पर पूर्ण विश्वास है। आपका उस पर विश्वास न हो, तो यह विषय ही छोड़ दीजिए। लीला को स्वयं ही अपना देख लेने दीजिए। यदि उसे कोई बात न जँचती हो तो हम भी उसके लिए हठ क्यों करें?"

नाना साहब निरुत्तर हो गये। उत्तर देने के लिए उनकी जीभ खुजला रही थी परन्तु काका की बात का उत्तर देना उनके लिए कठिन हो गया।

इस समय वे सज्जनता का स्वांग किये थे। यह अभिनय उन्हें हूबहू करके दिखाना था। पहले जैसी परिस्थिति होती, तो वे बड़ा ऊधम मचाते।

उस समय वह विषय यहीं तक रहा। थोड़ी देर के बाद काका बाहर घूमने चल दिये। चन्दू के दवाखाने का प्रबन्ध उसी समय कर देने का उन्होंने निश्चय कर लिया था।

मुझे लगा, मैं भी कहीं बाहर घूम आऊँ। नाना साहब के मन में कुछ चुभ रहा था और वे लीला से एकान्त में कुछ बातें करना चाहते हैं, ऐसा उनकी मुद्रा से लग रहा था। यह सोचकर कि मैं स्वयं ही उन्हें यह मौका दे दूँ, मैं भी बाहर चल दी।

जब लौटकर आई तो देखा कि नाना साहब अपने सामान के साथ चल दिये थे।

जब लीला से पूछा, तब सारा हाल मालूम हुआ। दोनों में खूब खटक गयी थी। हमारे बाहर जाते ही नाना साहब ने अपना सच्चा स्वरूप प्रकट किया। वे लीला पर क्रोधित हो उठे और उससे अनाप-सनाप बातें करने लगे। पहिले ही कानूनी कार्रवाई हो जाने के कारण लीला को उनकी नाराजगी का जरा भी भय न लगा और इसीलिए

उसने अपने मन की चार बातें उन्हें अच्छी तरह साफ-साफ सुना दीं। यह उसी का परिणाम हुआ था।

मैंने लीला से कहा, "नाना साहब चले गये। इससे आगे वे अब तुम्हारी शायद कभी कोई पूछ-ताछ भी न करेंगे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा है।"

लीला की आँखें आँसू बरसा रही थीं। उसने गद्‌गद् होकर मेरे कंधे पर गर्दन रख दी और रोने लगी।

एकाएक वह ऐसा क्या कर रही है, यह मैं समझ न पायी। उसके दुःख का आवेग रुकते तक मैंने उससे अधिक खोद-खोदकर नहीं पूछा। जब पूछा, तब वह बोली, 'चाची, आज से मैंने निश्चय किया है कि आपको 'चाची' न कहकर 'माँ' कहूँगी। मेरी माँ होने लायक आपकी उम्र नहीं, यह सच है, परन्तु आप मेरे लिए माँ से भी बढ़कर हो गयी हैं। मेरी जन्मदात्री माँ ने मेरे सुख-दुःख की कभी कोई परवाह नहीं की। बाप तो मुझे बेचने पर ही आमदा हो गया था। ऐसे समय आपने मुझे आश्रय दिया—सिर्फ आश्रय ही नहीं, बल्कि आपके कारण ही मैं आज जीवित हूँ। रो रही थी, इसलिए नहीं कि मुझे कोई दुख था। बल्कि वे मेरे आनंद के आँसू थे। मेरा मन जानकर आप चली गयी थीं, इसी की मुझे बड़ी खुशी हुई। उस मोह को मैं एक बार तोड़ देना चाहती थी। खून के नाते के जोर से मुझ पर अधिकार की धौंस जमाने वाले नाना साहब का जो प्रयत्न था, वह मुझे असहनीय हो गया था। खून का यह नाता आज पोंछ दिया गया। इसके आगे नाना साहब कभी मेरी राह में न आयेंगे, इतनी कड़ी-कड़ी बातें आज मैंने उन्हें सुना दी हैं। मैंने अपने बाप से इतनी कड़ी बातें कीं, इसलिए यदि आपको दुख हुआ हो, तो मुझे क्षमा कर दीजिए। बात मेरी सहन-शक्ति के पार चली गयी थी। मैं उनसे अब ऊब उठी। मुझे उनसे घृणा हो गयी। उन्होंने मुझसे बातें करते समय इतनी गन्दी भाषा का प्रयोग किया कि ऐसे मनुष्य को बाप कहना महा भयंकर पाप है।

नाना साहब के स्वभाव से मैं परिचित थी। इसलिए लीला के इन उद्‌गारों के बारे में मुझे कुछ भी न लगा। चाहे जिस किस्म की गन्दी भाषा में वे अपनी बेटी से भी बोलेंगे, इसका मुझे विश्वास था।

कुछ समय के बाद चन्दू से मिलकर काका वापिस आए। चन्दू काम में व्यस्त होने के कारण उनके साथ न आया था। परन्तु नाना साहब ने लीला के लिए जो वर खोज रखा था, उसके बारे में चन्दू से उन्हें काफी जानकारी प्राप्त हुई और साथ ही सारी पहेली सुलझ गयी। मैंने पहले उस व्यक्ति का हाल लिखा ही है। मैंने पीछे कहीं यह कहा ही है कि उस व्यक्ति से डायमंड लाजमें एक बार मेरी भेंट हुई थी। चंदू को उस व्यक्ति की पूरी जानकारी थी। उस व्यक्ति का पहले का स्व-भाव अब बदल गया था। अब वह परले दर्जे का शराबी हो गया था। उसका विवाह हो चुका था और शराब पीकर घर लौटने के बाद वह रोज अपनी पत्नी को पीटता जिसके फलस्वरूप वह अस्वस्थ रहने लगी और अंत में एक दिन इस असार संसार से कूच कर गयी। ये सब बातें हमें चन्दू से मालूम हुईं। पूना में कोई भी उसे अपनी लड़की देने को तैयार न था, इसीलिए उसने नाना साहब को गाँठा और उन्हें रुपयों का लालच दिखाया। यह भी हमें चन्दू से ही मालूम हुआ, जिसने इस सम्बन्ध में कसकर पूरा पता चलाया था।

चंद चाँदी के टुकड़ों के लालच से क्या बाप भी इतना राक्षस बन सकता है ? मुझे अपना स्मरण हो आया। उस समय पैसों के लालच की भी बात न थी। सिर्फ एक मंगलग्रह के भय से मेरे पिता ने मेरा विवाह एक बूढ़े से कर दिया था। दो प्रकार के दो उदाहरण सामने देखकर मेरा मन असमंजस में पड़ गया। मनुष्य स्वभाव को क्या कहा जाय, यही मैं न समझ पाती।

काका ने यह सारा हाल लीला के सामने ही कहा। उसे सुनते ही वह भड़क उठी। उस समय नाना साहब सामने होते, तो वह क्या करती और क्या न करती, यह नहीं कहा जा सकता था, इतनी क्रोधित हो

उठी थी वह।

इन सब बातों पर मैं विचार करने लगी। उस समय मैं इस परि-स्थिति को अभिव्यक्त न कर पाती। साधारणतः यह समझा जाता है कि रक्त का आकर्षण बड़ा कठिन होता है। फिर अपनी बेटी के कल्याण की अपेक्षा नाना साहब को स्वयं अपनी थैली भरना क्यों अधिक महत्त्व पूर्ण लगा ? खून का नाता इस समय कहाँ चला गया था ? मेरा और लीला का खून के नाते की दृष्टि से कोई संबंध न था। मेरे लिए वह बिल्कुल परायी थी। इसके बावजूद उसके प्रति मेरे मन में इतनी आत्म-यिता क्यों है ? यही स्थिति स्वयं मेरे विषय में थी। ताई मेरी सौतेली बेटी है। बेटी है सही, पर उसकी उम्र है मेरी माँ की उम्र के बराबर उसके पिता ने बुढ़ापे में विवाह किया—मेरे समान एक बारह वर्ष की लड़की से विवाह किया—इसलिए उसे अपने बाप से घृणा हो गई। परन्तु मुझसे भेंट होते ही मेरे प्रति उसके हृदय में आत्मीयता के भाव जाग उठे ! सच पूछा जाए तो उसे मेरे प्रति द्वेष होना चाहिए था। पर ऐसा न हुआ। उल्टे, वह मेरी लड़की होती हुई मुझे मेरी माँ के स्थान में लगी। खून का नाता यहाँ कहाँ से आया ? प्रत्यक्ष मेरे पिता ने मेरा मुँह देखना छोड़ दिया था, उस समय मेरी सौतेली लड़की का पूरा आधार मुझे मिला। फिर खून के नाते का महत्त्व ही क्या है ? मानस-शास्त्र के सूक्ष्म विश्लेषण की दृष्टि से इस पहेली को कोई मानस-शास्त्र वेत्ता कैसे हल करता है सो करें, पर मुझे बेशक विश्वास हो गया कि खून के नाते की शेखी झूठ है।

किसी व्यक्ति का स्नेह किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति किस रीति से और किस कारण से निर्मित होगा इस का सिद्धान्त कभी भी नहीं बताया जा सकता। ऐसी वस्तु-स्थिति होने के कारण पूर्व-जन्म के अस्तित्व की ओर मनुष्य का सहज ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है। हम कहने लगते हैं कि ये पूर्वजन्म के संबंध है। भौतिक-शास्त्र के अध्ययन के कारण पूर्व जन्म पर से हमारा विश्वास जिस समय डगमगाने लगता है, उस समय

इस प्रकार के अवास्तव उदाहरण हमारी इस नई दृष्टि को जोर का धक्का देते हैं।

लीला ने उस दिन सचमुच बड़ा विलक्षण वर्ताव किया था। उसने जो निश्चय किया उस पर वह अड़ी रही। उस दिन से वह मुझे माँ कह कर पुकारने लगी। यह सुन कर काका पेट पकड़ कर हँसने लगे।

उन के इस तरह हँसने पर उसे क्रोध आ गया। वह एकदम उछल कर उठ खड़ी हुई और बोली, "आप को कोई चिन्ता नहीं है क्या, काका ? आप के माँ थी ? माँ का प्रेम क्या होता है इसकी कोई कल्पना आपको है क्या ? मेरी माँ के समान ही यदि आपकी माँ थी तो माँ का प्रेम आपको नहीं जँचेगा। माँ के प्रेम को मैं भी कहाँ अभी तक जानती थी ? मेरी माँ ने मुझे भोजन परोसने के सिवाय दूसरा कोई काम नहीं किया। उससे मेरा इतना परिचय भी नहीं है कि उसके प्रति मैं आत्मीयता महसूस करूँ। हम एक घर में रहते थे—पर मेरे अन्य रिश्ते के लोग और माँ इनमें मुझे किसी भी प्रकार का फर्क कभी दिखाई नहीं दिया। संगति के बिना माँ का महत्व नहीं जाना जा सकता। जिसके पास हम अपना हृदय खोलकर बातें कर सकते हैं, जिसके सामने किसी भी बात को छिपाकर रखने की इच्छा नहीं होती, वही हमारी माँ है। उसी तरह मुझे यह लगा और इसीलिए इन्हें मैं माँ कहने लगी।"

लीला की यह बात सुन कर काका गंभीर हो गए। वे बोले, "मुझे माफ कर दो बेटी ! मैं तुम पर हँसा, यह मुझ से गलती हो गई। तुम इस को माँ कहने लगी तो मैं समझा कि तुम मजाक कर रही हो। इतना सोच समझ कर तुमने इस नई माँ को गोद लिया है यह मैंने नहीं सोचा था। इस मथू का भी तो ऐसा ही हुआ है। उसने अपनी बेटी को माँ के रूप में गोद ले लिया है। दुनिया में कब कैसे चमत्कार हो जाते हैं कुछ कहा नहीं जा सकता।

थोड़ी देर के बाद चन्दू आया। जो घटनाएँ घटी थी उनका सारा हाल हमने उस से कहा। यह सुन कर कि नाना साहब नाराज होकर

चले गये हैं, उसे बड़ी खुशी हुई।

नाना साहब की एक और कारवाई का उसी समय हमें पता चला। चन्दू ने अभी तक वह बात मुझ से नहीं कही थी।

जब सरूबाई अपने पिता के साथ कोंकण गयी थी, तब काका ने उसका मामला पूरी तरह तय कर दिया और सरूबाई की परवरिश के लिए कुछ रकम भी निश्चित कर दी थी। इसके बावजूद नाना साहब ने सरूबाई के पिता से यह नालिश करा दी कि उसे अपनी पत्नी की परवरिश के लिए कुछ रकम देनी चाहिए। काका ने जो रकम निश्चित कर दी थी वह उन्हें काफी न मालूम हुई। उन्होंने सोचा अदालत से कुछ अधिक रकम तय हो जाएगी। परन्तु अदालत ने चन्दू की आर्थिक परिस्थिति का ख्याल करके जो रकम मंजूर की वह काका के द्वारा निश्चित की गयी रकम से बहुत कम थी।

यह फायदा हुआ जरूर। परन्तु इस मामले में चन्दू को अदालत के सामने जाकर खड़ा होना पड़ा, इसका उसे बड़ा दुख हुआ। काका भी इस बात को जानते थे, पर उन्होंने भी मुझे इसके बारे में अभी तक कुछ न बताया था।

दूसरे दिन काका पुनः कोंकण चल दिये।

प्रतिष्ठा

हम दोनों की गृहस्थी बड़े सुख की हो गयी थी । हमें कभी किसी भी प्रकार की कोई कमी महसूस न हुई । हम दोनों को लगता कि ताई भी आकर हमारे पास रहें, परन्तु काका को अकेला छोड़ कर आना उन के लिए संभव न था । काका और ताई दोनों हमारे पास आकर रहें, यह संभव न था । वे गाँव के जमींदार थे और उस नाते उन्हें बहुत दिनों तक गाँव से गैरहाजिर रहना बिल्कुल ही असंभव था ।

आश्चर्य तो नहीं कहना चाहिए —पर पिताजी जिस समय बम्बई आकर सीधे मेरे ही घर उतरे, उस समय मुझे बड़ा आनन्द हुआ ।

उनकी कर्मठता को मैं जानती थी । मेरे मतों को उन्होंने अब बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लिया था । इसलिए उनके प्रति भी उतनी उदारता दिखाना मेरे लिए आवश्यक था ।

मैंने उन्हें अपने घर में एक स्वतन्त्र कमरा दे दिया । उसमें ऐसा प्रबन्ध कर दिया जिससे वे वहाँ अपना स्नान, संध्या-पूजन आदि अपने मन के अनुसार कर सकें ।

मेरे इस प्रबन्ध से वे बड़े खुश हुए । मेरा प्रवचन सुनने पर उनका यद्यपि यह विश्वास हो गया था कि मैं अभी नास्तिक नहीं बनी हूँ, फिर भी कर्मठता के प्रति मेरे हृदय में आदर होगा, ऐसा उन्हें विश्वास न था ।

वे बोले—"मथू, कम-से-कम इस विषय में तो तूने मुझे चकित कर दिया । मैं तो यह सोच कर आया था कि बम्बई में जब तक मैं तेरे घर रहूँगा तब तक के लिए मैं अपना संध्या-पूजन आदि लपेट कर एक तरफ रख दूँगा, परन्तु जो प्रबन्ध मेरे घर में भी नहीं, वैसा तूने यहाँ कर

दिया है उठा-पटक हुए विना घर में कभी मेरी संध्या-पूजा का प्रवन्ध नहीं हुआ। और ऊपर से वच्चों का वह रोना-चिल्लाना, उसका उन्हें पीटना, उनका फिर शोर मचाना—उस कोलहाल के मारे संध्या-पूजन में मेरा मन भी न लगता। यहाँ चार दिन से देख रहा हूँ, मुझे कुछ माँगना नहीं पड़ता, कहना भी नहीं पड़ता। लीला इतनी अच्छी तरह से मेरा सारा प्रवन्ध कर रखती है। मुझे आश्चर्य है यह सव उसने सीखा कहाँ से ?"

उनकी वह प्रशंसा सुनकर लीला वोली, "आप मेरी व्यर्थ ही प्रशंसा कर रहे हैं, दादाजी ! मैं तो सिर्फ हुक्म की तावेदारिन हूँ। माँ कहती हैं, उनकी आज्ञानुसार ही मैं सव कुछ प्रवन्ध कर देती हूँ। इसमें कोई अकल नहीं। पूना में मेरे घर में कौन करता था इतनी संध्या-पूजा ? नाना साहव की सारी संध्या और पूजा उनका केसरी आफिस है। घर आते हैं, तो वहीं की वातें वताते रहते हैं। इसलिए मुझे संध्या-पूजा के प्रवन्ध के वारे में कुछ भी ज्ञान नहीं है।"

"अच्छा, यह वात है ?" पिताजी वोले, "तो यही कहना होगा मथू, कि तुझे वचपन की सव वातें अच्छी तरह याद हैं। यहाँ आकर जव सारा प्रवन्ध देखा तो मुझे पहिले की याद आने लगी। यह मथू उस समय विल्कुल नन्हीं थी ! परन्तु अव जव उसे सामने देखता हूँ, तो उस समय यह विश्वास होने के लिए कि यही वह मेरी मथू है, मुझे वार-वार विचार करना पड़ता है।"

पिताजी के इन उद्‌गारों पर मुझे कितना अभिमान होता, इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। मैं यदि हठ पकड़ती तो पिता जी मेरा कभी विरोध न करते। यही नहीं, वल्कि बम्वई के वातावरण में वे अपनी कर्मठता को विल्कुल छुट्टी ही दे देते।

परन्तु मैं यह नहीं करना चाहती थी। प्रत्येक व्यक्ति के अपने मत उसे प्राणों से भी अधिक प्यारे होते है। मेरे मत मुझे जितने प्रिय हैं उतने ही पिताजी के मत उन्हें प्रिय हैं। पिताजी अपने मतों के बारे में

मुझ पर अपना अधिकार जमाने लगते, तो मैं चिढ़ उठती। फिर यदि अपने मतों के बारे में उन पर सख्ती करने लगती, तो क्या के उन्हें भी उतना ही क्रोध न हो आता?

मैंने यही सोचा। एक दूसरा एक दूसरे के मतों के बारे में यदि सहनशीलता धारण करें तो मतभेद के कारण उत्पन्न होने वाला मन-मुटाव धीरे-धीरे दूर होने लगता है। पर इसका विचार न करके दुराग्रह से जिस समय कोई जबदस्ती से अपना मत दूसरे पर लादने की कोशिश करता है उस समय उस मत का सुपरिणाम न होकर विरोध में उसका अन्त होता है।

पिताजी के आधारों और विचारों के बारे में जो सहनशीलता मैंने दिखाई वह भी गलत जगह पर न थी। क्योंकि, सहनशीलता दिखाने का पहिला उदाहरण उनका था। इतने वर्षों का विरोध भूलकर जिस समय उन्होंने मेरे साथ समझौता किया—मुझे आशीर्वाद दिया—उसी समय सहनशीलता दिखाने की जिम्मेदारी मुझ पर सहज ही आ पड़ी। इस विषय में मेरी अपेक्षा उनका ही बड़प्पन अधिक दिखाई दिया था।

मैं ऐसा वर्ताव कर रही थी जिससे उसके मत को किसी भी प्रकार से कोई दुख न पहुँचे। स्मिथवाई कभी-कभी मुझसे मिलने आ जाती। उस समय उनका आदर-सत्कार करना मुझे आवश्यक था। गृहस्थ-धर्म के अनुसार उन्हें कम-से-कम चाय तो पिलानी ही पड़ती। ऐसे समय नौकरानी से भी न कह कर मैं स्वयं उनके जूठे बर्तन साफ कर देती। रसोईदारिनी और नौकर को पिताजी के सब काम करने पड़ते, इस कारण मैं इतनी सावधानी बरता करती कि पिताजी उन्हें ऐसे निषिद्ध काम करते न देख लें।

मेरी इस योजना के कारण पिताजी हमेशा आनन्द में मग्न रहते। वे जो मेरे घर रहने आए तो फिर गाँव जाने की बात ही निकालते।

इसका मतलब यह नहीं कि मैं यह चाहती थी कि वे मेरे घर से चले जाएँ। पर मैं यह सोचती थी कि यदि वे अपने गाँव न गये तो वहाँ मेरी

सौतेली माँ मेरे पुरखों का बखान करती होगी। उससे ऊब कर वे मेरे यहाँ आये थे।

उनके लिए नियोजित स्वतन्त्र व्यवस्था के कारण मुझे किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न होता। उनके नित्य-कर्मों के लिए उन्हें एक कमरा बिल्कुल स्वतन्त्र रूप में दे दिया था और सबसे यह सख्त ताकीद कर दी थी कि बिना वजह कोई उस कमरे में न जाए।

उन्हें पहिले से ही पढ़ने का बड़ा शौक था। पर उनका पढ़ना एक ही विषय तक सीमित था—याने वेदान्त। इच्छा होकर भी वेदान्त विषय की बहुत-सी पुस्तकें उन्हें अभी तक पढ़ने को नहीं मिली थीं। इन पुस्तकों को ला देने का भी मैंने प्रबन्ध कर दिया। वेद और उपनिषद के जितने भी भिन्न-भिन्न भाष्य और अधिकृत वेदांतवादी लोगों के ग्रंथ प्राप्त होने सम्भव थे उतने लाकर मैंने उनके हवाले कर दिये। निर्णय-सागर, आनन्दाश्रम और पाणिनी ऑफिस नाम की संस्थाओं द्वारा प्रकाशित किये गये सारे संस्कृत ग्रंथ मैंने जब लाकर उन्हें दिये, उस समय उन्हें लगा जैसे मैंने उन्हें एक बड़ी दावत दे दी।

हमेशा वे अपने अध्ययन में खोये रहते। रात को भोजन के बाद हम कुछ घंटे बातें किया करते। ये बातें बहुधा आध्यात्म विषय पर ही होतीं। लीला को भी पिता जी की संगति का लाभ प्राप्त हुआ। मैं उससे जिन विषयों की पुस्तकों का अध्ययन कराना चाहती थी, उन पुस्तकों के अध्ययन करने का अवसर पिताजी की संगति के कारण उसे अनायास ही प्राप्त हो गया। इन प्राचीन ग्रंथों को समझा देने की पिता जी की पद्धति यद्यपि पुराने ढंग की थी, फिर भी लीला जैसी बुद्धिमती लड़की को उसके समझने में कठिनाई न हुई और न वह उनसे ऊबी ही।

कभी-कभी चन्दू हमसे मिलने आ जाता। परन्तु वह बहुत कम आता और बहुत देर ठहरता न था। अगर कभी देर तक बैठता भी तो पिताजी से बातें करता रहता। मैंने भी जानबूझकर उससे बोलने का कभी प्रयत्न न किया। उससे प्रत्यक्ष रूप से बातें करता। यद्यपि मैं टालती

न थी, फिर भी जानबूझ कर वात खोदकर निकालना मुझे अच्छा न लगता। लीला भी, प्रसंगवश ही जब कोई विषय निकल आता, तभी उससे बातें करती।

काका और ताई बीच में एक सप्ताह के लिए हमारे यहाँ रहने आए थे। मेरी गृहस्थी में पिता जी को आनन्द करते देखकर ताई को अति आनन्द हुआ। ताई से मुझे पता चला कि उधर गाँव में मेरी सौतेली माँ ने बड़ा कुहराम मचा रखा है। परन्तु पिताजी को कोई त्रास न हो, इसलिए हर महीने एक मोटी रकम मनीआर्डर से मैं उसे भेज देती थी। इस कारण वह यद्यपि पिताजी से चिढ़ी हुई थी फिर भी मेरी तारीफ ही किया करती, इसका पता ताई के कहने से ही मुझे चला।

हमारी शाला का कार्यक्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। इस कारण शाला की मुख्याध्यापिका और सुपरिंटेन्डेन्ट के नाते मेरी जिम्मेदारी और मेरा काम भी उसी परिमाण में बढ़ रहा था।

छुट्टियों में काका के घर जाने की इच्छा होती सही, परन्तु कुछ दिनों से प्रचार कार्य के लिए मुझे दूसरे गाँवों से निमन्त्रण आया करते। एक बार जब घर से बाहर निकल पड़ती, तो छुट्टियाँ खत्म होने तक भिन्न-भिन्न गाँवों से निमन्त्रण लगातार आते रहते और मैं उन्हें टाल न सकती।

हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रांतों की शिक्षण-संस्थाओं को देखने के लिए भी मुझे कभी-कभी जाना पड़ता। ऐसी शिक्षण-संस्थाओं में नये सुधार करने के लिए बहुधा मुझे ही नई-नई योजनाएँ सुझानी पड़तीं। स्त्रियों का शिक्षा विषयक आन्दोलन उस समय कुछ थोड़ा सा जोर पकड़ने लगा था, इसलिए जब-जब इस प्रकार का मौका आता तब-तब मौके से पीछे हटना मेरे लिए असंभव हो जाता।

मुझे भी कार्य-क्षेत्र की जरूरत थी। सारा हिन्दुस्थान मेरा घर हो जाने के कारण गृहिणी की शान दिखाने का मेरा क्षेत्र बहुत ही विस्तीर्ण हो गया था। जिस-जिस ऐसे क्षेत्र से शिक्षा-कार्य के लिए मुझे बुलावा

आता, वहाँ-वहाँ जाने में मुझे आनन्द ही होता। कार्य की अधिकता के कारण मैं अपने आप को भूलती जा रही थी। "मेरा घर," "मेरी गृहस्थी," "मेरे बाल-बच्चे" कहने वाली गृहिणी अपने कार्यक्षेत्र को संकुचित करके रहा करती है। इस संकुचित वृत्ति के कारण ही उस की दृष्टि की व्यापकता नष्ट होती रहती है। गृहिणी की इस संकुचित वृत्ति की ही लोग प्रशंसा करते हैं। यह कहने के कारण कि 'स्त्रियों का कार्यक्षेत्र उनका घर है, उसके परे और कुछ नहीं', स्त्री की नजर भी स्वाभाविक रूप से इस सीमित क्षेत्र में ही घूमती रहती है। स्त्रियों की यह संकुचित वृत्ति चली जाए, उनकी दृष्टि व्यापक हो जाए, उनका कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया जाए, तो स्त्रियाँ सभी कार्य कर सकती हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे जिस समय हुआ, उस समय "स्त्रियों का कार्यक्षेत्र उनका घर है"—इस सिद्धान्त पर से मेरा विश्वास बिल्कुलउठ गया।

जिसे सांसारिक सौख्य कहा जाता है उस प्रापंचिक सौख्य की तृष्णा मेरे हृदय में पहिले कभी-कभी उमड़ कर उठा करती। कार्य का भार जैसे-जैसे बड़ा होने लगा, वैसे-वैसे यह तृष्णा की भी दूर होती गई।

नया शौक मेरे हृदय में जाग उठा। सारे हिन्दुस्थान की शिक्षा का भार मैं अकेली अपने सिर पर ले लूं, इस प्रकार की पगली, किन्तु विशाल कल्पना मेरे अन्तःकरण में भड़कने लगी। मैं अपनापन भूल गई। दूसरों के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए, यह छटपटाहट जब उत्पन्न हुई उस समय आप-ही-आप अपनेपन की संकुचित भावना धीरे-धीरे गलने लगी। नई-नई कल्पनाओं को लोगों के सामने उपस्थित करने के लिए मुझे हिन्दुस्थान के सब भागों में सफर करना पड़ा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न दर्जे के शिक्षा-शास्त्र-विशारदों से मुलाकातें होने लगीं। इस कारण सिर्फ मेरी भावना से स्फूर्ति होने वाली उन नूतन कल्पनाओं की और भी शाखाएँ फूटने लगीं। इन नए नातों के साथ-साथ कार्यक्षेत्र का विस्तार अधिकाधिक बढ़ने लगा और उस बाढ़ के साथ ही प्रचार कार्य का शौक किसी मादक पदार्थ के नशे की तरह मेरी वृत्ति को उभाड़ने के

लिए कारणीभूत होने लगा।

इस नये नशे में मैं सब कुछ भूल गयी थी। ताई का विस्मरण हो गया था। काका की याद न आती थी। लीला की ओर भी ध्यान न जाता था और घर में बैठे पिता जी का अस्तित्व भी मुझे महसूस न होता था।

परन्तु मेरे इस ऊपरी तौर पर दिखने वाले उन्माद का मेरे इन आत्मीयों पर रत्ती भर भी बुरा परिणाम न हुआ। मेरे द्वारा किये जाने वाले शिक्षा के प्रचार कार्य के कारण मेरा जो नाम हो रहा था, इससे उन्हें अभिमान होने लगा था।

मैं अपने कामों में चूर थी, लीला अपनी पढ़ाई में खो गयी थी और पिता जी वेदान्त के अध्ययन में मग्न थे।

हमारी इस सब प्रकार से आनन्दमयी गृहस्थी में केवल एक व्यक्ति दुखी था और वह था चन्दू!

मेरी तरह उसने भी अपने कार्य-क्षेत्र को अधिकाधिक विस्तीर्ण बनाने का हठ पकड़ लिया था। डाक्टर की हैसियत से बम्बई में वह बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। गरीब लोग उसे देव-तुल्य मानते। धन के पीछे न लगकर भी धन उसके चरणों पर लोट रहा था। निःस्वार्थ भाव से परोपकार करने के कारण नामवरी पैदा करने का शौक न होते हुए भी जनता उस पर लोक प्रियता की पुष्प-वृष्टि कर रही थी।

इसके बावजूद वह दुखी था। कभी एकाध दिन जब वह मेरे घर आ जाता, उस समय वह अपना दुख अपने साथ ले आया करता। रोगियों को हमेशा प्रसन्न दिखने वाला उसका चेहरा मेरे घर में कदम रखते ही ही दुख की छाया से काला पड़ जाता। लोग उसकी आनन्द वृत्ति की हमेशा तारीफ करते, परन्तु मेरी नजरों में उसके चेहरे पर मायूसी की घनी घटा छायी हुई दिखा करती। यह कैसा योगायोग था?

लीला भी यही कहा करती। एक दिन उसने चन्दू से साफ-साफ ही पूछा, "यह क्या बात है, चन्दू चाचा? लोग कहते हैं कि डाक्टर भाल

चंन्द को सामने देखते ही बीमार को आराम मालूम होने लगता है, पर जब आप यहाँ आते हैं, तो आप के चेहरे की ओर देखकर मुझ जैसे पूर्ण रूप से स्वस्थ मनुष्य को भी आप बीमार हुए जैसा दिखते हैं। यह ऐसा क्यों होता है ? लोग कहते हैं, वह सच है, या कि जो मुझे दिखता है, वह सच है ?"

लीला की बात सुनकर चंदू खिन्नता से हँसा और बोला, "दोनों बातें सच हैं। जिस दुखी जीव के अन्तःकरण में दुख की आग जलती रहती है, उस दुखी जीव के समाधान के लिए मुझे अपना चेहरा जबरदस्ती बिल्कुल प्रसन्न रखना पड़ता है। अपने व्यवसाय के लिए जो यह सात्विक दंभ मुझे करना पड़ता है, उस पाप का मार्जन मैं यहाँ आकर करता हूँ। मेरे हृदय में संचित सारा दुखावेग यहाँ आते ही फूटकर बाहर निकल पड़ता है। इसीलिए तुम्हें यह बात कहनी पड़ी।"

जब मैं अपनी मनोवृत्ति की चन्दू की मनोवृत्ति से तुलना करने लगी, तब मुझे लगा कि मैं भाग्यशालिनी हूँ। अपने व्यवसाय में मैं जितनी रँग गयी थी, उतना ही चन्दू भी अपने व्यवसाय में निमग्न हो गया था, परन्तु दोनों की वृत्तियों में एक फर्क था। मुझे अपने काम में कर्तव्य का नशा चढ़ता था और चन्दू जबरदस्ती से अपने कार्य का विस्तार बढ़ा रहा था। ये दो भेद बिल्कुल स्पष्ट रूप से दिखाई देने के कारण मुझे अपने प्रति अभिमान मालूम हुआ।

इस अभिमान की जड़ में मेरी अनुकूल परिस्थिति थी, यह भूल जाने से काम न चलेगा। चन्दू के जीवन में स्वयं उसी की नासमझी के कारण जो एक बाण उसके मर्म में छिद गया था, उसे भुला देना उसके लिए संभव न था। उस दृष्टि से अपनी नासमझी के कारण पश्चाताप करने का मौका मुझ पर नहीं आया था। इसीलिए अपने वैधव्य के प्रति मुझे अभिमान मालूम होने लगा। अपने वैधव्य के कारण मैं सांसारिक सुखों से यद्यपि पूर्ण रूप से वंचित हो गई थी, फिर भी जन-दृष्टि में तीव्र लगने वाला वह अभाव ही मेरी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण

करने के लिए समर्थ हुआ था। मुझे जो अभिमान होता वह इसी कारण, यह मेरा भाग्य था—मेरा कर्तृत्व नहीं।

मेरे सारे आनन्द के संसार में चन्दू के विषाद के कारण एक नमक की डली पड़ गयी हो, ऐसा लगता। पर इस का कोई इलाज न था।

पिताजी एक बार हमारे घर रहने आए, सो फिर अपने गाँव न गये। ताई और काका कभी-कभी मेरे घर आ जाते। परन्तु मुझसे उन की भेंट हमेशा ही होती हो, यह बात न थी। बहुधा ऐसा होता कि वे आते और उसी समय मुझे कहीं से निमंत्रण हुआ रहता और मुझे बंबई से बाहर चल देना पड़ता। निकटवर्ती सह-वास के बीच उत्पन्न होने वाले इस अचानक वियोग के कारण ताई के प्रति मेरा प्रेम निरंतर बढ़ता जा रहा था। जब-जब उसे इस रीति से छोड़कर जाने के लिए मैं मजबूर हो जाती, तब-तब वह मुझे अपनी छाती से चिपकाकर आनन्द के आँसू बहाती। उस याद की खुशी से मुझ में आगामी कार्य करने के लिए दूना उत्साह भर जाता।

मेरे इस वियोग के लिए ताई को कभी दुख न हुआ। मैं जो कार्य कर रही थी, उस कार्य की नामवरी के अभिमान के कारण समय-असमय होने वाले इस वियोग को वह आनन्ददायक ही मानती थी।

बार-बार की मेरी इस गैरहाजिरी के कारण एक विलक्षण प्रसंग उत्पन्न हुआ और उसी ने मेरे आनन्द-भरे संसार में एक विशेष प्रकार की सनसनी फैला दी।

विष की बूंद

लीला बी० ए० फाइनल में पढ़ रही थी। पास होने का उसने निश्चय कर लिया था। वह जमकर अध्ययन कर रही थी। पढ़ाई में उसने यद्यपि पूर्ण रूप से अपना मन लगा दिया था, फिर भी मैंने जिन विषयों को पढ़ने में उसे लगा दिया था, उनकी पढ़ाई भी उसने बिल्कुल नहीं छोड़ दी थी। इसके अलावा पिताजी के पास संस्कृत-साहित्य का अध्ययन भी जारी ही था।

प्रचार कार्य के लिए मुझे बार-बार बाहर जाना पड़ता था। शाला की मुख्याध्यापिका और सुपरिटेंडेंट का कार्य कुछ दिनों से एक दूसरी अध्यापिका को सौंप दिया गया था और मुझे बाहर हिन्दुस्थान के शहरों में प्रचार-कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गयी थी। मेरे इस प्रवास का सारा खर्च भिन्न-भिन्न स्थानों की शिक्षा संस्थायें वहन किया करतीं, इस कारण मुझे अपने मासिक वेतन से इस कार्य के लिए कुछ भी खर्च न करना पड़ता। घर का सब खर्च चलाकर मैं कुछ रुपया हर महीने कोंकण अपनी सौतेली माँ को भेजा करती।

लीला आखिरी परीक्षा की तैयारी कर रही थी। इस कारण अन्य छात्र और छात्राओं से उसका बहुत निकट का संबंध आने लगा था। नये-नये मित्र जोड़ने की उसकी प्रवृत्ति न थी। पढ़ाई के लिए आवश्यक कोई पुस्तक या नोट्स आदि किसी से माँगना या किसी को देना, यहीं तक सहपाठी या सहपाठनियों से उसका संबंध सीमित था।

मेरे बारंबार बाहर रहने के कारण लीला को एक सहेली की आवश्यकता प्रतीत होने लगी जिससे वह आत्मीयता स्थापित करे।

मन की सभी बातें वह मेरे पिताजी से नहीं कह सकती थी। पहिले तो उसके और उनके मत ही एक न हो सकते थे। अपने स्वभाव के अनु–सार पिताजी के मतों के साथ जितनी वह सहमत हो जाती, उतना ही बहुत था। यदि पिताजी के सभी मतों को वह थोथे कहकर झिट-कारने लगती, तो मैं बड़ी कठिनाई में पड़ जाती। पर वेदांत विषय के सात्त्विक विवेचन के बारे में आधारभूत ग्रंथ वर्तमान होने के कारण इस चर्चा में पिताजी का विरोध कर सकना उसे संभव न था।

जब मैं बाहर चली जाती, तब चन्दू शायद ही कभी हमारे घर आता। पिताजी के प्रति उसका मन साफ न था। एक खास प्रसंग पर उन्होंने मेरा जो विरोध किया था, वह उसके मन में शूल की तरह चुभ रहा था। पहले का सारा विरोध उन्होंने अब यद्यपि पूर्ण रूप से धो डाला था, फिर भी बीती बातों को भूल जाने की मन की उदारता चन्दू ने न दिखाई थी। वह अपने मत के अनुसार रह रहा था, इसलिए मैं भी उसे दोष नहीं दे सकती थी। हर व्यक्ति के कुछ पक्के मत बन जाते हैं और यदि हम चाहते हैं कि मित्रता में कोई बिगाड़ न आए, तो अपने मित्र के पक्के मतों पर प्रहार न करना ही अच्छा होता है।

इस तरह लीला अकेली पड़ गयी। उसे एक सहेली की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इस अभाव की पूर्त्ति उसने अपने मन के अनुसार कर ली।

वह बड़ी दूरंदेश और चालाक लड़की थी। परन्तु दूरंदेश और चालाक लोग भी भूल कर बैठते हैं। उनसे कभी कोई भूल होती ही न हो, यह बात नहीं। और वह तो अनुभवहीन जवान लड़की थी। उस की हमजोली लड़कियाँ उससे जरा फड़ककर ही रहती थीं। शायद उसका स्वभाव इसका कारण हो। वह भी किसी से विशेष घनिष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न न करती। परन्तु ऐच्छिक विषय दोनों के समान होने के कारण एक विद्यार्थी का और उसका एक ही स्थान में बैठकर पढ़ने का सम्बन्ध आने लगा।

पिताजी से वह वेदांत विषय पढ़ती थी, इसलिए वह विद्यार्थी भी वेदांत पढ़ने के लिए उसके साथ पिताजी के पास आने लगा। आने-जाने के निकट सम्बन्ध के कारण, और एक ही स्थान पर बैठ कर पढ़ने से दोनों में परस्पर स्नेह बढ़ने लगा। पिताजी को यह पसन्द न था कि वे दोनों एक साथ उनके पास पढ़ने के लिए आयें। यदि दोनों विद्यार्थी ही होते या दोनों छात्रायें ही होतीं, तो वे अपनी नाराजगी न दिखाते। परन्तु एक छात्र और एक छात्रा एक ही समय आ कर उनके पास पढ़ें। यह उनके परम्परा-प्रिय मन को अच्छा न लगा।

दूसरा भी एक कारण था। ऊपरी तौर से देखकर ही किसी भी व्यक्ति के प्रति अपना मत बना लेने की मेरी तरह पिताजी की भी प्रवृत्ति थी। उस के अनुसार उनका इस विद्यार्थी के प्रति अच्छा मत न बना। उसे अपने पास आने से रोकने की कठोरता भी उन से न की गयी।

मैं जिस समय बम्बई में रहती उस समय यह विद्यार्थी शायद ही हमारे घर कभी आता। परन्तु बीच की अवधि में मैं जिस समय अखिल हिन्दुस्थान के दौरे पर गई, उस समय करीब-करीब चार महीने बाहर ही रहना पड़ा और इन चार महीनों में उन दोनों का प्रेम बढ़ गया।

जिस समय मैंने मधुकर को (यह उस विद्यार्थी का नाम था) देखा था, उस समय उसके बारे ने कोई मत स्थिर नहीं कर पाई थी। मेरे बाहर घूमते रहने के कारण लीला और उसकी संगति बढ़ रही है, इस का भी मुझे पता न चला और उसने भी अपने पत्रों में मुझे कभी यह बात न लिखी।

जिस समय मैं वापिस आयी, उस समय मुझे इस सारे काँड का पता चला और वह भी पिताजी से।

पिताजी बोले—"लड़का बुद्धिमान है। अध्ययन-शील है। परन्तु उसकी आँखों में जो एक विशेष प्रकार की चमक है, वह मुझे पसन्द नहीं। लीला की ओर देखते समय उसकी दृष्टि जिस प्रकार की हो जाती है, उसे यदि हम देखें, तो मन में उत्पन्न होने वाले उद्वेग को दबाना कठिन

हो जाता है। कम-से-कम मेरी यह स्थिति हो जाती है। शायद लीला के ध्यान में यह बात न आती हो। मैं पुराने जमाने का आदमी हूँ। अविवाहित लड़के और लड़कियाँ इस तरह घुल-मिलकर रहें, यह बात मेरी पुरानी नजर को नहीं जँचती। अब आगे तू जान।"

उस दिन जब वह लीला के साथ आया तब मैं उसका सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी। पिताजी के कहने में कुछ तथ्य है, ऐसा मुझे भी लगने लगा। वह बुद्धिमान था, चालाक था, अत्यन्त मधुर-भाषी था, लीला पर उसने बड़ा प्रभाव डाला था और वह भी उस पर लुट गयी थी, यह मुझे साफ-साफ दिखायी दिया।

उससे यह बात कैसे कहूँ? उसके सामने यह विषय किस रीति से रखूँ, यही मैं नहीं समझ पाती थी। परन्तु एक दिन अनायास ही एक मौका आ गया।

चन्दू मुझ से मिलने आया था। उस समय मैंने उससे मधुकर के बारे में पूछ-ताछ करना शुरू किया। लीला भी वहाँ हाजिर थी। पिता जी देव-दर्शन के लिए बाहर गये थे। मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए चन्दू बोला, "मुझे उसकी कोई जानकारी नहीं। अगर तुम चाहती हो तो मैं पूछ ताछ करके बताऊँगा।"

मैंने लीला की ओर देखकर कहा, "क्यों लीला! मधुकर के बारे में पूछ-ताछ करना चाहिए क्या?"

"ऐसा क्यों पूछ रही हो, माँ?" माँ कहने का हठ वह अभी तक पकड़े हुई थी।

मैंने उत्तर दिया—"तुम मुझे माँ कहती हो, इसलिए मुझे पूछ-ताछ करने की इच्छा हो रही है। चन्दू के सामने शर्माने की जरूरत नहीं। बिल्कुल साफ-साफ कह दो। बोलो।"

लीला ने गर्दन झुका ली और चुप रही। तब चन्दू ने कहा, "देखो लीला, यह जीवन का एक बड़ा संकट है। मेरा हाल तुम जानती हो। सिर्फ बाहरी दिखावे पर से ही किसी पर लट्टू न हो जाओ। मनुष्य

हमेशा वैसा ही होता हो जैसा कि वह दिखता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । प्रत्येक मनुष्य के दो जीवन होते हैं । विना दो जीवन वाला मनुष्य शायद ही कोई होता है । इसीलिए कहता हूँ कि वैसी कोई वात हो तो वता दो । मैं पूछ-ताछ करूँगा ।"

लीला ने गर्दन उठाकर मेरी ओर देखा । उस समय उसके गोरे चेहरे पर ललाई दौड़ गई थी । वह नाराज नहीं हुई थी । यह निश्चित था । वह अनपेक्षित लज्जा की छटा थी ।

उसने पुनः गर्दन झुका ली और उसी स्थिति में वह पुटपुटायी, "तो फिर पूछ-ताछ कर ही लीजिए ।"

"ठीक !" मैंने कहा, "ठीक ! तुमने साफ-साफ वता दिया, इसलिए मुझे वड़ी खुशी हुई ।"

उस दिन वह विषय वहीं तक रहा । दूसरे दिन मधुकर जव हमारे घर आया उस समय मैंने उससे साफ-साफ पूछा । पुरुष होने के कारण वह सीधे उत्तर देगा ऐसी मेरी अपेक्षा थी । सौभाग्य से लीला उस वक्त वहाँ न थी।

मैंने कहा, "मधुकर राव, मैं वहुत दिनों से यहाँ नहीं थी । जव आयी तव मेरी नजर से—माँ की नजर से—मुझे ऐसा दिखाई दिया कि तुम्हारी और लीला की मित्रता एक विशिष्ट सीमा के पार चली गई है। मैं यह नहीं कहती कि तुमसे कोई अपराध हो गया है । परन्तु तुम दोनों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता उत्पन्न हो गई है । ऐसा मुझे दिखाई दिया । मैं जो कह रही हूँ क्या यह ठीक है ?"

मधुकर ने लीला की तरह गर्दन नहीं झुकायी और न सोचने के लिए कुछ समय ही लिया । मैं ऐसा कोई प्रश्न पूछूंगी इस आशा से वह तैयार ही था, ऐसा उसके उत्तर से मुझे दिखाई दिया । वह वोला, "आपका अंदाज विल्कुल ठीक है । मैं लीला को हृदय से चाहता हूँ । मेरा उससे प्रेम है ।"

उस उत्तर की भाषा मुझे अच्छी न लगी । मैंने पूछा, "प्रेम है

माने क्या ?"

वह हँसकर बोला, "सच है, आप नहीं जानतीं। प्रेम ! यह भावना ही इतनी अपूर्व है कि उसका वर्णन यदि मैं शब्दों में करूँ तो वह आपको नहीं जँचेगा। उस भावना का अनुभव लेना पड़ता है। उस भावना में विकार-वासना का लवलेश भी नहीं होता। हृदय की सम-भावनाओं की भिन्न-भिन्न दिखने वाली लहरों का वह एकीकरण होता है। प्रेम क्यों उत्पन्न होता है, यह कहा नहीं जा सकता। यही बात हो गई है। लीला के बिना मेरा आगामी जीवन निष्प्राण हो जाएगा। मेरे सारे प्राण उसी में उलझे हुए हैं और परीक्षा पास होते ही मैं आपके पास मँगनी करने आऊँगा।"

उसकी इस काव्यमय भाषा से मुझे बड़ी घृणा हुई। मैंने कहा—"तुम्हारी गृहस्थी क्या है ?"

"यह भी कोई प्रश्न है ?" मधुकर बोला, "प्रेम के उत्पन्न हो जाने पर साथ रहने के कारण उसे जो स्वरूप प्राप्त होता है वह किसी भी सीमा के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता। उसके आगे परिस्थिति की मर्यादा नहीं टिकती। आपने पूछा, सो अपनी दृष्टि से उचित ही है। मेरी गृहस्थी यदि बिल्कुल बुरी होती, फिर मैं भी लीला का त्याग न करता। परन्तु सौभाग्य से मेरी गृहस्थी बहुत अच्छी है। मेरे पिता एक बड़े ठेकेदार (कान्ट्रेक्टर) हैं। पूना में निजी आठ बड़े-बड़े मकान हैं। मैं उनका इकलौता लड़का हूँ और उनकी तीन-चार लाख की जायदाद का मैं अकेला ही उत्तराधिकारी हूँ।"

मैंने पूछा—"लीला की गृहस्थी का तुम्हें पता है क्या ?"

"है, एक-एक बात का पता है !" वह बिल्कुल बौखलाये हुए स्वर में बोला—"मेरे मामले में दहेज का सवाल खड़ा न होगा। अपना विवाह करने के लिये मै स्वतन्त्र हूँ। मेरे पिता ने इस विषय में मुझे पूरी आजादी दे दी है।"

"इस विषय में क्या तुमने अपने पिताजी से पूछ लिया है ? उन्हें

लीला के बारे में लिख दिया है ?" —मैंने शान्तिपूर्वक पूछा ।

"नहीं ।" वह बोला, "आपकी राय लिये बिना मैं पहले ही कैसे पूछ सकता हूँ ? सच पूछा जाए तो उनसे कुछ पूछने-पाछने की जरूरत ही नहीं । जब विवाह तय हो जाएगा, तब उनसे सिर्फ इतना कह देना है कि मेरा विवाह तय हो गया है । बस !"

उसकी घमंडी वृत्ति से मुझे बड़ी घृणा हुई । इस थोड़ी-सी बात-चीत से मुझे लगा कि यह लड़का लीला के योग्य नहीं । लीला इस मनुष्य से कैसे धोखा खा गयी, इसी पर मुझे बड़ा आश्चर्य होने लगा ।

मैंने पूछा—"उदाहरण के लिए हम यह कल्पना करें कि तुम्हारे पिता को यह सम्बन्ध पसन्द न आया और उन्होंने इसका विरोध किया, तो तुम क्या करोगे ?"

थोड़ा भी विचार न करके वह बोला—"मैं एकदम अपने पिता से सारे सम्बन्ध तोड़ दूँगा।"

यह उत्तर भी मुझे अच्छा न लगा ।

इसी समय लीला आई । मैंने उसे पुकारा और कहा—"आओ, यहाँ बैठो । मैंने अभी-अभी मधुकार राव से साफ-साफ पूछा । उन्होंने सब बातें कह दीं हैं । तुम्हारी क्या राय है ?"

लीला ने पुनः गर्दन झुका दी ।

मैंने कहा—"शर्माने की कोई जरूरत नहीं । मेरा मत तुम जानती हो । तुम्हारा स्वभाव मैं जानती हूँ । जो कुछ तुम्हें कहना है वह बिना किसी संकोच के इसी समय साफ-साफ शब्दों में मुझसे कह दो ।'

उसने डरते-डरते उत्तर दिया—'और अब कहने को क्या बचा है ? परीक्षा का रिजल्ट सुनते ही 'हम' आपसे कहने ही वाले थे ।"

बोलते समय उसने 'हम' शब्द पर जोर दिया । मधुकर ने 'हम' नहीं कहा था ।

मैंने पूछा, "हम याने कौन ? क्या तुम दोनों ?"

मेरे इस प्रश्न से मधुकर चौंक पड़ा । लीला ने उसकी ओर देखा—

श्रौर कहा—"हाँ, हम दोनों श्रापके पास श्राकर कहने वाले थे।"

मैंने पूछा—"याने तब तक नहीं कहने वाले थे ? — यही न ?"

लीला ने इशारे से 'हाँ' कहा। हाँ कहते समय वह लज्जित हो गयी।

मैंने पूछा—"श्रौर तुम यदि फेल हो जाती तो ? श्रथवा मधुकर फेल हो जाता तो ?"

"फिर भी हम पूछते ही।"

"फिर भी पूछती—यही न ?" मैंने कहा—"फिर इससे पहले ही क्यों नहीं पूछा। क्या यह श्रधिक श्रच्छा न होता ?"

लीला का चेहरा लाल हो गया। मधुकर श्रपनी कुर्सी श्रागे खींचकर घुटनों पर कुहनियाँ टेक कर बोला—"मैंने उससे वैसा कहा था।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

मधुकर बोला—"हम दोनों पास हो जाएँगे, ऐसा मेरा विश्वास था श्रौर श्राज भी है।"

"मान लो, मैं उसे इस वर्ष परीक्षा में ही न बैठने दूँ, तो ?"—मैंने कहा।

"यह विचार मेरे दिमाग में न श्राया था !" —मधुकर बोला, "पर ऐसा क्यों करेंगी श्राप ?"

मैंने कहा —"उसने मुझे माँ माना है। तुम जानते हो कि मैं उसकी चाची हूँ। वह मुझे माँ कहती है श्रौर मैं उसे श्रपनी निजी संतान की तरह मानती हूँ। परीक्षा पास होने पर तुम विवाह करोगे श्रौर यह मेरे पास से चली जाएगी। इसलिए तुमने यह क्यों नहीं सोचा कि इस वियोग के कारण मैं तुम्हारे विवाह का विरोध करूँगी। तुम्हें श्रपने पिता पर विश्वास है। उतना विश्वास शायद लीला को मुझ पर न होगा। परन्तु मेरे जीवन में श्रौर मेरे श्रन्य श्रात्मीयों के जीवन में जो विशेष प्रकार के प्रसंग श्राए हैं उनके कारण मैं बड़ी संशयालु हो गई हूँ, यह भी वह जानती है। विवाह के बारे में तो मैं उसे कभी भी कोई नासमझी न करने दूँगी।"

"इसमें नासमझी की क्या बात है ?" —मधुकर बोला, "क्या

आपका यह ख्याल है कि लीला का पति बनने के लिए मैं अयोग्य हूँ ?"

"यह मैंने कहाँ कहा ?" मैंने उत्तर दिया, "तुम्हारी योग्यता या अयोग्यता के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानती। तुम से मेरा कोई परिचय भी नहीं। तुम्हारा नाम भी मैं पूरी तरह नहीं जानती। लीला के हित की दृष्टि से मेरा जब तक यह विश्वास नहीं हो जाता कि उसे मिलने वाला पति सब तरह से अनुरूप है, मैं अपनी अनुमति उसे कभी न दूँगी। इसके बावजूद यदि उसने विवाह किया, तो मैं विरोध भी न करूँगी।"

मधुकर ने कलाई की घड़ी की ओर देखा और यह कह दिया कि "मुझे एक जगह जाना है।" वह उठकर चल दिया।

मैंने लीला से पूछा—"साफ-साफ बताओ। जरा भी संकोच न करो। इस समय यहाँ दूसरा और कोई नहीं है। क्या तुम्हें यह विश्वास है कि मधुकर से विवाह करने पर तुम्हारा जीवन सुखमय होगा ?"

लीला कुछ न बोली। चुप रही। मैंने कुछ देर तक उससे न पूछा। पर यह देखकर कि वह कोई उत्तर नहीं दे रही है, मैंने पुनः कहा—"मैंने तुम से कहा न, कि कोई संकोच न करो। जीवन का यह एक बड़ा महत्व-पूर्ण प्रसंग है। भावना का शिकार होने से इस समय काम न चलेगा। तुम दूरंदेश स्वभाव की हो, ऐसा मेरा ख्याल था, परन्तु इस मामले में तुमसे कहीं कुछ ढिलाई हो गयी है, ऐसा मुझे लगने लगा है।"

"ऐसा क्यों कहती हो ?" लीला झट-से मेरी ओर देखकर बोली, "क्या इसलिए कि मैंने आप से नहीं पूछा ? आपको इसके बारे में कोई जानकारी नहीं दी, ?" उसका स्वर भर्राया-सा हो गया था।

मैंने कहा, "यूँ बुरा न मानो, लीला ! तुमने मुझसे न पूछा और न मुझे बताया, इसका मुझे दुख हुआ है, यह मैं भी स्वीकार करती हूँ, परन्तु सिर्फ इतने से ही मैं तुम पर नाराज नहीं होऊँगी। मूर्खता का कोई काम तुम नहीं करोगी, इसका मुझे विश्वास है। परन्तु मुझे कुछ भी बताए बगैर तुम्हारा यह स्नेह सौगंध खाने तक पहुँच गया होगा, ऐसा मुझे न लगा था। ऐसी कोई बात हो गयी है क्या ?"

लीला ने शान्ति से उत्तर दिया, "हाँ, हम वचन-बद्ध हो गये हैं। परन्तु आप मुझ पर विश्वास रखें। लज्जा से सिर झुक जाए ऐसी कोई भी बात मैंने नहीं की है।

"क्या मधुकरराव से विवाह करने का तुम्हारा पक्का निश्चय हो गया है ?" मैंने पूछा।

वह पुनः बोली, "हम वचन-बद्ध हो गये हैं।"

"यह तो तुम कह चुकी हो।" मैंने कहा, "परन्तु मुझे यह बताओ तुम्हारा विवाह उससे होना ही चाहिए, ऐसा तुम्हें लगता है क्या ? नासमझी से दिए गए वचन गलत हैं, ऐसा अगर पता चल गया, तो उन्हें तोड़ देना पड़ता है। इस विषय में शायद तुमसे कोई नासमझी न हुई हो—आज मैं इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकती। परन्तु यदि तुम्हें यह मालूम हो जाए कि तुम ने नासमझी की है, तो तुम क्या करोगी ?"

लीला बोली, "कम-से-कम मुझे ऐसा नहीं लगा कि मैंने कोई नासमझी की है, इसलिए मैंने इस दृष्टि से कोई विचार ही नहीं किया।"

"तो फिर उस दृष्टि से विचार करो और मुझे बताओ।"

मैंने वह विषय यहीं छोड़ दिया। उस दिन से लीला अत्यन्त बेचैन हो गयी थी। पढ़ाई की ओर भी वह ध्यान नहीं दे रही थी, ऐसा मुझे शक हुआ। तब मैंने उसे चेतावनी दी।

मैं जान-बूझकर चन्दू के दवाखाने गयी और उससे मिली। मैंने सारा हाल उससे कहा। उस समय वह बोला, "मैं मधुकर के बारे में पूछ-ताछ कर रहा हूँ। उसके द्वारा कही गयी बातें सब सही हैं। वह लखपति का पुत्र है, परन्तु उसका खानगी वर्ताव कैसा है, इसकी पहले कसकर पूछ-ताछ कर लेनी चाहिए। उसे देखते ही उसके बारे में मेरा मत कोई अच्छा नहीं बना। लगता है तुम्हारा भी यही ख्याल है—और लीला भी उसे दिल दे बैठी है। लीला की बातों से जान पड़ता है कि उसने उस पर अच्छा जादू कर दिया है। यदि यही बात होगी तो

वक्त-मौके पर बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाएगी। पूछ-ताछ मैं कर ही रहा हूँ। तुम निश्चित रहो।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। पर एक विशेष बात हुई। मधुकर ने उस दिन से मेरे घर आना बन्द कर दिया।

वह क्यों नहीं आता, यह मैंने लीला से नहीं पूछा। वे दोनों घर के दरवाज़े तक साथ-साथ आते, यह मैं देखती थी। सड़क पर से वह उससे विदा लेकर चल देता और फिर लीला जीना चढ़कर ऊपर आती। हमेशा उस पर कड़ी नजर रखे रहना मेरे लिए संभव नहीं था--और ऐसा करना मुझे उचित भी न लगा।

दोनों में कुछ बातें हो गयी हैं और उसका परिणाम लीला पर हुआ है, ऐसा मुझे लगने लगा। पहले की तरह खुले दिल से वह मुझ से पेश न आती थी। सिर्फ काम के बारे में बातें करती। पर सारा ध्यान वह अपनी पढ़ाई में लगा देती थी।

एक दिन मैंने मन में पक्का निश्चय किया और लीला से पूछा, "आजकल मधुकर इधर क्यों नहीं आता ?"

लीला बोली, "उस दिन की बातचीत के बाद उन्हें यहाँ आना अच्छा नहीं लगता। उन्होंने निश्चय किया है कि परीक्षा पास होने तक वे यहाँ नहीं आयेंगे।"

मैंने कहा, "इतने से के लिए घर न आने को क्या हो गया ? पिता जी के पास आकर पढ़ने की इससे पहले उसे जरूरत मालूम होती थी। अब परीक्षा पास होने की उत्कंठा होने पर भी उसने पिता जी से शिक्षा प्राप्त करना बन्द कर दिया ?"

लीला चुप रही।

मैंने कहा, "सच पूछा जाय तो उसे इस तरह घर आना बन्द न करना था—क्या तुम भी यही नहीं सोचती ?"

लीला बोली, "हाँ। मैंने उनसे ऐसा कहा भी। परन्तु उन्होंने एक प्रकार का निश्चय कर लिया है। प्रत्यक्ष उस दिन कहा, उस तरह आप

से पूछने का समय जब तक नहीं आ जाता, तब तक इस घर में कदम न रखने का उन्होंने निश्चय किया है।"

मैंने कहा, "यदि कुछ निश्चय ही करना था, तो वह यह नहीं। विवाह की मँगनी तक यहाँ न आने का निश्चय करने की अपेक्षा विवाह की मँगनी तक एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न रखने का यदि वह निश्चय करता तो वह अधिक युक्ति-युक्त होता। पहिले तो उसे तुम से दूर ही रहना चाहिए था अथवा फिर जिस तरह हमेशा यहाँ आया करता था, उसी तरह आते रहना चाहिए था। पहिले के बर्ताव में यदि फर्क करना था, तो वह इस तरह से नहीं—क्या तुम भी यह नहीं सोचती ?"

फिर भी लीला स्तब्ध ही थी। यह देखकर कि वह बोल नहीं रही है, मैंने कहा, "लीला बेटी ! नाराज न हो। जीवन का यह एक बड़ा कठिन प्रसंग है ! इस जुवे का दाँव जब एक बार गिर जाता है, तो वह लौटाया नहीं जा सकता। चन्दू के जीवन की किस तरह मट्टी पलीद हो गई है, यह तुमने देखा है न ? क्या तुम्हें उससे कोई सबक नहीं सीखना चाहिए ? मधुकर बुरा लड़का है, यह मैं नहीं कहती। परन्तु वह तुम्हारे अनुरूप है, इसका मुझे अभी तक विश्वास नहीं होता। केवल भावना पर भरोसा करके बैठने से काम नहीं चलता। उसके प्रति तुम्हें क्या लगता है, यह मैं नहीं देखूँगी। पहिले मैं यह देख लूँगी कि वह कैसा है। तुम्हें भी यही करना चाहिए था। मेरी दृष्टि से तुमने भूल की है। मेरी इस दृष्टि से तुम फिर से विचार करके देखो।"

लीला कुछ भी न बोली। पर मेरी बात उसे जँच गयी होगी, ऐसा मुझे लगा।

बिगाड़

शिक्षा-कार्य के प्रचार के लिये मैं जो दौरा करती उसमें जगह-जगह मुझे भाषण देने पड़ते, मुकाकातें लेनी पड़तीं और भिन्न-भिन्न प्रकार के शिक्षा साधनों को ऊहा-पोह करना पड़ता। कामों की अधिकता का परिणाम मेरे स्वास्थ्य हुआ। मेरा स्वभाव है कि जब मैं कोई काम अपने हाथ में लेती हूँ, तो उसे इस रीति से किये बिना कि मन को समाधान न हो जाए, मुझसे नहीं रहा जाता। इस कारण मुझे शारीरिक और मानसिक परिश्रम जरूरत से ज्यादा करने पड़े। इस परिश्रम को सहन करने की शक्ति मेरे शरीर में है या नहीं, इसका काम करते समय मैंने कभी विचार नहीं किया था।

गृह-सौख्य का अभाव होने के कारण मैंने इस प्रचार-कार्य में ही अपने आपको उलझा लिया था। वही मेरा संसार था। उसी संसार के झमेलों में मैंने अपना सारा जीवन समर्पित कर देने का संकल्प किया था। इस संकल्प को करते समय यह विचार पहिले न करने के कारण कि यह परिश्रम मेरा शरीर बरदाश्त कर सकेगा या नहीं, जो परिणाम होना था वह हुआ। मैं पहिले से ही दुर्बल थी। मेरे शरीर में इतने भारी काम का बोझ उठाने की ताकत न थी। इसलिए मैं क्रम-क्रम से थकती जा रही थी। परन्तु काम के नशे में मुझे इसका कोई ध्यान न रहा था। जब देह एकदम थक गई, उस समय जो भूल हो गयी वह मेरे ध्यान में आयी।

मुझे बारीक ज्वर आने लगा। किस डाक्टर का इलाज कराऊँ यह मैं सोच रही थी। चन्दू का दवाखाना था, परन्तु अपना स्वास्थ्य उसे

दिखाऊँ या न दिखाऊँ इस सोच में मैं पड़ गई थी। यह पता चलते ही कि मुझे ज्वर आ रहा है, जिस समय वह मुझसे मिलने घर आया उस समय उसने मुझे काफी डांटा।

वह बोला, "जब तक शरीर ठीक है तब तक प्रचार कार्य असाध्य नहीं। तुमने बड़ा काम किया है इसमें संदेह नहीं। परन्तु तुमने यह भुला दिया कि उस कार्य को जारी रखने के लिए अपना शरीर ठीक रहना चाहिए। काम में उलझ जाने पर स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देना स्वाभाविक होता है, पर ऐसा न होने देने में ही सच्चा पुरुषार्थ है।"

मेरे इन्कार करने पर भी उसने मेरे स्वास्थ्य की जाँच की और दवा भेजना शुरू कर दिया।

कुछ दिनों तक मैं बिस्तर पर पड़े रहने के लिए मजबूर हो गई। इस अवधि में लीला ने बड़ी निष्ठा से मेरी सेवा की। मेरी सेवा करना और अपनी पढ़ाई करना ये दोनों काम करना उसे कठिन हो रहे थे। मैं उसे अपना उदाहरण देती। मैं कहती कि दो कामों का बोझ उठाने के कारण मेरा स्वास्थ्य किस तरह बिगड़ गया है। इसलिए मेरी सेवा और अपनी पढ़ाई, ये दोनों काम करके तुम भी अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लोगी। इसलिए अच्छा तो यह होगा कि मेरी सेवा-सुश्रुषा के लिए एक नर्स ले आओ। पर उसने मेरी बात न मानी।

जब तक मैं बीमार रही तब तक मधुकर हमारे घर कभी न आया। लीला उससे मिलती थी या नहीं, यह जानने का मेरे पास कोई साधन न था। जानबूझ कर लीला से पूछू ऐसा मुझे अच्छा न लगता। जब तक वह स्वयं ही मुझे न बताए तब तक इस सम्बन्ध में उस से कुछ पूछना जले पर नमक छिड़कने की तरह था और मैं यह नहीं करना चाहती थी।

उसने अपने पति के रूप में जिस लड़के को चुना था उसका मैंने विरोध किया था। एक तरह से उसकी मनो-भूमि पर मैंने यह जख्म कर दिया था। मेरी बातचीत के बाद उसने उस विषय के संबंध में कभी कोई बात नहीं की। इससे वह किसी-न-किसी उलझन में पड़ गई थी,

ऐसा मुझे लगे बिना न रहा।

एक दिन उसके हाथ से भूल से गिरा हुआ एक पत्र मुझे मिला। वह उस समय कॉलेज गई थी। क्षण भर के लिए मैं सोच में पड़ गई कि वह पत्र पढ़ूं या न पढ़ूं? परन्तु उसी समय मुझे अपनी जिम्मेवारी का स्मरण हो आया। उसने स्वयं वह वह पत्र लाकर मुझे पढ़ने को नहीं दिया था, फिर भी यह सोचकर कि उस पत्र के मजमून से चालू परि-स्थिति का मैं कुछ अन्दाज कर सकूंगी, मैंने वह पत्र पढ़ा।

पत्र पढ़ने का मुझे पश्चाताप न हुआ। यही नहीं, बल्कि वह मुझे पढ़ने को मिला, इसे मैंने अपना भाग्य समझा।

मधुकर द्वारा लीला को लिखा गया पत्र था वह। उसमें उसने स्पष्ट शब्दों में तो नहीं, फिर भी प्रच्छन्न रूप में मेरी निन्दा की थी। चंदू पर भी बहुत से लांछन लगाये थे और यह पत्र उनसे इतनी कुशलता से लिखा था कि मौका आने पर वह जो चाहे अर्थ निकाल सकता था।

इस पत्र से मधुकर की वृत्ति का मुझे पता चल गया। यह विवाह न होना चाहिए, यही मुझे लगने लगा। लीला से पूछ कर इस विषय का स्पष्टीकरण कर लूं, ऐसा एक विचार भी मेरे मन में उठा।

पर मुझे उसकी भी परीक्षा लेनी थी। उसकी परीक्षा लेकर देखना एक महा विकट काम था, इसमें संदेह नहीं। परीक्षा लेते तक जो समय बीतेगा उसमें शायद परिस्थिति मेरे हाथ से निकल जाए यह भय भी मुझे लगा। फिर भी मैंने आत्म-संयमन किया। मैंने निश्चय किया कि जो होना हो सो हो, पर जब तक लीला स्वयं इस विषय की कोई बात नहीं निकालती, तब तक जानबूझ कर मैं यह विषय नहीं निकालूंगी।

इसी समय स्थिति में एक विलक्षण परिवर्तन हो गया। चन्दू की पत्नी की मृत्यु हो गयी।

यह बात मुझे लीला से मालूम हुई। बीच में कुछ दिनों से चन्दू की भेंट न होने के कारण यह समाचार उसके मुंह से सुनने का मौका मुझे न मिला। परन्तु जिस समय वह आकर मुझसे मिला, उसने वह

समाचार इतनी रुखाई से कहा कि उसे सुनकर मुझे उस पर तरस आ गया। "चलो, छूटा एक बला से !" ऐसा उसने कहा था।

यह कहकर वह कितनी ही देर तक चुप बैठा रहा। मेरे स्वास्थ्य की जाँच करने अथवा उसके बारे में पूछ-ताछ करने का उसे होश न रहा। कुछ भी कहकर मैंने भी उसके मन को धक्का न दिया।

होश में आकर उसने मेरे स्वास्थ्य की जाँच करना शुरू किया। नाड़ी देखने के लिए जब उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया तब वह थर-थर काँपने लगा।

एकदम उसने मेरा हाथ अपने हाथ से छोड़कर अलग कर दिया और वह बोला, "नहीं, अब यह सम्भव नहीं। किसी दूसरे डाक्टर या डाक्टरनी को बुला लो। पत्नी का बंधन टूट जाने से मेरा मन बिल्कुल दुर्बल हो गया है। डाक्टर का पवित्र कार्य करने के लिए कम-से-कम तुम्हारे विषय में तो मैं बिल्कुल अयोग्य हो गया हूँ।"

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह झट-से उठकर चल दिया। यह देखकर कि उस जैसा पुरुष भावुकता के कारण इतना दुर्बल हो गया, मुझे उस पर तरस आने के बजाय आश्चर्य हुआ।

इस विषय का एक बार फैसला हो चुका था। उसके बाद परिस्थिति बदल जाने से पुनः उसके मुँह में पानी क्यों भर आना चाहिए ? उसका मन विचलित हो गया था, इसमें संदेह ही नहीं। वह धीर पुरुष था। मन का पक्का था, परन्तु एक विशेष प्रकार की भावना के वशीभूत होकर वह कमजोर हो गया था। एक पगली आशा हृदय में दबाये वह बैठा हुआ था। वह विचार मैंने जिस तरह अपने मन से निकाल डाला था, उस तरह उसने नहीं निकाला था, यह बात उसके इस बर्ताव के कारण मुझे महसूस हो गयी।

यदि मुझे विवाह ही करना होता, तो सरूबाई से जीवित रहते हुए भी यह बात असंभव न थी। उससे किसी की भी हानि न होती। परन्तु जब किसी एक काम को न करने का एक बार निश्चय कर लिया, तब

एक विशिष्ट परिस्थिति के पैदा हो जाने से उस निश्चय को छोड़ देना मुझे निरी मूर्खता प्रतीत हुई।

मुझे दूसरे डाक्टर को बुलाना पड़ा। उसने मेरे स्वास्थ्य की जाँच करके, कि मैंने पहले डाक्टर से इलाज कराना क्यों वन्द कर दिया? ऐसा सहज ही प्रश्न किया। मैंने जब उससे कहा कि उन्होंने स्वयं ही मेरा इलाज करना छोड़ दिया और दूसरा डाक्टर बुलाने के लिये कहा। उस समय वह नया डाक्टर बोला, "तुम्हारे डाक्टर ने यह बड़ी गलती की। इलाज को बिना किसी कारण के वन्द कर देने से बीमार के मन पर एक अनिश्चित प्रभाव पड़ जाता है। इसके कारण बीमार को अचानक धक्का भी लग सकता है।"

मैंने उत्तर दिया, "मेरे बारे में यह बात संभव नहीं। वे हमारे रिश्तेदार हैं। परन्तु पत्नी की मृत्यु के कारण कदाचित उनका मन ठीक से काम न करता होगा।"

"ऐसा मन रखने से डाक्टरी कैसी होगी?" डाक्टर बोले, "अपना हो, अथवा दूसरे का हो, दुख को भूल जाने की शक्ति जिसमें नहीं उसे यह पेशा ही न करना चाहिए।"

विषय यहीं समाप्त हो गया। परन्तु डाक्टर की बात से मुझे बहुत बुरा लगा। पहिले ही चन्दू की दुर्बलता का मेरे मन पर परिणाम हो गया था। ऊपर से सम-व्यवसायी व्यक्ति के द्वारा दिया गया वह कठोर अभिप्राय सुनकर मैं चन्दू के भविष्य के बारे में चिन्तित हो उठी।

इलाज हो ही रहा था और मेरा स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर भी रहा था। लीला की सेवा पहिले जैसी ही चल रही थी। मधुकर के बारे में इस बीच उसने कभी कोई बात न निकली।

एक दिन नित्य की भाँति चन्दू आया, पर स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ करके हमेशा वह जिस तरह एकदम चला जाता था, उस तरह इस समय नहीं गया। मेरे पास ही बैठा रहा। उसकी मुद्रा से लग रहा था जैसे उसके मन में कोई हलचल मची हुई है। इस विचार से कि लीला

के सामने वह कुछ कह नहीं पा रहा है, मैंने किसी बहाने लीला को वहाँ से हटा दिया।

यह देखते ही कि लीला चली गयी है, वह बोला, "शायद तुम समझ गयी ? लीला से जाने के लिए कहना मेरे लिए कठिन हो रहा था। मैं तुम से एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ। क्या उन्हें सुनने के लिए तुम तैयार हो ?"

एक क्षण भी विचार न करके मैंने उत्तर दिया, "मैं सुनना चाहूँ, इसका ख्याल क्यों करते हो ? जो कहना चाहते हो, कह डालो। इससे कम-से-कम तुम्हारे मन का भार हल्का हो जाएगा। ऐसी मनःस्थिति में डाक्टर के नाते बीमार की जिन्दगी से खिलवाड़ करते रहना खतरनाक है। यह तुम्हें मालूम होना चाहिए था।"

मेरे इन कठोर शब्दों को सुनकर उसे शायद बुरा लगा-सा लगा। वह बोला, "इसमें शक नहीं कि ऐसा कुछ हो जरूर गया है, परन्तु इस का कोई इलाज नहीं। बड़े-बड़े केसेज मैं आजकल लेता ही नहीं हूँ। जब मेरी मनःस्थिति ही ठिकाने पर नहीं है, तब मैं दूसरों को आरोग्य कहाँ से दे सकूँगा ?" इतना कह कर वह रुक गया।

कितनी ही देर तक वह आँखें ऊपर किये सोचता रहा। उसके बाद उसने बोलना शुरू किया। वह बोला, "मैं क्या कहना चाहता हूँ इसकी कल्पना तुम्हें हो ही गयी होगी। अब मैं बन्धन-मुक्त हो गया हूँ। विलायत जाने से पहले मैंने तुम से जो प्रश्न पूछा था, वही प्रश्न मैं क्या पुनः पूछूं ? मैंने मन में पक्का निश्चय कर लिया है। भगवान ने ही हमारी जोड़ी निर्मित कर दी है ऐसा मैं सोचता हूँ। योगायोग के कारण हम बिछुड़ गये थे। परन्तु अब वह बीच की रुकावट दूर हो गयी है।"

"ठहरो ! पहले मेरी बात सुन लो।"—मैंने कहा, "तुम्हारी दृष्टि में वह रुकावट थी—होगी। पर मेरी दृष्टि में वह कोई रुकावट नहीं थी। यदि मेरे मन में विवाह करने की इच्छा उत्पन्न होती तो मैंने उसी समय तुम से वैसा कह दिया होता। हिन्दुओं में एक पत्नी के

रहते हुए दूसरे से विवाह करने में कोई रुकावट नहीं होती। यदि मेरी इच्छा होती तो उस परिस्थिति में भी विवाह करने में मुझे किसी भी तरह का कोई अन्याय प्रतीत नहीं होता और न मैं यह समझती कि मैं कोई हीन कार्य कर रही हूँ। उसके लिए लोग यदि मुझे वदनाम करते, तो मैं वह वदनामी वरदाश्त कर लेती। परन्तु मैं तुमसे साफ-साफ कह देना चाहती हूँ कि विवाह करके गृहस्थी सजाने का विचार मेरे मन से विल्कुल विलुप्त हो गया है। सामाजिक कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने के कारण सीमित गृहस्थी में अपने आप को उलझाये रखना मेरे लिए असंभव हो गया है। ऊपर से लीला के साथ रहने के कारण मुझे संतान-सुख अनायास ही प्राप्त हो रहा है। वह मुझे माँ कहती है और मैं भी उसे अपनी लड़की की तरह मानती हूँ। मेरे जीवन का योगायोग ही वड़ा विलक्षण है। मेरी सौतेली लड़की मेरी माँ के स्थान में हो गयी है और मुझे अपनी कट्टर वैरिन समझने वाले मेरे देवर की लड़की मुझे अपने पेट की लड़की की अपेक्षा भी अधिक प्रतीत होने लगी है। ताई द्वारा दिये गये स्नेह का वदला मैं लीला के प्रति उत्पन्न स्नेह से चुका रही हूँ। स्वतन्त्र रूप से मैं अपनी गृहस्थी सजाऊँ, यह विचार ही मेरे मन में कभी नहीं उठता। लड़कों के कारण कितने परिवार दुखी हुए हैं, यह जव मैं देखती हूँ, तब विवाह करके गृहस्थी करने की इच्छा यदि मेरे हृदय के कोने में कभी थोड़ी उत्पन्न भी होती है तो वह आप-ही-आप नष्ट हो जाती है। वैषयिक सुख की लालसा कार्य की अधिकता के कारण मेरे हृदय से बिल्कुल विनष्ट हो गयी है। संतान-प्रेम का सुख-दुख लीला की संगति से मुझे मिल रहा है। तुम कहोगे कि कल वह विवाह करके मेरे पास से चली जाएगी। परन्तु यदि कोई मेरे पेट की लड़की होती, तो क्या वह भी विवाह करके मुझसे दूर न चली जाती? उसी तरह यह हो गया है, यही मैं समझूँगी। लड़का होता, तो वह भी हमेशा मेरे पास ही रहता, यह कैसे कह सकते हैं? अपनी खुद की गृहस्थी अलग सजाने का विचार करके वह यदि मुझे छोड़कर

चला जाता, तो क्या होता ? तुम कहोगे, हम दोनों तो कम-से-कम एक दूसरे के लिए हैं न ? सच है। पर उसी तरह आज भी हम एक दूसरे के लिए हैं ही। इसके लिए विवाह ही क्यों होना चाहिए ? हम लोग अब बिल्कुल तरुण नहीं रहे हैं। हम अब प्रौढ़ हो गये हैं। तरुणों की रंगीनी अब हमें शोभा नहीं देगी। कम-से-कम मुझे तो वह पसंद न होगी। संसार के लोगों की परिस्थिति को जब देखती हूँ तो मुझे लगने लगता है कि वृद्ध-दम्पति में जो प्रेम होता है वही सच्चा प्रेम है। वृद्धावस्था में वैषयिक भावना नहीं होती। दीर्घ काल से एक संग के कारण एक दूसरे के प्रति लगने वाला प्रेम उन्हें संसार में सुख देता रहता है। उसी तरह हम दोनों भी हैं, ऐसा ही हम क्यों न समझ लें। उसी स्नेह की वृत्ति से हम दोनों रहें। हम दोनों को विवाह ही करना चाहिए, ऐसा तुम्हें क्यों लगता है ? क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि विवाह किये बिना हम परस्पर खुले दिल से न रह सकेंगे ? इसके लिए क्या यह आवश्यक है कि हमें परस्पर एक दूसरे के शरीर पर ही लोटना चाहिए ? इस रीति से लोटने में—मुँह से मुँह लगाने में—क्या प्रेम होता है ? प्रेम की पाश्चात्य परिभाषा मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। यह एक सह-वास का स्नेह है। अकृत्रिमता का चिन्ह है। विषय-वासना न हो, तभी यह साथ निर्दोष और सुख का होता है, क्या ऐसा तुम्हें नहीं लगता ?"

मेरी बातें सुनकर चंदू चुप हो गया। मेरे शब्द उसके मन में शायद काफी चुभें होंगे, ऐसा मुझे शक हुआ, इसलिए मैंने कहा, "क्यों, बोलते क्यों नहीं ? क्या मेरी बात तुम्हें जँची नहीं ? यदि न जँची हो, तो उसके लिए मैं तुम्हें कोई दोष न दूँगी। परन्तु जहाँ एक दूसरे के विचार एक दूसरे को नहीं जँचते, वहाँ वे दो व्यक्ति यदि अपने आप को विवाह के बंधन में बाँध लें, तो इससे क्या लाभ होगा ?"

"सत्त है !" चंदू बोला, "तुम्हारा एक-एक अक्षर सच है ! विवाह का ही विचार मैंने हमेशा अपनी नजरों के सामने रखा था। साथ रहने में प्रेम होता है, यह विधान मेरी दृष्टि में नया है। जब हम 'प्रेम' शब्द का

उपयोग करते हैं, उस समय प्रेम का स्वरूप क्या है, इसकी हमें कोई कल्पना नहीं होती। केवल वैषयिकता ही देखनी थी, तो सरूबाई ही क्या बुरी थी ? हम दोनों की पटती न थी—इसलिए कि हमारे मत भिन्न-भिन्न थे। इसीलिए तो मुझे दुख होता था न ?"

ऐसा कहकर वह बीच ही में रुक गया।

बहुत देर तक वह उसी तरह विचारों में खोया हुआ चुप बैठा था। उसकी वह विचार-शृंखला बीच ही में न टूट जाए, इसलिए मैंने भी फिर उससे कोई प्रश्न न पूछा। इसी समय लीला आ गयी और विषय वहीं समाप्त हो गया।

डाक्टर भी मुझे देखने इसी समय आ पहुँचे। जाँच के बाद उन्होंने वायु-परिवर्तन के लिए मुझे अन्यत्र जाने की सलाह दी।

बाहर जाऊँ या न जाऊँ, यह मैं सोच रही थी। आर्थिक दृष्टि से कोई कठिनाई न थी। पर यदि मैं बाहर जाऊँ तो मेरी सेवा-सुश्रुषा के लिए पढ़ाई छोड़कर लीला भी मेरे साथ चलेगी और इसके कारण शायद एक वर्ष उसका व्यर्थ चला जाएगा।

लीला को ऐसा न लगा। कम-से-कम एक महीने के लिए तो मुझे अवश्य बाहर जाकर रहना चाहिए, यह हठ उसने भी पकड़ लिया। हम दोनों माथेरान गए और एक बड़ा बंगला किराये का लेकर रहने लगे।

चंदू हर शनिवार रविवार को हमसे मिलने माथेरान आया करता और उसी समय मेरे स्वास्थ्य की भी जाँच कर लेता। विवाह का विषय फिर उसने कभी न निकाला।

लीला के बारे में मैं उससे कुछ पूछ-ताछ करूँ, यह बार-बार मेरे मन में आता था। पर मैं अपना निश्चय न तोड़ सकती थी। वह स्वयं कोई बात नहीं निकालती थी और मैं भी उससे नहीं पूछती थी।

परन्तु ऐसा एक प्रसंग आ गया कि उसके कारण उस विषय का भी अचानक निराकरण हो गया।

स्वास्थ्य

जब मुझ में चलने-फिरने की शक्ति आई, तब मैं बाहर घूमने लगी। धीरे-धीरे यह शक्ति बढ़ने लगी और मैं अधिक दूर तक घूमने जाने लगी।

माथेरान का प्रकृतिक सौन्दर्य अद्वितीय है। किसी भी भाग में चले जाइए, सौन्दर्य-दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति को आनन्द हुए विना न रहेगा। वहाँ की प्राकृतिक रचना ही ऐसी है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य विगड़े नहीं, ऐसी सावधानी बरती गयी है। माथेरान में अच्छे रास्ते नहीं। गाड़ियों और मोटरों को इसीलिए वहाँ प्रवेश नहीं। वहाँ सिर्फ रिक्शे मिलते हैं। परन्तु मनुष्य द्वारा खींचे जाने वाले वाहन में बैठना मुझे अच्छा न लगने के कारण मैं पैदल चलना ही पसन्द करती थी। पैदल मैं जितना चल सकती उतना ही व्यायाम मैं किया करती।

शाम को किसी न किसी "प्वाइंट" पर जाकर वैठने का हमारा दैनिक कार्य-क्रम था। जब चन्दू आता तव वह भी हमारे साथ जाया करता। माथेरान में वहुत से 'प्वाइंटस' हैं।

एक दिन हम 'लुइसा' पुआइंट पर बैठी थीं। इसी समय अत्यंत दुर्वल लीला की हमउम्र एक महाराष्ट्रीय लड़की भी वहाँ आयी। उस के साथ कोई न था। वह इतनी कमजोर थी और इतनी थकी हुई मालूम होती थी कि वह यहाँ तक अकेली कैसे आयी, इसी का हमें आश्चर्य हो रहा था। लीला का स्वभाव वड़ा जिज्ञासु होने के कारण उससे उस लड़की से पूछे बिना न रहा गया। एक तो माथेरान में आने वाले महाराष्ट्रीयों की संख्या पहिले से ही बहुत कम होती है। स्वयं महाराष्ट्र में, अत्यन्त निकट का यह आरोग्य स्थान होते हुए और वहाँ रहना भी अधिक

खर्चीला न होते हुए उसका फायदा गुजराती और पारसी लोग उठाते हैं और महाराष्ट्रीय उस तरफ झाँक कर भी न देखते । इस कारण उस महाराष्ट्रीय लड़की को वहाँ आयी देखते ही हमें सहज ही कुतूहल हुआ ।

हमने स्वयं उससे परिचय कर लिया । उसने अपना नाम मुझे बताया । उसने यह भी बताया कि वह कहाँ की रहने वाली है । उसने आगे चलकर अपना जो हाल बताया, उसको मद्दे-नजर रख कर मैं उसका असली नाम यहाँ बताना उचित न समझ 'दीदी' कहूँगी ।

दीदी ने जो हालत बताया वह अत्यन्त हृदय-द्रावक था । वह एक कालेज जाने वाली लड़की थी । कालेज जाने वाली लड़कियाँ उन दिनों बहुत कम रहा करतीं । वह असाधारण होशियार थी । उसी तरह काफी सुन्दर भी थी । इसलिए कालेज के 'रोमियो' उसकी ओर आकृष्ट होते। बहुत से विद्यार्थी उसका परिचय प्राप्त करने के लिए उसके आस-पास चक्कर काटा करते । लीला जिस कालेज में जाती थी, उस कालेज में वह लड़की नहीं पढ़ती थी । इसलिए लीला को उसकी जानकारी न थी । और उसके बारे में जो सुनी हुई जानकारी थी वह उस लड़की के बारे में अच्छा मत होने के लिए बिल्कुल ही योग्य न थी । वह लड़की अपने कालेज में काफी बदनाम थी ।

परन्तु उसने अपना जो हाल कहा, उससे उसके बारे में लोक-दृष्टि से कितना अन्याय हो रहा था, इसकी कल्पना मुझे हुई ।

वह वाहियात लड़की न थी । परन्तु अपने आस-पास चक्कर काटने वाले 'कालेज कुमारों' को वह चकमा देने की कोशिश करती थी । इस कारण उन्हीं शरारती लड़कों ने उसे व्यर्थ बदनाम कर रखा था ।

कालेज के विद्यार्थियों के प्रति यद्यपि उसका कोई अच्छा मत न था फिर भी उसे ऐसा लगने लगा था कि उन में एक-दो लड़के ऐसे हैं जिन के हृदय में उसके प्रति स्वाभाविक स्नेह वर्तमान है । उन दो विद्यर्थियों में से एक विद्यार्थी का स्नेह जरूरत से ज्यादा बढ़ने लगा । प्रेम विषयक उपन्यास नाटक तथा काव्य पढ़ते रहने के कारण उसने प्रेम के बारे

में अपने मन में असाधारण महल खड़े किये थे, जिससे धोखा खा गयी !

दोनों एक दूसरे से वचन-बद्ध हो गये थे और शीघ्र ही उसके साथ अपना विवाह होगा, ऐसा उसे विश्वास था।

परन्तु विवाह होने से पहले ही वह माँ बन गयी।

उसने उस लड़के से बार-बार प्रार्थना की कि जल्दी विवाह करले, परन्तु वह कुछ भी बहाना बनाकर विवाह करना टाल देता। कुछ दिनों के बाद उस लड़के ने उससे मिलना ही बन्द कर दिया।

अपनी स्थिति माँ को स्पष्ट रूप से बताने के सिवा कोई चारा न रहा। उसके माँ-बाप उदार मन के थे। जो बात हो चुकी थी उसके लिए लड़की को अकारण त्रास देने से कोई लाभ नहीं, ऐसा सोच कर उन्होंने जचकी के लिए उसे बनारस भेज दिया।

जो होना था वह हुआ और वह बेचारा बच्चा भी मर गया।

जो बात हुई थी उसका प्रभाव उसके मन पर पड़ा और उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वह पुनः बम्बई आई, परन्तु डाक्टर को सच्चा हाल बता कर उसका इलाज करवाने का साहस उसके माँ-बाप को न हुआ। माथेरान में यहीं रख दिया। खानगी इलाज शुरू कर कर दिये। उसकी माँ उसके साथ आई थी। इस समय वही उसके साथ रहती थी।

जब मैंने उससे धोखा देने वाले लड़के का नाम पूछा, तब उसने बताने से इंकार कर दिया। वह उसका सहपाठी न था। इतना ही उसने बताया।

मैंने उसे आश्वासन दिया—वचन दिया। अन्य लड़कियों की दृष्टि से ऐसे व्यक्ति का नाम कम-से-कम उस कालेज की छात्राओं के हित की दृष्टि से मालूम होना चाहिए, ऐसा आग्रह जब मैंने किया, तब उसने नाम बताया। वह मधुकर था।

लीला उस दिन बीमार की तरह बिस्तर पर पड़ी थी। उनका मन स्वस्थ होने तक उस विषय में उससे कुछ न कहने का मैंने निश्चय किया।

दो दिन के बाद जिस समय इस विषय में हमारी बातें हुई, उस दिन

लीला बोली, "दीदी की तरह मैं भी धोखा खा जाती। परन्तु कैसी साव-धान रही, सो भगवान ही जानें। आपने एक दिन मुझ से जो बातें की थीं उनका मेरे मन पर परिणाम हुआ। आप की दृष्टि से मैं उसकी ओर देखने लगी और इस कारण मेरे मन में शक पैदा होने लगा। वह अका-रण शक था—Prejudice था—ऐसा मुझे बार बार लगा करता। परन्तु अब सब बातों का निराकरण हो गया। मेरी आँखें खुल गयीं। इससे आगे प्राण भी चले जाएँ, फिर भी मैं विवाह नहीं करूँगी, ऐसा ईश्वर साक्ष-प्रतिज्ञा करने की स्फूर्ति आज मेरे हृदय में उत्पन्न हो गयी है।" ऐसा कह कर उसने मेरे चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

मैंने उठाकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। वह फूट-फूट कर रो रही थी। मैंने कहा, "अब यही समझना चाहिए कि इसके आगे दुनिया में तुम्हारे लिए मैं और मेरे लिए तुम हो। आज या कल मैं चल दूँगी—कौन कह सकता है शायद यह मेरी बीमारी यदि फिर उलट पड़े तो इसी में मेरे प्राण-पखेरू भी उड़ जाएँ। उस समय तुम्हारा क्या होगा, इसी की मुझे चिन्ता है। नातेदारों से एक बार सम्बन्ध तोड़ देने पर फिर उनके पास जाना उचित नहीं। संयोग से तुम पढ़-लिख गयी हो। शायद इस वर्ष बी० ए० पास भी हो जाओगी और स्वयं अपनी उपजीविका चलाने लिए समर्थ हो जाओगी। मेरे मरने के बाद यदि विवाह करना चाहो, तो मजे से कर लेना—परन्तु जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक मुझे छोड़ कर मत जाना !"

आँखें पोंछती हुई लीला बोली, "यह आपको नहीं कहना चाहिए, था। यह तो मुझे कहना चाहिए। आप मुझे मत छोड़ देना। मैं थक गयी हूँ, कमजोर हो गई हूँ, ऐसे समय आपकी सहायता के बिना मैं किसके दम पर जिऊँ। आपने मुझे यदि समय पर सावधान न कर दिया होता, तो मैं दीदी की तरह अवश्य धोखा खा जाती। वैसा हो जाता, तो मैं सचमुच आत्महत्या कर लेती। मां-बाप को बताने का जो साहस दीदी ने दिखाया, वह मुझसे न हो सकता।

बम्बई आने पर हमारे जीवन का सभी क्रम बदल गया। हम दोनों के अंतरंग इतने एक हो गये कि दुनिया की कोई परवाह ही न रही।

दिन-प्रति दिन मैं चंदू से फटक कर रहने लगी। यह देखकर उसने भी हमारे घर आना-जाना कम कर दिया। मेरे माथेरान से लौटने पर ताई और काका मुझसे मिलने आए थे। उनसे मधुकर वाला कांड हम दोनों ने कह दिया। हमारा निश्चय उन दोनों को अच्छा लगा।

मेरी सौतेली बेटी के—ताई के मातृप्रेम का—उसके वात्सल्य का–बदला चुकाना आवश्यक था; क्योंकि मेरे जीवन का वह एक विशेष प्रसंग था। वह धागा सचमुच "पूर्व-संबंध" का था। लीला की आत्मीयता के प्रेम के लिए मैंने ताई का जो "अनुकरण" किया वह एक प्रकार का पारिवारिक "लेनदेन" था, ऐसा मुझे लगा। मुझ जैसी विधवा कुमारी इसकी अपेक्षा दूसरी और कौन सी भेंट लौटा सकती थी ?

पुनः मैं अपने काम में लग गई और पुनः मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। पिताजी पहिले जैसे ही मेरे पास रहते हैं। इस समय ताई और काका सेवा-सुश्रुवा के लिए मेरे पास ही रहते हैं। दिल बहलाने के लिए मैंने यह आत्मकथा लिखना आरंभ किया था, वह आज पूरी हो रही है।

एक ही बात अब लिखने को बच रहेगी और वह है मेरी मृत्यु !

जीवन में बहुत सी बातें हों, मैं बड़े-बड़े काम करूँ, स्त्री-जाति के उन्नति के लिए हजारों स्त्रियों को साथ लेकर आन्दोलन करूँ, ऐसी महत्वाकांक्षा थी। वह पूरी होगी, ऐसा अब नहीं दिखाई देता।

मृत्यु निकट आ गई है, यह मुझे साफ-साफ दिख रहा है।

पिता जी, काका और ताई मेरे पास बैठे हैं। लीला मुझसे परे और कुछ देखती ही नहीं। चंदू सद्वृत्ति से मुझसे वर्ताव करता है।

मेरी दृष्टि से सुख का सारा साम्राज्य मेरे हाथ में आ गया है।

शेष इच्छाओं की पूर्ति के लिए पुनर्जन्म होगा, वह भारत के महाराष्ट्र में हीं हो, यही ईश्वर से मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

॥ समाप्त ॥